

ISSN 2277-5587

Impact Factor 4.705

Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI

UGC Valid Journal (The Gazette of India,

Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

शोध श्री



Issue - 2

April-June 2020

RNI NO. RAJHIN / 2011 / 40531



CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Virendra Sharma

Chief Editor

Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr Ravindra Tailor

Editor

Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)

University of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)

M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma

Kurukshetra University, Kurukshetra (**Haryana**)

Sarah Eloy

Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat

Dean of Commerce, M.D.S, University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma

Kurukshetra University, Kurukshetra (**Haryana**)

Dr. Manorama Upadhayay

Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

Dr. Veenu Pant

Associate Professor & Head, Department of History, Sikkim University, Gangtok (**Sikkim**)

Dr. Rajesh Kumar

Director (Journal, Publicaiton & Library), I.C.H.R., **New Delhi**

Dr. Pankaj Gupta

Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Dr. Rajendra Singh

Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

Dr. Avdhesh Kumar Sharma

Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)

S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas

Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Kate Boehme

University of Leicester, **United Kingdom**

Dr. Mahesh Narayan

Archivist (Retd.), National Archives of India, **New Delhi**



Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Contents

Volume-35

Issue-2

April-June 2020

1. निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों के प्रति बी.पी.एल. परिवारों में जागरूकता की स्थिति ; 1-6
एक समाजशास्त्रीय अध्ययन
दीक्षा भट्ट एवं डॉ. आन्नद प्रकाश सिंह, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल की इतिहास दृष्टि 7-13
डॉ. मजीद शेख, पैठण (महाराष्ट्र)
3. लोकनाट्यों की उत्पत्ति और उनका इतिहास 14-16
डॉ. शिवांगी श्रीमाली, उदयपुर
4. भित्ति चित्रण परम्परा एवं तकनीक : विशेष संदर्भ राजस्थान 17-22
डॉ. गीता शर्मा, किशनगढ़
5. औरंगजेब की जजिया नीति का महाराणा राजसिंह द्वारा प्रतिरोध का अध्ययन 23-26
डॉ. सुशीला शक्तावत, जोधपुर
6. नक्सलवादी आंदोलन के हिंसक स्वरूप का अध्ययन 27-30
विकाश कुमार, छपरा (बिहार)
7. जनजातीय इतिहास लेखन की परम्परा 31-33
डॉ. कैलाश चन्द गुर्जर, उदयपुर
8. इंदुलेखा: एक आधुनिक स्त्री की दास्तान 34-37
स्मिता रजक, कोलकाता (पश्चिम बंगाल)
9. 17 वीं 18 वीं शताब्दी में वस्त्र उद्योग : मारवाड़ के विशेष सन्दर्भ में 38-41
डॉ. मधु कुमावत, किशनगढ़
10. आदिवासियों में सामाजिक एवं राजनैतिक जनजाग्रति में मामा 42-45
बालेश्वर दयाल का योगदान
कान्ति कटारा, उदयपुर
11. स्वावलंबी परम्परा बनाम आधुनिक भारत: सततता से मृगतृष्णा की ओर 46-51
डॉ. अनुज कुमार मिश्रा, कानपुर (उत्तरप्रदेश)
12. नरेश मेहता कृत "संशय की एक रात" में युद्ध-शांति का द्वन्द्व 52-62
श्रीमती अलका जैन, किशनगढ़
13. सगतरासो में वर्णित सामाजिक जीवन एक अध्ययन 63-66
परस राम कुमावत, उदयपुर
14. भारतीय समाज में दलित स्त्री चिन्तन 67-70
दिनेश कुमार पाल, प्रयागराज (उत्तरप्रदेश)
15. 'रजतोपदेश महाकाव्यम्' में वर्णित धर्म विषयक अवधारणा 71-75
ज्योति पालीवाल, जोधपुर

16. धार्मिक संदर्भ में कबीर की क्रांतिकारी दृष्टि चंदन साव, गंगपुर (पश्चिम बंगाल)	76-80
17. याज्ञवल्क्य स्मृति में प्रतिपादित राजधर्म : एक अध्ययन डॉ. मूल चन्द, चूरु	81-86
18. डॉ. सत्यनारायण की कहानियों में यथार्थ के विविध रूप नाथू राम हिंगोनिया, अजमेर	87-90
19. वागड़ में भील जनजाति का संघर्ष एवं स्वतन्त्रता आन्दोलन प्रकाश चन्द्र यादव, उदयपुर	91-96
20. निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व टाटा मोटर्स लिमिटेड रिपोर्ट (2018-19 के संदर्भ में) संजय कुमार, बांदीकुई	97-101
21. राजस्थान का लोकनाट्य : रावलो की रम्मत डॉ. प्रतिभा सांखला, जोधपुर	102-104
22. 'मम से ममेत्तर के कवि : अज्ञेय' सारांश डॉ. निक्की सैन, जोधपुर	105-108
23. हिंदी दलित कहानी में चित्रित जीवन संघर्ष, चेतना और प्रतिरोध का स्वर डॉ. कुलदीप सिंह मीना, जोधपुर	109-113
24. पुस्तक समीक्षा - कबीर के आलोचक सुभाष चन्द्र, प्रयागराज (उत्तरप्रदेश)	114-116
25. Space and Confinement in the Reading of Beckett's <i>Waiting for Godot</i> Deepika Tiwari, Patna (Bihar)	117-120
26. A Glimpse of <i>Paturs'</i> (Dancing Girls) Life- The Question of Their Identity: Recognized as a Dancer or as a Member of Royal Household of Jaipur State Kavita Kumari, New Delhi	121-125
27. Reading of Spaces in the play <i>The Lover</i> by Harold Pinter Puja Kumari, Patna (Bihar)	126-129
28. An Analysis of National Pension Scheme 2004 - A Study of Some Selected Enterprises in Rajasthan with special reference to Kota District Dr. Ankur Jain, Kota	130-133
29. Ethics and Social Sciences Dr. Saroj Harit, Churu	134-140
30. Lesbianism as an Outcome of Resistance for Heterosexuality in, "Compulsory Heterosexuality and Lesbian Existence" Written by Adrienne Rich Nisha Sharma, Jaipur	141-144
31. A Study on Pedagogy of Accounting Education in Government Colleges of Rajasthan During Pendemaic Era Priya Meena, Udaipur	145-153

निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों के प्रति बी.पी.एल. परिवारों में जागरूकता की स्थिति ; एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

दीक्षा भट्ट

शोधार्थी, एम.बी.पी.जी. कॉलेज, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)

डॉ. आन्नद प्रकाश सिंह

प्रोफेसर, एम.बी.पी.जी. कॉलेज, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहे परिवारों के विकास हेतु विभिन्न निर्धनता उन्मूलन योजनाओं के माध्यम से निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम संचालित किया जा रहे है, जिनका उद्देश्य गरीबों की वास्तविक संख्या में कमी लाना है। जागरूकता का अर्थ है सजग जीवन। ऐसा जीवन जो घर-परिवार की जानकारी, समाज-देश की जानकारी एवं अपने हित की जानकारी रखता हो। जागरूकता खुद को और खुद की क्षमताओं को पहचानना है, जागरूकता हमेशा गतिशीलता लाती है, हमारे गाँव बहुत तेजी से उन्नति कर रहे हैं आधुनिक तरीके खेती, साफ-सफाई, स्वच्छता के प्रति जागरूकता सहित आज हर गाँव को बुनियादी सुविधाओं का लाभ मिले मिशन अन्तोदय का क्रियान्वयन गरीबी उन्मूलन इसी का ही परिणाम है ग्रामीण विकास से तात्पर्य केवल लोगों के आर्थिक विकास से ही नहीं बल्कि विशाल सामाजिक परिवर्तन से है। योजनाओं को लेकर जब हमें किसी भी प्रकार की जानकारी नहीं होगी तो कैसे हम उसका लाभ उठा पायेंगे। इन कार्यक्रमों की जानकारी के अभाव में निर्धन ग्रामीणों की संख्या में कमी लाना सम्भव नहीं है, इसके लिए ग्रामीणों में जागरूकता की आवश्यकता है, जागरूक होकर ही निर्धनता उन्मूलन किया जा सकता है।

संकेताक्षर : बी.पी.एल. परिवार, निर्धनता उन्मूलन, जागरूकता, ग्राम सभा।

नि

र्धनता या गरीबी एक अवस्था है, जिसमें जीवन जीने के लिए न्यूनतम उपयोग रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मानवीय आवश्यकताओं को प्राप्त करने में असमर्थता है, इस अभाव को निर्धनता कहते हैं।

निर्धनता रेखा- निर्धनता रेखा आय के उस स्तर को कहते हैं जिससे कम आमदनी होने से वे इंसान अपनी भौतिक जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ होते हैं। गरीबी रेखा अलग-अलग देशों में अलग-अलग होती हैं। उदाहरण के लिए अमेरिका में निर्धनता रेखा भारत में मान्य निर्धनता रेखा से काफी परे है।

निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम- निर्धनता उन्मूलन योजना केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा आरम्भ की गयी किसी योजना/कार्यक्रम को निर्देशित करता है, जो गरीबी के किसी पहलू की ओर ध्यान दिलाने के लिए उद्देशित है। इनमें सामाजिक सुरक्षा उपाय भी शामिल हैं। निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम से आशय यह है कि निर्धनता को दूर करने के लिए वे कार्यक्रम जो बी.पी.एल. परिवारों की मदद कर रहे हैं।

ग्रामसभा- विकास प्रक्रिया में आम देशवासियों की हिस्सेदारी सुनिश्चित करने और विकास योजनाओं की तैनाती तथा क्रियान्वयन में शासन सत्ता की पहली इकाई ग्रामसभा है, ग्रामसभा को लोकतांत्रिक शासन का हृदय भी कहा जाता है क्योंकि इसी के माध्यम से ही ग्रामवासी अपने विकास के निर्णय स्वयं लेते हैं और अपने संशोधनों का पूर्ण उपयोग तथा अधिकारों को समझते हैं व प्रतिभाग करते हैं।

हमारा भारत वर्ष स्वतन्त्रता के करीब- करीब 73 वर्ष पूरे कर चुका है, भारत में स्वाधीनता से ही निर्धनता एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। निर्धन भारत के समस्त लोगों को रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध कराने तथा गांवों से निर्धनता दूर करने के उद्देश्य से ग्रामीण विकास मंत्रालय ने अनेकों

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का शुभारम्भ किया है तथा यह कार्यक्रम अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु कार्यरत भी है परन्तु निर्धनता यह अभी भी चुनौती बनी हुई है, धन की कमी, योजना कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में खामियां और स्वयं ग्रामीणों के बीच अशिक्षा, चेतना और जागरूकता का अभाव जैसे अनेक कारणों से गांवों से निर्धनता के अभिशाप को पूरी तरह से दूर नहीं किया जा सका है, फिर भी अगर आकड़ों देखे जाए तो रंगराजन समूह ने पाया कि वर्ष 2011-12 में भारत की 29.5 प्रतिशत जनसंख्या (36.3 करोड़) रेखा से नीचे रह रही थी। ग्रामीण क्षेत्रों की 30.9 प्रतिशत (26.05 करोड़) तथा शहरी क्षेत्रों की 26.4 प्रतिशत जनसंख्या (10.25 करोड़) निर्धनता रेखा से नीचे रह रही निर्धनता अनुपात वर्ष 2009-10 में ग्रामीण क्षेत्रों में 39.6 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2011-12 में 30.9 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रों में 35.1 प्रतिशत से घटकर 26.4 प्रतिशत रह गया है इस प्रकार ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही क्षेत्रों में निर्धनता अनुपात में 8.7 प्रतिशतांक की कमी 2009-10 से 2011-12 के नीचे आई है। अखिल भारतीय स्तर से निर्धनता अनुपात 2009-10 में 38.2 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2011-12 में 29.5 प्रतिशत रह जाने का अर्थ है कि मात्र दो वर्षों में ही 9.16 करोड़ लोगों को निर्धनता रेखा से ऊपर ले आना योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया की एक सफलता मानी जा सकती है। 1,2

आजादी से पूर्व भी भारत की हालात बहुत ज्यादा अच्छी नहीं थी और 1973-74 में अधिकांश आबादी गरीबी में जीवन जीने को विवश थी, देश की कुल जनसंख्या का 54.09 प्रतिशत जनसंख्या बी.पी.एल. थी जिसमें ग्रामीण गरीबी 56.09 प्रतिशत थी, सड़क, पानी, बिजली, व शिक्षा का अभाव था और रोजगार एक बहुत बड़ी समस्या थी, इन सभी समस्याओं के निराकरण व विकास के लिए सरकार द्वारा विभिन्न योजना/कार्यक्रम चलाये गये जिनमें मुख्य रूप से मनरेगा, प्रधानमन्त्री आवास योजना ग्रामीण, पेंशन योजना, एन.आर.एल. एम. आदि प्रमुख हैं। ताकि लोगों को विकास के अवसर प्राप्त हो सकें। इन सभी योजनाओं के बावजूद ग्रामीण समस्याएँ सुलझती नहीं दिख रही हैं, गरीबों ग्रामीणों के हित के लिए चलाये जा रहे हैं निर्धनता उन्मूलन योजनाओं का पूरा लाभ गरीबों के स्थान पर अन्य लोगों के पास चला जाता है इसका सबसे बड़ा कारण जागरूकता का अभाव है और इसके कारण

आज भी गरीबों की संख्या में कमी नहीं हो पा रही है। जानकारी के अभाव में अनेकोनेक समस्याओं ने अपने पाँव पसारे हुए हैं उनमें से एक है निर्धनता। भारत में निर्धनता निवारण अगर सफल नहीं हुआ है तो इसके लिए भी गरीब कम दोषी नहीं हैं, भारत में गरीबों के बीच अपने हक के लिए लड़ने की प्रवृत्ति नहीं है, ये निर्धनता को ईश्वरीय देन समझते हुए अपनी नियति मान बैठे हैं और इसी का परिणाम है कि निर्धनता जस की तस बनी हुई है। जन जागरूकता की कमी ही कहा जाएगा कि एक निर्धन व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ होने हे बाद भी काम नहीं करना चाहता, भीख मांगकर जीवनयापन करना बेहतर समझता है।

खान (2009) ने अपने अध्ययन में इस तथ्य को प्रमाणित किया है, इन्होंने पाया कि राजस्थान में बी. पी.एल. परिवारों के केवल 16 प्रतिशत परिवारों को क्षेत्र में क्रियान्वित कि गयी गरीबी उन्मूलन से सम्बन्धित सभी योजनाओं की जानकारी थी, तथा कुछ परिवार 33.3 प्रतिशत ऐसे थे जिन्हें किसी भी योजनाओं की जानकारी नहीं थी, 50.6 प्रतिशत बी.पी.एल. परिवार ऐसे थे जो सरकार द्वारा क्रियान्वित कुछ योजनाओं की जानकारी रखते थे यह तथ्य बतलाता है कि बी.पी.एल. परिवारों में सरकार द्वारा क्रियान्वित योजनाओं के प्रति निम्न जागरूकता का स्तर है सरकार द्वारा इन परिवारों में जागरूकता लाने के लिए कई कार्यक्रम भी चलाये गये जैसे दीवाल लेखन, विज्ञापन, पम्पलेट विवरण, सूचना बोर्ड इत्यादि। राव (2008) ने अपने अध्ययन रोजगार गांरटी योजना में जागरूकता के स्तर को जानने के लिए किया और पाया कि आंध्रप्रदेश में 87.8 प्रतिशत ग्रामीण जनता योजनाओं के प्रति जागरूक है। 10.2 प्रतिशत जम्मू-कश्मीर राज्य में जागरूकता पायी गयी। सिंह गुरुदेव, अमन प्रति कोर और टी.के. गील ने पंजाब राज्य के जालंधार जिले के दो विकासखण्ड में स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार का अध्ययन किया जिसमें उन्होंने पाया कि हितग्राहियों में योजनाओं का प्रति जागरूकता का स्तर सर्वाधिक 90.2 प्रतिशत है।

यू.एन.एफ.पी.ए. ने सर्वेक्षणात्मक अध्ययन पाँच राज्यों के जननी सुरक्षा योजनाओं के प्रति जागरूकता के स्तर को बतलाया कि 76 से 87 प्रतिशत जागरूकता का स्तर है, इसके अलावा बी.पी.पी.एल. परिवारों में जागरूकता के स्तर को जानने के लिए अन्य शोधकर्ताओं में तिवारी (1983) जोशी (2001)

मथुरयप्पा (2010) डी.के. श्रीवास्तव (2007) एवं बंधोपाध्याय (2007) के अध्ययन में भी सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं के प्रति जागरुकता का स्तर कम होने के तथ्य को स्वीकार किया है जबकि प्रदीप कुमार (2008) एवं श्रीमती किरन तिवारी (2002) के अध्ययन में गरीबी रेखा से नीचे रह रहे परिवारों के लोगों में योजनाओं के प्रति जागरुकता पाई गयी है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों की जानकारी के स्रोत का पता लगाना।
2. बी.पी.एल.परिवारों में निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों की जानकारी की स्थिति का पता लगाना।
3. निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों से लाभान्वित परिवारों की स्थिति को ज्ञात करना।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध पत्र नैनीताल जनपद के गौलापार क्षेत्र के वह समस्त गाँव सम्मिलित है, जिनमें बी. पी. एल. परिवारों का चुनाव दैव निदर्शन की लाटरी पद्धति द्वारा 350 परिवारों को अध्ययन हेतु सम्मिलित किया गया। आंकड़ा को एकत्रित करने के लिए एक साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया गया है, जिनमें बी. पी. एल. परिवारों से निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम की जानकारी के स्रोत एवं लाभान्वित परिवारों की स्थिति से सम्बन्धित प्रश्न किये गये जिसके द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर सारणियों का निर्माण करके निष्कर्ष निकाले गये हैं।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में इन्हीं तथ्यों को आधार मानकर बी.पी.एल. परिवारों के लिए निर्धारित योजनाओं के तहत मिलने वाली सुविधाओं के सन्दर्भ में जन सामान्य में जानकारी प्राप्ति के स्रोत का पता लगाना है-

तालिका संख्या - 1 जानकारी प्राप्ति के स्रोत के सापेक्ष उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

क्र.स.	स्रोत	आवृत्ति	प्रतिशत
1	ग्राम सभा	238	68
2	टेलीविजन/अखबार	67	19
3	विकास खण्ड (ब्लॉक)	14	4
4	पड़ोसियों के लाभान्वित होने से	31	9
	योग	350	100

क्रियान्वित योजनाओं की जानकारी मिलने के स्रोत संबंधी तालिका से यह ज्ञात होता है कि चयनित 350 उत्तरदाताओं में 68 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्हें क्रियान्वित योजनाओं की जानकारी ग्राम सभा से प्राप्त होती है, 19 प्रतिशत उत्तरदाता ने बतलाया कि उन्हें क्रियान्वित योजनाओं की जानकारी टेलीविजन/अखबार से प्राप्त होती है, 4 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्हें क्रियान्वित योजनाओं की जानकारी विकास खण्ड (ब्लॉक) से प्राप्त होती है, 9 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उन्हें क्रियान्वित योजनाओं की जानकारी पड़ोसियों के लाभान्वित होने से प्राप्त होती है।

तालिका संख्या - 2 ग्राम सभा की खुली बैठक में प्रतिभाग के सापेक्ष उत्तरदाताओं की स्थिति

क्र.स.	प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	238	68
2	नहीं	22	06
3	कभी-कभी	90	26
	योग	350	100

सारणी संख्या 2 के आंकड़ों से परिलक्षित होता है 68 प्रतिशत उत्तरदाता ग्राम सभा की बैठक में प्रतिभाग करते हैं, 26 प्रतिशत उत्तरदाता ग्राम सभा की बैठकों में कभी-कभी प्रतिभाग करते हैं तथा 06 प्रतिशत उत्तरदाता ग्राम सभा की बैठक में प्रतिभाग नहीं करते हैं, उनका कहना है कि समय के अभाव के कारण वह बैठकों में नहीं जा पाते हैं।

तालिका संख्या- 3

निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों की तथा उन कार्यक्रमों के द्वारा प्राप्त होने वाली सुविधाओं की चर्चा ग्रामसभा की बैठक में की जाती है, अथवा नहीं।

ग्राम सभा किसी पंचायत क्षेत्र की आमसभा का वह सशक्त मंच है जो अपने क्षेत्र की तकदीर व तस्वीर दोनों ही बदल सकती है। ग्रामसभा के महत्व को ग्रामवासियों को समझना चाहिए क्योंकि ग्रामसभा की बैठक, चर्चा एवं आलोचना का ऐसा मंच है जहाँ पर सामाजिक परियोजना या उत्पाद का मूल्यांकन किया जा सकता है।

क्र.सं.	प्रत्युत्तर	उत्तरदाता	
		आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	205	59
2	नहीं	145	41
	योग	350	100

तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अधिकांश 59 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों की तथा उन कार्यक्रमों के द्वारा प्राप्त होने वाली सुविधाओं की चर्चा ग्रामसभा की बैठक में की जाती है। जबकि 41 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है, कि निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों की तथा उन कार्यक्रमों के द्वारा प्राप्त होने वाली सुविधाओं की चर्चा ग्रामसभा की बैठक में नहीं की जाती है।

तालिका संख्या - 4

जानकारी देने के विवरण के सापेक्ष उत्तरदाताओं की स्थिति

क्र.स.	विवरण	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	252	72
2	नहीं	98	28
	योग	350	100

उपर्युक्त सारणी तथ्यों से विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 72 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि पंचायत प्रतिनिधि द्वारा उनको योजना कार्यक्रमों की जानकारी दी जाती है जबकि 28 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि उन्हें पंचायत प्रतिनिधि द्वारा कोई जानकारी नहीं दी जाती है।

तालिका संख्या - 5

निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों की जानकारी के सापेक्ष उत्तरदाताओं की स्थिति

राष्ट्र का ग्रामीण विकास मंत्रालय निर्धनता उन्मूलन हेतु अनेकों योजनाओं के क्रियान्वयन में संबद्ध है, जिनका उद्देश्य ग्रामीणजनों का प्रशस्त बनाकर उनके जीवन स्तर में सुधार लाना है। विकास कार्यक्रमों को अलग-अलग रणनीतियों द्वारा समाज के उपेक्षित वर्ग तक पहुंचाने के लिए इनका क्रियान्वयन किया गया है जिनमें ग्रामीण आवास योजना, स्वरोजगार योजना, रोजगार योजना, शिक्षा योजना, खाद्यान्न योजना, समाज कल्याण योजनाएं आदि प्रमुख हैं। प्रस्तुत अध्ययन में इन्हीं तथ्यों को आधार मानकर यह ज्ञात किया गया है कि उत्तरदाताओं को किन-किन योजनाओं की जानकारी है। जिसका विवरण तालिका में प्रदर्शित है।

अधिकारी या पंचायत प्रतिनिधि द्वारा निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों की जानकारी ग्रामीणों को देने का विवरण

क्र. सं.	जनकारी	हाँ		नहीं		योग	
		आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
1	मनरेगा	350	100	-	-	350	100
2	राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM)	305	86	49	14	350	100
3	अन्तोदय अन्न योजना	350	100	-	-	350	100
4	प्रधानमंत्री आवास योजना ग्रामीण	350	100	-	-	350	100
5	उज्ज्वला योजना	322	92	28	08	350	100
6	राष्ट्रीय बायोगैस योजना	311	89	38	12	350	100
7	सौभाग्य योजना	273	78	77	22	350	100
8	सर्वशिक्षा अभियान योजना	296	84	56	16	350	100
9	पेंशन योजना	350	100	-	-	350	100

निर्धनता उन्मूलन हेतु चलाई जा रही योजनाओं की जानकारी सम्बन्धी उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (मनरेगा) योजना में अधिकांश 100 प्रतिशत उत्तरदाता योजना क्रियान्वयन की जानकारी रखते हैं। राष्ट्र ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) योजना की जानकारी सर्वाधिक 305 86 प्रतिशत उत्तरदाताओं को है। जबकि न्यूनतम 49 14 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बतलाया है कि वह योजना की जानकारी नहीं रखते हैं। अन्तोदय अन्न योजना अधिकतम 100 प्रतिशत उत्तरदाता जानकारी रखते हैं, प्रधानमंत्री आवास योजना ग्रामीण के सम्बन्ध में सभी चयनित 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं को जानकारी है, उज्ज्वला योजना की अधिकांश 92 प्रतिशत उत्तरदाताओं को क्रियान्वयन की जानकारी है। तथा शेष 08 प्रतिशत उत्तरदाताओं

को योजना के क्रियान्वयन की जानकारी नहीं है। राष्ट्रीय बायोगैस योजना की जानकारी 89 प्रतिशत गरीबी रेखा से नीचे रह रहे परिवारों को है शेष 11 प्रतिशत परिवारों ने यह बतलाया है कि उन्हें जानकारी नहीं है। सौभाग्य योजना की अधिकांश 78 प्रतिशत उत्तरदाताओं को जानकारी होना बतलाया गया है जबकि 22 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया कि उन्हें सौभाग्य योजना की सम्पूर्ण जानकारी नहीं है। अध्ययन में पाया गया कि सर्वशिक्षा अभियान योजना के अन्तर्गत 84 प्रतिशत उत्तरदाताओं को योजनाओं की जानकारी है किन्तु 16 प्रतिशत उत्तरदाताओं को योजनाओं की जानकारी नहीं है। समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित वृद्धावस्था पेंशन योजना के सम्बन्ध में सर्वाधिक 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह स्पष्ट किया है कि उन्हें योजना की जानकारी है।

तालिका संख्या - 6

निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों से लाभ प्राप्ति के सापेक्ष उत्तरदाताओं का विवरण

क्र.सं.	लभ	हाँ		नहीं		योग	
		आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
1	मनरेगा	271	77	79	23	350	100
2	राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM)	274	78	76	22	350	100
3	अन्तोदय अन्न योजना	350	100	-	-	350	100
4	प्रधानमंत्री आवास योजना ग्रामीण	286	82	64	18	350	100
5	उज्ज्वला योजना	322	92	28	08	350	100
6	राष्ट्रीय बायोगैस योजना	231	66	119	34	350	100
7	सौभाग्य योजना	248	71	102	29	350	100
8	सर्वशिक्षा अभियान योजना	154	44	196	56	350	100
9	पेंशन योजना	93	27	257	73	350	100

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि केन्द्र सरकार द्वारा ग्रामीण निर्धनता उन्मूलन एवं सामाजिक आर्थिक विकास हेतु चलाई जा रही योजनाओं से चयनित उत्तरदाताओं को लाभ प्राप्त हुआ है अथवा नहीं, मनरेगा से 77 प्रतिशत उत्तरदाताओं को लाभ प्राप्त हुआ है, जबकि 23 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने किसी कारणवश लाभ प्राप्त नहीं कर सके। राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) योजना का सर्वाधिक 78 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसका लाभ

लिया है तथा उसके अच्छे परिणाम भी दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु 22 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसका लाभ प्राप्त नहीं किया है इसी तरह अन्तोदय अन्न योजना का लाभ अधिकांश 100 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने लिया है तथा लाभन्वित होने के उपरान्त उनकी अनेक समस्याओं का निवारण भी हुआ है, प्रधानमंत्री आवास योजना ग्रामीण में 82 प्रतिशत उत्तरदाताओं को योजना का लाभ मिला है जबकि 18 प्रतिशत उत्तरदाताओं को योजना का लाभ नहीं मिला है

उज्वला योजना के सम्बन्ध में 92 प्रतिशत उत्तरदाता इस योजना के तहत लाभान्वित हुए हैं तथा शेष 08 प्रतिशत उत्तरदाता किन्हीं कारणों से इसका लाभ नहीं ले सके हैं। राष्ट्रीय बायोगैस योजना के अन्तर्गत लाभान्वितों की संख्या 66 प्रतिशत है जबकि 34 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसका लाभ नहीं लिया क्योंकि वह पात्रता की शर्तों को पूरा नहीं कर पाये तथा जमीन के अभाव में भी वह इसका लाभ नहीं ले सके हैं। सौभाग्य योजना के सम्बन्ध में 71 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसका लाभ प्राप्त किया है, परन्तु 29 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस योजना का लाभ प्राप्त नहीं किया क्योंकि वह पूर्व से चली आ रही योजना से लाभान्वित हो रहे हैं। सर्वशिक्षा अभियान योजना से 44 प्रतिशत उत्तरदाता लाभान्वित हुए जबकि 56 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह स्वीकारा है कि वह इस योजना के तहत लाभान्वित नहीं हुए हैं क्योंकि वे अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में भेजना पसन्द नहीं करते उनका कहना है कि सरकारी स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता ठीक नहीं है तथा अध्यापकों की अनुपलब्धता सदैव बनी रहती है वह अपनी मजदूरी का अधिकाधिक हिस्सा बच्चे की शिक्षा पर व्यय कर रहे हैं ताकि उनके बच्चे अच्छी शिक्षा प्राप्त करके उनको निर्धनता से उबारेंगे। वृद्धावस्था पेंशन योजना के सम्बन्ध में 27 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने लाभ लिया जबकि 73 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस योजना का लाभ नहीं लिया इसका कारण है कि अधिकांश उत्तरदाता पात्र नहीं हैं।

निष्कर्ष: उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्धनता उन्मूलन के लिए सरकार कई योजनाएँ चल रही हैं, लेकिन जानकारी के अभाव एवं जागरुकता के अभाव में लाभुक उससे वंचित हैं, जागरुकता ना होने के कारण लोगों को लाभ से वंचित होना पड़ रहा है, ग्रामीण निर्धनों को निर्धनता के दुश्चक्र से निकालने के लिए यह आवश्यक है कि निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों का प्रचार- प्रसार किया जाये। जागरुक होकर ही निर्धनता से निजात पाई जा सकती है, अध्ययन क्षेत्र में भी यह बात स्पष्ट होती है उत्तरदाता ग्राम सभा की बैठकों में जाने से तथा वहा आपसी बातचीत व चर्चा होने से एवं अधिकारी या पंचायत प्रतिनिधि द्वारा भी निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों की जानकारी तथा उन कार्यक्रमों के द्वारा प्राप्त होने वाली सुविधाओं की जानकारी प्राप्त करते हैं तथा कुछ उत्तरदाताओं को उनके पड़ोसियों द्वारा योजनाओं का

लाभ लेने से जानकारी प्राप्त होने की बात कही गयी है। वही अधिकाधिक निर्धनों ने इन योजनाओं का लाभ लिया है, जिसके परिणामस्वरूप लोगों के जीवन-स्तर में सुधार हुआ है। स्वयं निर्धन जागरुक हुए हैं और वे इस भयंकर समस्या से मुक्ति पाने के लिए सजग और प्रयत्नशील हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारत में निर्धनता, प्रतियोगिता दर्पण, 22/11ए स्वदेशी बीमा नगर, आगरा-282002, 2016-17, पृ 73-77
2. कुलश्रेष्ठ नीतिश 2012 पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास योजनाएं रिटु पब्लिकेशन जयपुर पृष्ठ-1-17
3. त्यागी, सुरेन्द्र; 'पंचायती राज और ग्रामीण विकास', वंदना पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ-141
4. लवानिया, एम.एम.; 'ग्रामीण समाजशास्त्र', रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर, नई दिल्ली, पृष्ठ 347-369,
5. खान इकबाल, पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास योजनाओं, रिटु पब्लिकेशन्स जयपुर 2009 पृ.सं. 82
6. जोशी, संदीप ; गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम और पंचायतों का अध्ययन, कुरुक्षेत्र वर्ष 45, अंक 5, मार्च 2011 पृ. 11
7. सिंह, संतोश कुमार ; ग्राम सभा : जमीनी लोकतंत्र का सशक्त आधार, कुरुक्षेत्र, वर्ष-60, मासिक अंक 03, जनवरी 2014, पृ. 38.
8. पटेल, सुधीर कुमार ; ग्राम पंचायत में प्रशासनिक पारदर्शिता जरूरी, कुरुक्षेत्र, वर्ष-60, मासिक अंक 03, जनवरी 2014, पृ. 17.
9. Singh Sukhdev, Aman preet kaur & T.K gill; Role of swaran jaynati gram swarozgar yojna (sgsy) in scio-enocnomic Devlopment In rural Punjab, A Journal of the Indian Association of Social Science, Institutiins (IASSI) Jan. Dec. 2009, P.48
10. UNFPA (United Nation Population fund-India) Concurrent Assessment of janani suraksha yojna (JSY) in selected states, Bihar, M.P., Orissa, Rajasthan, U.P., Published by UNFPA 55 Lodi Estate New Delhi India 2009. P.10-26
11. Mutharayappa, R; Functioning of janani suraksha yojana in Hassan district of Karnataka, The Indian Journal of social work, Vol 71, no. April 2010 P. 170

अगर शुक्ल जी ने पहली परंपरा न बनाई होती तो शायद द्विवेदी जी दूसरी परंपरा न बना पाते। हमें यह बात समझनी होगी कि जिस युग में शुक्ल जी हुए और जो स्थितियाँ और परिस्थितियाँ उनके सामने थीं, उसी के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने साहित्य का मूल्यांकन किया। द्विवेदी जी के सामने भिन्न स्थितियाँ और भिन्न परिस्थितियाँ रहीं तभी वे दूसरी परंपरा खोज सके।

हिंदी साहित्येतिहास के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का आगमन युगांतकारी रहा है। हिंदी-साहित्येतिहास की परंपरा में सर्वोच्च स्थान आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' (सन् 1929ई.) को प्राप्त है। इस ग्रंथ की रचना मूलतः 'हिंदी शब्द सागर' की भूमिका 'हिंदी साहित्य का विकास' शीर्षक से हुई थी। इसके पूर्व हिंदी छात्रों को साहित्येतिहास पढ़ाने के लिए कुछ 'संक्षिप्त नोट' लिखी गई थीं। आगे सन् 1927ई. में नागरी प्रचारिणी पत्रिका में वह तीन निबंधों के रूप में प्रकाशित हुई- 1. हिंदी साहित्य का वीरगाथा काल 2. हिंदी साहित्य का पूर्व मध्यकाल और 3. हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल। जनवरी, 1929 ई. में 'हिंदी शब्द सागर' प्रकाशित हुआ। उसकी भूमिका का संवर्द्धित संस्करण पुस्तककार रूप में 'हिंदी साहित्य का इतिहास' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। उसके बाद सन् 1940ई. में लेखक ने इसका पुनः संशोधन और संवर्द्धन किया। इसमें आदिकाल के भीतर वज्रयानी सिद्धों और नाथपंथी योगियों, भक्तिकाल के अंतर्गत स्वामी रामानंद और नामदेव तथा रीतिकाल के अलंकार ग्रंथों के उद्भव और विकास आदि पर अधिक विचार किया गया। आचार्य शुक्ल के निधन के बाद आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा इस ग्रंथ का परिवर्द्धित संस्करण तैयार किया गया, जिसमें अद्यतन सामग्री का उपयोग किया गया। कुसुम चतुर्वेदी लिखती हैं, "हिंदी साहित्य का इतिहास शुक्ल जी ने तीन बार पूरा किया और तीनों बार अधूरा रह गया। आधुनिक काल के साथ यह घटना घटी। पहली बार प्रेस जाते समय प्रेस सामग्री या तो रास्ते में गायब हुई या प्रेस पहुंचने के बाद। आचार्य रामचंद्र शुक्ल शोध संस्थान में दिए गए अपने भाषण में डॉ. ना.नागप्पा ने प्रेस से गायब सामग्री का विवरण दिया था। संकेत यह भी किया कि कुछ लोग शुक्ल जी से ईर्ष्या करते थे और कुछ उनके समाजवादी दृष्टिकोण के विरोधी थे। दूसरी बार की लिखित सामग्री शुक्ल जी का नौकर ही रद्दी समझकर बेच आया था। शुक्ल जी के मृत्यु के बाद जो सामग्री गायब हुई उसका विवरण डॉ. शिवमंगल

सिंह 'सुमन' और गोकुलचंद्र शुक्ल ने दिया है।"²

हिंदी साहित्य के इतिहास की एक समस्या यह है कि हिंदी साहित्य का आरंभ कब से माना जाए। इस समस्या का संबंध हिंदी भाषा के इतिहास से भी है। कुछ विद्वानों ने अपभ्रंश के परवर्ती रूप को पुरानी हिंदी मानकर वहीं से हिंदी साहित्य के इतिहास का आरंभ माना है। आचार्य शुक्ल जी ने प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिंदी साहित्य का आविर्भाव माना है। वे 'अपभ्रंश' को कभी 'प्राकृताभास हिंदी' और कभी 'पुरानी हिंदी' भी कहते हैं। उन्होंने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' एक सम्यक-दृष्टि को अपनाते हुए लिखा है। उन्होंने हिंदी साहित्य को चार कालों में विभक्त किया है - 1. वीरगाथा काल, 2. भक्तिकाल, 3. रीतिकाल और 4. गद्यकाल। इस वर्गीकरण के प्रमुख दो आधार रहे हैं - 1. रचना की प्रचुरता और 2. ग्रंथों की प्रसिद्धि। भक्तिकाल में मुख्य रूप से दो काव्य-धाराएं मानी गई हैं - 1. निर्गुण धारा और 2. सगुण धारा। निर्गुण धारा की दो शाखाएं मानी गई हैं - ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी और उसी प्रकार सगुण धारा की दो शाखाएं - रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा। रीतिकालीन काव्य का धाराओं में विभाजन नहीं है। आधुनिक काल को आचार्य शुक्ल ने 'गद्यकाल' कहा है। उनकी धारणा रही है, "आधुनिक काव्य में गद्य का आविर्भाव सबसे प्रधान साहित्यिक घटना है। इसलिए उसके प्रसार का वर्णन विशेष विस्तार के साथ करना पड़ा है।"³ आधुनिक काल के साहित्य को गद्य और काव्य खंड में विभाजित कर उसे प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय उत्थान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। डॉ. सुमन राजे लिखती हैं, "यह सत्य है कि शुक्ल जी के काल विभाजन का समर्थन भी खूब हुआ और विरोध भी। दोनों उसकी शक्ति के ही प्रमाण माने जाने चाहिए। और सबसे बड़ी बात तो यह कि, उनके इतिहास-सिद्धांत, जीवन, जगत और साहित्य मंथन से उद्भूत हुए थे थोपे हुए अथवा चिपकाए हुए नहीं। उन्होंने इतिहास जुटाया ही नहीं जगाया भी है।"⁴ हिंदी साहित्य के विकास-क्रम का यह काल-विभाजन कमोबेश परिवर्तन के साथ आज स्वीकार किया गया है।

प्रत्येक काल के आरंभ में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का विवरण देकर फिर उस काल के साहित्य को उन परिस्थितियों की उपज साबित करना इस ग्रंथ की अपनी एक विशेषता है। साहित्येतिहास-लेखन की इस पध्दति को लेकर आलोचकों ने आचार्य शुक्ल जी पर विधेयवादी साहित्येतिहास लेखक होने का आरोप भी किया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने देखा कि हिंदी साहित्य का आरंभिक काल भारतीय इतिहास का वह युग है जिसमें युद्धरत सामंत अपनी वीरता के प्रदर्शन में गौरव का अनुभव करते थे और राजाश्रित चारण राजस्तुतिमूलक अपनी रचनाओं से उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा करते थे। लोकगाथाओं और चरितकाव्यों की शैली पर आधारित रासो काव्यों में वीरगाथात्मक प्रवृत्ति लक्षित कर आचार्य शुक्ल ने उन्हें हिंदी की प्रतिनिधि रचनाओं के रूप में स्वीकार कर लिया और साधारण जनसमुदाय की चित्तवृत्तियों को प्रभावित करने वाली जैनियों के धार्मिक उपदेश वाली अपभ्रंश रचनाएं तथा सामाजिक रुढ़ियों का विरोध करनेवाली सिद्धों-नाथों की बानियां, सांप्रदायिक शिक्षामात्र होने के कारण शुद्ध साहित्य की सीमा से बाहर पड़ गयीं। अर्थात् सामंतवर्गीय रचनाओं को आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य में स्थान दिया है। रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में, “अपने-इतिहास लेखन में रामचंद्र शुक्ल किसी साहित्येतर आधार को स्वीकार नहीं करते। आदिकाल के विविधमुखी साहित्य में उन्होंने केंद्र में वीरगाथा काव्य को रखा, जो सच्चे अर्थों में ऐहिक काव्य है। परवर्ती कई इतिहासकारों ने जैनों, सिद्धों और नाथों के साहित्य को अधिक महत्त्व देना चाहा, पर आचार्य शुक्ल की दृष्टि में वह धार्मिक और सांप्रदायिक काव्य है, और इस दृष्टि से साहित्य की केंद्रीय प्रकृति को प्रकट नहीं करता। आदि काल में जैसे वे धर्म और अध्यात्म के आक्रांतकारी प्रभाव के प्रति सजग हैं, आधुनिक काल में वैसे ही राजनीति के।”⁵

आचार्य शुक्ल जी के ‘हिंदी साहित्य का इतिहास’ ग्रंथ की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि साहित्येतिहास में कवियों-साहित्यकारों के जीवन-वृत्त एवं रचनाओं की स्थूल जानकारी के स्थान पर रचनाओं के साहित्यिक मूल्यांकन को प्रमुखता दी गई है। रचनाओं के मूल्यांकन के लिए उन्होंने लोकधर्म तथा लोकमंगल की कसौटी अपनाई है। कवि या रचना के मूल्यांकन का उद्देश्य काल विशेष के साहित्य की प्रवृत्ति का निर्धारण और साहित्य-विकास के सूत्र को स्पष्ट करना रहा है न कि कवि या रचना की आलोचना। डॉ. माधव सोनटक्के जी ने लिखा है, ‘हिंदी साहित्य का इतिहास’ उनके गंभीर अध्ययन और विश्लेषण-सामर्थ्य का प्रमाण है। शुक्ल जी की आलोचना दृष्टि प्रमुखतः रसवादी और लोकमंगल- भावनाग्राही तथा रामचरितमानस से प्रेरित रही है। इसीलिए एक ओर वे सूर-कबीर जैसे श्रेष्ठ कवियों के प्रति भी न्याय नहीं कर सके और दूसरी ओर अपने समकालीन स्वच्छंदतावादी काव्य के प्रति भी

न्याय नहीं कर सके।”⁶ अर्थात् मुक्तक काव्य के साथ वे न्याय नहीं कर सके। क्योंकि मुक्तक की अपेक्षा प्रबंध को वे महत्त्व देते थे। निर्गुण काव्य का योग्य मूल्यांकन नहीं कर सके। अपितु नीतिवादी दृष्टिकोण के कारण छायावादी कवियों के साथ न्याय नहीं कर सके।

आचार्य शुक्ल जी के साहित्येतिहास की कई त्रुटियों की विशेषतः हिंदी साहित्य का आरंभ, आदिकालीन ‘वीरगाथाकाल’ तथा आधुनिक काल के ‘गद्यकाल’ के नामकरण, आदिकालीन नाथ, सिद्ध तथा जैन साहित्य की अवहेलना, संत साहित्य के प्रति असहिष्णु दृष्टिकोण, रीतिकाल के रीतितेतर काव्य की अनदेखी, केशवदास के प्रति बेरुखी, छायावादी काव्य की उपेक्षा आदि विषयों के संबंध में चर्चा भी की जाती है। भक्तिकालीन साहित्य के उदय के संबंध में मुस्लिम-प्रभाव विषयक उनकी मान्यता की तो सबसे अधिक आलोचना हुई है। पूर्व-मध्यकाल यानी भक्तिकाल के राजनीतिक परिदृश्य को लेकर वे लिखते हैं, “जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिंदू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?”⁷ इन्हीं त्रुटियों के निराकरण हेतु आगे साहित्येतिहास- परंपरा का विकास हुआ है। वस्तुतः उस युग की सीमित ज्ञानराशि को लेकर भी उन्होंने उसे जैसा रूप दिया, वह निश्चय ही उनके जैसे व्यक्ति के लिए ही संभव था। इतिहास-लेखन की परंपरा में उनका महत्त्व सदा अक्षुण्ण रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की इतिहास-दृष्टि

हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन को हम आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास-दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में अवलोकन करेंगे। परंपरा और प्रगति के आपसी संबंध की पहचान करना साहित्य के इतिहासकार का दायित्व है। इस संबंध की पहचान के बाद ही साहित्य का इतिहासकार सार्थक परंपराओं की रक्षा और विकास में सहायक हो सकता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के साहित्येतिहास की परिभाषा से उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है, “जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक

इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।⁸ उन्होंने हिंदी साहित्य का इतिहास लिखते समय हिंदी भाषा के व्यापक जातीय स्वरूप को पहचानकर उसके अंतर्गत मैथिली, ब्रजभाषा, अवधी, खड़ीबोली और राजस्थानी के साहित्य को शामिल किया है। हिंदी के इस व्यापक जातीय रूप और विकास को न समझ पाने के कारण ही कुछ लोग खड़ीबोली के साहित्य को ही साहित्य कहते हैं और इस तरह हिंदी जाति के इतिहास को छोटा कर देते हैं। स्वयं आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी के व्यापक जातीय स्वरूप की पहचान के बावजूद उर्दू साहित्य को हिंदी साहित्य के इतिहास में शामिल नहीं करते, जबकि हिंदी और उर्दू के साहित्य में एक ही भाषा-भाषी जाति के जीवन की वास्तविकताएं और आकांक्षाएं प्रकट हुई हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास में उर्दू साहित्य को शामिल न करने के पीछे एक तो उस समय का हिंदी-उर्दू विवाद है और दूसरे हिंदी जाति के निर्माण और विकास की अधूरी समझ। हिंदी और उर्दू के संबंध के बारे में आचार्य शुक्ल के विचार काफी उलझे हुए हैं। इस संदर्भ में उनके विचारों की सीमाओं पर विचार करते समय उस काल की ऐतिहासिक परिस्थितियों और विचारधारात्मक संघर्षों पर भी ध्यान देना चाहिए।

आचार्य शुक्ल के इतिहास में रचनाओं और रचनाकारों के मूल्यांकन में 'जनता' और 'शिक्षित जनता' के द्वंद्व का प्रभाव है। आचार्य शुक्ल के अनुसार सिद्धों ने निम्न श्रेणी की प्रायः अशिक्षित जनता को प्रभावित किया है, लेकिन इनकी कविताएं शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आ सकती। भक्तिकाल के निर्गुण संतों के काव्य के संदर्भ में उनकी दृष्टि है कि इसमें संस्कृत बुद्धि, संस्कृत हृदय और संस्कृत वाणी का वह विकास नहीं पाया जाता जो शिक्षित जनता को अपनी ओर आकर्षित करता, पर अशिक्षित और निम्न श्रेणी की जनता पर इस शाखा के संत महात्माओं का भारी उपकार है। यहाँ शिष्ट शिक्षित समुदाय और व्यापक सामान्य जनता का भेद स्पष्ट हो जाता है। शुक्ल जी ने शिक्षित समुदाय की ओर से संत कवियों की आलोचना की है। संतों ने अपनी कविता से सामान्य जनता में आत्मगौरव का भाव जगाने और उसे ऊपर उठाने का जो काम किया, उसके लिए शुक्ल जी ने उनकी सराहना की है, लेकिन संतों की कविता में 'संस्कृत बुद्धि, संस्कृत हृदय और संस्कृत वाणी' का शिष्ट जनोचित विकास न पाकर उसकी आलोचना की है। संतों की कविता में जन भावनाओं की अभिव्यक्ति है, वह सामान्य जनता की

भाषा में सामान्य जनता के लिए कविता की 'संस्कृत वाणी' के प्रेमी शिष्ट जनों के लिए नहीं। प्रयोजन और प्रभाव की एकता ही संत काव्य की व्यापक लोकप्रियता का कारण है। आचार्य शुक्ल जब आगे चलकर यह कहते हैं कि, 'संतों की वाणी में लोकधर्म की अवहेलना छिपी हुई थी' और वे 'यों ही' ज्ञानी बने हुए मूर्ख जनता को लौकिक कर्तव्यों से विचलित करना चाहते थे' तो बहुत आश्चर्य होता है। वास्तव में गलत दृष्टिकोण लेकर चलने पर गलत निष्कर्ष पर पहुंचना स्वाभाविक है। शुक्ल जी ने संत काव्य को लोक विरोधी मान लिया तो उससे प्रभावित होनेवाली जनता को भी 'मूर्ख' समझ लिया। संत कवि उस समय की सामंती समाज व्यवस्था उसके सांस्कृतिक मूल्यों और मर्यादाओं के विरुद्ध आवाज उठा रहे थे। यही नहीं, वे उस व्यवस्था में पीड़ित जनता में आत्मगौरव का भाव जगाकर उसे ऊपर उठा रहे थे, इसलिए उनको लोक विरोधी और जनता को 'मूर्ख' तथा 'अंधी भेड़' समझना गलत है। भक्तिकाल के संदर्भ में लिखते हैं, "आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गये। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?"⁹

आचार्य शुक्ल कविता में स्वाभाविक ढंग से राजनीति के आने की नहीं, बल्कि उससे बचने की कोशिश की आलोचना करते हैं। विद्यापति 'पदावली' के कारण 'मैथिल कोकिल' कहलाये। उस समय की लोक प्रचलित मैथिली भाषा का प्रयोग इन्होंने किया था। शुक्ल जी लिखते हैं, "विद्यापति को बंग भाषा वाले अपनी ओर खींचते हैं। सर जार्ज ग्रियर्सन ने भी बिहारी और मैथिली को 'मागधी' से निकली होने के कारण हिंदी से अलग माना है। पर केवल भाषा शास्त्र की दृष्टि से कुछ प्रत्ययों के आधार पर ही साहित्य का विभाजन नहीं किया जा सकता। कोई भाषा कितनी दूर तक समझी जाती है, इसका विचार भी तो आवश्यक होता है।"¹⁰ वे राजस्तुति से भरी और राजाश्रय के कारण सुरक्षित रचनाओं की तुलना में जनता के जीवन में जीवित जगनिक के 'आल्हा' की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। उनके शब्दों में, "जगनिक के काव्य का आज कहीं पता नहीं है पर उसके आधार पर प्रचलित गीत हिंदी भाषा-भाषी प्रांतों के गांव-गांव में सुनाई पडते हैं। ये गीत 'आल्हा' के नाम से प्रसिद्ध हैं और बरसात में गाये जाते हैं।"¹¹ वे जनभाषा में जन संस्कृति से जुड़ी कविता लिखने वाले विद्यापति और खुसरो को विशेष

महत्त्व देते हैं, “वीरगाथाकाल के समाप्त होते-होते हमें जनता की बहुत कुछ असली बोलचाल और उसके बीच कहे-सुने जाने वाले पद्यों की भाषा के बहुत कुछ असली रूप का पता चलता है। पता देने वाले हैं, दिल्ली के खुसरो मियां और तिरहुत के विद्यापति।”¹² आगे फिर लिखते हैं कि, “पश्चिम की बोलचाल, गीत, मुख प्रचलित पद्य आदि का नमूना जिस प्रकार हम खुसरो की कृति में पाते हैं, उसी प्रकार बहुत पूरब का नमूना विद्यापति के पदावली में। उसके पीछे फिर भक्तिकाल के कवियों ने प्रचलित देशभाषा और साहित्य के बीच पूरा-पूरा सामंजस्य घटित कर दिया।”¹³

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूफी कवियों के सामाजिक महत्त्व को रेखांकित करते हुए विशेष रूप से पद्मावत के काव्य-सौंदर्य को जिस तन्मयता के साथ उद्घाटित किया है, उस पर आचार्य द्विवेदी मुग्ध हैं। शुक्ल जी के प्रति श्रद्धाभिभूत होकर वह लिखते हैं, “इन कवियों में सर्वश्रेष्ठ पद्मावतकार मलिक मुहम्मद जायसी हैं, जिनके काव्य-सौंदर्य को चामत्कारिक रूप से उद्घाटन करने का श्रेय हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक पं.रामचंद्र शुक्ल को है। पद्मावत की प्रस्तावना में आपने जैसी काव्य-मर्मज्ञता दिखाई है, वैसी हिंदी तो क्या, अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी कम ही मिलेगी। यह प्रस्तावना अपने आप में एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृति है।”¹⁴

आचार्य शुक्ल की मान्यता थी कि हिंदी में ‘छायावाद’ बंगला साहित्य से आया है। और उसकी आध्यात्मिकता और रहस्यवादिता पर रवींद्रनाथ टैगोर का प्रभाव है, “यह स्वच्छंद नूतन पद्धति अपना रास्ता निकाल ही रही थी कि श्रीरवींद्रनाथ की रहस्यात्मक कविताओं की धूम हुई और कई कवि एक साथ रहस्यवाद और ‘प्रतीकवाद’ या ‘चित्रभाषावाद’ को ही एकांत ध्येय बनाकर चल पड़े। ‘चित्रभाषा’ या अभिव्यंजन पद्धति पर ही जब लक्ष्य टिक गया तब उसके प्रदर्शन के लिए लौकिक या अलौकिक प्रेम का क्षेत्र ही काफी समझा गया। इस बंधे हुए क्षेत्र के भीतर चलने वाले काव्य ने छायावाद का नाम ग्रहण किया।”¹⁵ शुक्ल जी की यह मान्यता अंशतः सही है। हिंदी में छायावाद बंगला से नहीं आया था, लेकिन छायावादी कवियों के रहस्यवाद पर टैगोर का प्रभाव पड़ा था।

आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि की एक बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने हिंदी साहित्य के विकास में लोक-संस्कृति और लोक-साहित्य के योगदान का मूल्यांकन करते हुए इसके जातीय रूप को उजागर किया है। साहित्य को जनता की चित्तवृत्ति का संचित

प्रतिबिंब मानने वाले आचार्य के लिए यह स्वाभाविक ही है कि वे लोक संस्कृति और लोक साहित्य से हिंदी साहित्य के संबंध पर विचार करते हैं।

हिंदी में गद्य की विभिन्न विधाओं का उदय और विकास भारतेंदु युग से होता है। आचार्य शुक्ल के सामने हिंदी में गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास यूरोप की तुलना में पिछड़ा हुआ था, इसलिए उन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध और आलोचना की उन्नति तथा विकास के संदर्भ में यूरोप की उन्नत और विकसित गद्य साहित्य की परंपरा से बहुत कुछ सीखते हुए आगे बढ़ने का सुझाव हिंदी लेखकों को दिया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने अपभ्रंश की कविता में ब्रजभाषा और अवधी के प्रयोगों और प्रभावों की खोज करते हुए लिखा है कि, “हिंदी की काव्यभाषा के पूर्व रूप का पता विक्रम की 11वीं शती से लगता है।”¹⁶ इससे यह सिद्ध होता है कि अपभ्रंश उस समय की बोलचाल की भाषा नहीं थी, बोलचाल की भाषा के रूप में ‘ब्रजभाषा’ और ‘अवधी’ का विकास हो चुका था, इसलिए इनका प्रभाव अपभ्रंश की कविता में मौजूद है। ऐसी स्थिति में अपभ्रंश को पुरानी हिंदी कहना उचित नहीं लगता। आगे वे फिर लिखते हैं कि, “प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिंदी साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है। उस समय जैसे ‘गाथा’ कहने से प्राकृत का बोध होता था वैसे ही ‘दोहा’ या ‘दूहा’ कहने से अपभ्रंश या प्रचलित काव्यभाषा का पद्य समझा जाता था।”¹⁷ अपभ्रंश को शुक्ल जी कभी ‘प्राकृताभास हिंदी’ और कभी ‘पुरानी हिंदी’ भी कहते हैं। लेकिन वे यह भी मानते हैं कि यह उस समय की ठीक बोलचाल की भाषा नहीं है, जिस समय की इसकी रचनाएं मिलती हैं यह उस समय के कवियों की भाषा, केवल कविता की भाषा है। उस समय की काव्यभाषा के रूप में अपभ्रंश के प्रचलन का कारण सामंतवाद से उसका संबंध है, जिसकी ओर संकेत करते हुए उन्होंने लिखा है कि, “कविता राज्याश्रय पाकर हुआ करती थी और इधर हजार-बारह सौ वर्ष से राजपूतों की बड़ी-बड़ी राजधानियाँ राजपूताने, गुजरात, मालवा, दिल्ली आदि में रही हैं।”¹⁸ ये ही सामंतीगढ़ अपभ्रंश कविता के केंद्र रहे हैं।

आचार्य शुक्ल जी ने हिंदी साहित्य का काल-विभाजन दो आधारों पर किया है। पहला कालक्रम के आधार पर और दूसरा साहित्यिक प्रवृत्तियों की प्रधानता के आधार पर। कालक्रम के अनुसार हिंदी साहित्य के इतिहास को आदिकाल, पूर्व-मध्यकाल, उत्तर-मध्यकाल और आधुनिक काल में बांटा है और साहित्यिक प्रवृत्तियों की

प्रधानता के अनुसार वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और गद्यकाल में। वे लिखते हैं, “राजाश्रित कवि और चारण जिस प्रकार नीति, श्रृंगार आदि के फुटकल दोहे राजसभाओं में सुनाया करते थे, उसी प्रकार अपने आश्रयदाता राजाओं के पराक्रमपूर्ण चरितों या गाथाओं का वर्णन भी किया करते थे। यही प्रबंध परंपरा ‘रासो’ के नाम से पाई जाती है, जिसे लक्ष्य करके इस काल को हमने ‘वीरगाथाकाल’ कहा है।”¹⁹ साहित्यिक प्रवृत्तियों की प्रधानता के आधार पर किया गया काल-विभाजन ही विशेष महत्वपूर्ण और लोकप्रिय है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की महत्ता को स्पष्ट करते हुए अपनी पुस्तक ‘आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना’ (सन् 1955 ई.) में डॉ. रामविलास शर्मा जी ने लिखा है, “हिंदी साहित्य में शुक्ल जी का वही महत्त्व है जो उपन्यासकार प्रेमचंद या कवि निराला का। उन्होंने आलोचना के माध्यम से उसी सामंती संस्कृति का विरोध किया जिसका उपन्यास और कविता के माध्यम से प्रेमचंद और निराला ने। शुक्ल जी ने न तो भारत के रुढ़िवाद को स्वीकार किया, न पश्चिम के व्यक्तिवाद को।”²⁰

मई, 1955 की ‘नई दिशा’ में प्रकाशित गजानन माधव मुक्तिबोध का निबंध ‘मध्ययुगीन भक्ति-आंदोलन का एक-पहलू’ अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मुक्तिबोध तुलसी के मूल्यांकन में आचार्य रामचंद्र शुक्ल और डॉ. रामविलास शर्मा दोनों से असहमत है। मुक्तिबोध की स्थापना का निष्कर्ष यह है कि, “निचली जातियों के बीच से पैदा होनवाले संतों के द्वारा निर्गुण भक्ति के रूप में भक्ति-आंदोलन एक क्रांतिकारी आंदोलन के रूप में पैदा हुआ किंतु आगे चलकर ऊंची जातिवालों ने इसकी शक्ति को पहचानकर इसे अपनाया और क्रमशः उसे अपने विचारों के अनुरूप ढालकर कृष्ण और राम की सगुण भक्ति का रूप दे डाला जिससे उसके क्रांतिकारी दांत उखाड़ लिए गये। इस प्रक्रिया में कृष्ण भक्ति में तो कुछ क्रांतिकारी तत्त्व बचे रह गए लेकिन राम भक्ति में जाकर तो रहे-सहे तत्त्व भी गायब हो गए।”²¹ चौथीराम यादव जी के शब्दों में, “आचार्य शुक्ल ने ‘गोस्वामी तुलसीदास’ के माध्यम से कबीर के जनवादी संघर्ष को पुरोहिती-सामंती समाज-व्यवस्था के लिए खतरे की घंटी के रूप में सुना था, इस तथ्य को नकारना बेमानी होगा। आचार्य शुक्ल समाज में किसी तात्कालिक परिवर्तन के विरुद्ध हैं, इसलिए बेहतर समाज-व्यवस्था के परिवर्तन का भी कबीर, निराला और प्रेमचंद उनके लिए उतने प्रिय नहीं है जितने वर्ण-व्यवस्था के पोषक गोस्वामी तुलसीदास।”²² चौथीराम यादव आगे फिर

लिखते हैं कि, “सच तो यह है कि आचार्य शुक्ल ने ‘कबीर’ और ‘लेनिन’ की प्रतिभा को ठीक पहचाना था, लेकिन वह नहीं चाहते थे कि लेनिन की प्रतिभा और क्रांतिकारिता ने रुस में जो चमत्कार किया, वहां नाई, बढ़ई आदि नीची श्रेणियों का प्रभुत्व स्थापित हुआ और साहित्य में गुणात्मक परिवर्तन आया, वैसा कुछ परिवर्तन हिंदुस्तान में भी हो।”²³

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित ‘हिंदी साहित्य का इतिहास’ सर्वप्रथम व्यवस्थित एवं प्रामाणिक इतिहास माना गया है। शुक्ल जी ने पूर्ववर्ती वृत्त संग्रहों में व्याप्त भ्रांतियों, असंगतियों और त्रुटियों का बहुत कुछ समाहार करते हुए एक प्रौढ़ एवं परिपक्व इतिहास-ग्रंथ लिख पाने की सफलता अर्जित की तो इसलिए कि असाधारण प्रतिभा और संतुलन विवेक के अतिरिक्त उनमें इतिहास लिखने की सुनिश्चित योजना और एक दृढ़ संकल्प भी था। मैनेजर पाण्डेय बड़े आदर भाव से शुक्ल जी के बारे में लिखते हैं, ‘वे अपने समय के हिंदी के ही सबसे बड़े आलोचक और इतिहासकार नहीं हैं, वे अखिल भारतीय स्तर पर भी बेजोड़ साहित्य चिंतक दिखाई देते हैं, यही नहीं, वे अपने जमाने के संसार के बड़े से बड़े आलोचक और इतिहास के सिद्धांत तथा व्यवहार की जो एकता दिखाई देती है, वह विरल है। आलोचना और इतिहास संबंधी चिंतन और व्यवहार की ऐसी एकता दूसरी भारतीय भाषाओं के किसी एक आलोचक-इतिहासकार में शायद ही मिले।’²⁴ और अंत में गजलकार गुलशन मदान की गजल के माध्यम से कहना चाहूं तो -

“साहस करके जो लड़ते हैं जीवन के अंधियारों से,
वो ही बातें करते हैं फिर आसमान के तारों से।”²⁵

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (छब्बीसवां सं. 2019), पृ. 176
2. मुक्ता/कुसुम चतुर्वेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, (प्रथम सं. 2007), पृ. भूमिका
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (सोलहवां सं. 2019), पृ. XVIII
4. डॉ. सुमन राजे, रचना की कार्यशाला, साहित्य रत्नाकर, कानपुर (सं. 1998), पृ. 156-157
5. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (छब्बीसवां सं. 2019), पृ. 177

6. डॉ. माधव सोनटक्के, हिंदी साहित्य का इतिहास, विकास प्रकाशन, कानपुर (तृतीय सं. 2009), पृ. 424
7. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (सोलहवां सं. 2019), पृ. 39
8. उपरोक्त, पृ. काल विभाग
9. उपरोक्त, पृ. 39
10. उपरोक्त, पृ. 37
11. उपरोक्त, पृ. 33
12. उपरोक्त, पृ. 34
13. उपरोक्त, पृ. 34
14. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (दसवां सं. 2019), पृ. 63
15. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (सोलहवां सं. 2019), पृ. 455
16. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (तृतीय सं. 2008), पृ. 97
17. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (सोलहवां सं. 2019), पृ. 1
18. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (तृतीय सं. 2008), पृ. 97
19. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (सोलहवां सं. 2019), पृ. 1
20. नामवर सिंह, प्र.संपादक, आलोचना त्रैमासिक-44, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (जनवरी-मार्च, 2012), पृ. 74
21. नामवर सिंह, दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (तीसरा सं. 2008), पृ. 101
22. चौथीराम यादव, हजारीप्रसाद द्विवेदी समग्र पुनरावलोकन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (प्रथम सं. 2012), पृ. 146
23. उपरोक्त, पृ. 145
24. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (तृतीय सं. 2008), पृ. 91
25. डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, संपादक, हिंदी-गज़ल यात्रा : भाग 2, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (प्रथम सं. 1996), पृ. 64

लोकनाट्यों की उत्पत्ति और उनका इतिहास



shodhshree@gmail.com

डॉ. शिवांगी श्रीमाली

सहायक आचार्य, एम.वी. श्रमजीवी कॉलेज, उदयपुर

शोध सारांश

लोक-नाटकों की उत्पत्ति भारतवर्ष में बहुत प्राचीन है। भरत मुनि द्वारा रचित नाट्य शास्त्र का समय ईसा सन् से अनुमानतः 500 वर्ष पूर्व का है। इस शास्त्र में नाटकों के शास्त्रीय नियम निर्धारित हुए थे। जिस प्रकार पहले भाषा बनती है और उसका व्याकरण फिर रचा जाता है, इसी प्रकार लोक नाटक कई वर्षों से अपने निजी रूप में चलते रहे, हैं। जब इन लोक-नाटकों में परिपक्वता आई और साथ ही भाषा, साहित्य, शिक्षा आदि ने भी उन्नति की तभी शास्त्रीय नाटकों के नियम निर्धारित होने लगे, पारिभाषिक शब्द बने और उनका शास्त्रीय रूप बना। जब इन नाटकों का एक शास्त्रीय रूप बना तब इनकी एक अलग श्रेणी बन गई और वह भी अपने रूप विकास और स्तर पर विकसित होती रही। संसार के अन्य देशों में भी हम दोनों धाराओं को समान रूप से चलती देख रहे हैं। लोक-नृत्यों के साथ भी यही हुआ।

संकेताक्षर : लोकनाट्य, इतिहास, राजस्थान, रामलीला, रासलीला, स्वाँग, ख्याल, गीत, संवाद, मंचन, नृत्य गायन।

लोक भाषा और शास्त्रीय भाषा के साथ भी यही होता है। शास्त्रीय कला सीमित क्षेत्र की है, उसमें क्लिष्टता रहती है। लोक-कला जनता की होती है, उसमें सरलता, उन्मुक्कता, स्वच्छंदता, हार्दिकता, स्वाभाविकता और आडम्बर-हीनता रहती है, शास्त्रीय कला बनावटी नियमों से जकड़ी हुई, आडम्बर-युक्त और जटिल रहती है।

लोक-नाटकों की उत्पत्ति और उनका इतिहास

यह तो मनोवैज्ञानिक बात है कि मनुष्य आत्माभिव्यक्ति करने वाला प्राणी है। यह अभिव्यक्ति काव्य, चित्रकला, नृत्य, गायन, नाट्य आदि के द्वारा होती है। नाटकों के मूल में भी आत्माभिव्यक्ति ही रही है। साथ ही बालक और मनुष्य में अनुकरण की भी प्रवृत्ति मिलती है। मानव-समाज में भी शिक्षित लोग तक अनुकरण करते हैं। एक आदमी एक नमूने का कपड़ा पहनता है, एक प्रकार के कटाव का पहनता है, दूसरा भी उसको ओर झुकता है और फैशन चल पड़ती है। आदि मानवों के लिये जो आकर्षक रहा या जिसके साथ उनका अपनत्व रहा उसका अनुकरण कर उन्होंने आनंद उठाया। इसका प्रमाण आज भी हम देखते हैं। गणेशोत्सव पर मूक अभिनय के रूप में हम बड़ी उम्र के लोगों को कभी बंदर, रीछ, शेर, राक्षस आदि के चेहरे लगाये हुए और उनके स्वांग बनाये हुए देखते हैं। तिब्बत में भी यह प्रथा राज-दरबारों की शोभा बढ़ाती है। कभी कभी हम दैनिक जीवन में भी देखते हैं कि बहुत से लोग अभिनय करके परम प्रसन्न होते हैं। नाट्य का यह रूप स्वाभाविक है। आरंभ में मानव ने मूक अभिनय का रूप ही



ग्रहण किया होगा। उसके बारे में संवादों के साथ अभिनय हुए और ये गद्य और पद्य दोनों में हुए हैं। पद्य के इस रूप में सौन्दर्य और आनंद का अनुभव अधिक होता है।



लोक-नाट्यों का यह रूप प्राचीन काल में तो मौखिक ही रहा होगा। वेदों में भी गीत-संवादों के रूप में कथोपकथन मिलते हैं। ऋग्वेद में ये संवाद पुरुखा, उर्वशी, यम, यमी आदि के हैं। इनके मूल में पूजा की भावना है। आदिम जातियां सूर्य, अग्नि, नाग, देवी-देवताओं आदि की पूजा नाच, गा कर और अभिनय के द्वारा करती थी। लोक नाट्यों के मूल में धार्मिक, सांस्कृतिक भावना ही रही है और पौराणिक काल में इस कला में दृढ़ता आई होगी। उस समय धार्मिकता पर अधिक जोर दिया गया और धार्मिक भावों का जनता में प्रचार-प्रसार करना और उन्हें प्रभावित करना लोक नाट्यों का उद्देश्य रहा होगा। लोक-नाट्यों के साथ ही सम्मिलित रूप में ही गायन और नृत्य रहे होंगे जैसा कि अब भी हम भारतीय, मुख्यतः राजस्थानी लोक-नाट्यों में देखते हैं।

रामायण और महाभारत ने लोक-नाट्यों के विकास में सहायता दी। इसका प्रमाण वर्तमान में रामलीला, रासलीला आदि हैं। कई कथानक इन ग्रन्थों का विषय लेकर लोक नाट्यों के रूप में आये हैं। इनके मार्मिक स्थलों को लेकर लोक नाट्यों की कई रचनाएँ हुई हैं।

श्री श्याम परमार के मतानुसार मुसलमानों के समय में भारतीय मंच मठों और मंदिरों तक सीमित हो गये।



धार्मिक तत्वों ने उन पर धार्मिक और पौराणिक कथाओं का बंधन लाद दिया। इस प्रकार रामलीला और कृष्णलीला की ही उन्नति द्रुतगति से हुई। संस्कृत नाटक कालान्तर में सुसंस्कृत वर्ग तक सिमट गये, जनता का सम्पर्क उनसे नहीं रहा। लोक ही अपने मंच द्वारा अपना मनोरंजन करता रहा।

इसके पश्चात् ऐतिहासिक आदर्श चरित्रों ने इन्हें आकर्षित किया और कई ऐतिहासिक लोक नाट्य लिखे गये। साथ ही वह जमाना एक तंत्र शासन का भी था। इनके पीछे वीर पूजा की भावना तो थी ही।

नाट्य की उत्पत्ति नट शब्द से हुई है। अंगसंचालन से किसी विशेष परिस्थिति या व्यक्ति के क्रियाकलापों को अभिव्यक्त करना ही नट का प्रमुख कार्य था। यही नटकला प्रारंभिक क्रिया-कलापों से विकसित होकर गीतबद्ध हुई और विशिष्ट पर्व, समारोह तथा देवी-देवताओं के पूजन के समय उसका प्रदर्शन होने लगा। धीरे-धीरे इसी नटकला ने रूपक का स्वरूप धारण किया, जिसमें ये नट लोग किसी व्यक्ति, घटना तथा स्थिति-विशेष का अनुकृतिमूलक रूप प्रस्तुत करते थे। परन्तु इस स्तर तक भी नाट्य के विविध अंग पूर्णतः परिस्फुटित नहीं हुए थे जिनमें एक सम्पूर्ण घटनाचक्र की समस्त परिस्थितियाँ अभिनय, संभाषण, कथानक आदि के साथ मानवीय पात्रों द्वारा क्रमबद्ध प्रस्तुत की गई हों। वेशविन्यास, हावभाव, वाचन, संभाषण तथा अंगसंचालन द्वारा युगपुरुषों की युग-प्रवर्तक घटनाओं को प्रस्तुत करनेवाला नाट्य का मानवीय रूप हमारी संस्कृति का बहुत ही बाद का स्वरूप है। दैवी शक्तियों, प्राकृतिक प्रकोपों तथा मृतजन की आत्माओं से घिरा हुआ मानव उन्हीं की अनुकृति बनकर उनके आचार, व्यवहार तथा आकार-प्रकार की नकल करे, यह कल्पनातीत बात थी।

स्वाँग का ख्याल के रूप में जो विकास हुआ मालवा का माँच, राजस्थान का तुरा कलंगी और पंजाब का ख्याल उसी परंपरा की कड़ी है। यह पूरी परंपरा बाद में सांगीत के रूप में विकसित हुई परन्तु मालवा, राजस्थान तथा पंजाब के तीनों मंच सांगीत के झंडे के नीचे नहीं आये।



वर्तमान में आगरा तथा मथुरा-वृन्दावन की भगत, हाथरस, मेरठ और हरियाणा के स्वाँग या साँग तथा कानपुर की नौटंकी ही ऐसे लोकधर्मी नाट्य हैं जो अपने आपको सांगीत नाम से प्रसिद्ध करते हैं। इसी सांगीत परंपरा का संक्षिप्त विवेचन तथा उसके अभिनय तत्वों का अध्ययन हमें यहाँ अभीष्ट है। अतः इस अध्ययन को आगे बढ़ाने से पूर्व यहां सांगीत शब्द की भी थोड़ी व्याख्या करना हम आवश्यक मानते हैं।

लोकनाट्य की परम्परा बड़ी प्राचीन है जिसको हम स्वांग, लीला और ख्याल के रूप में प्रचलित पाते हैं। लोक-नाट्य भरतपुर और जयपुर दोनों में बड़े लोकप्रिय है। रामायण और कृष्ण लीलाओं पर आधारित कथाओं के साथ लोक जीवन को इस तरह प्रदर्शित किया जाता है कि राम व सीता अथवा कृष्ण और राधा एक साधारण व्यक्ति के रूप में आते हैं। और उनकी पोशाकें भी लोक परिपाटी के अनुकूल होती हैं। इन



प्रदर्शनों में धर्म, नैतिकता, मनोरंजन और व्यावहारिकता को इस तरह संजोया जाता है कि लोक जीवन का सच्चा स्वरूप प्रकट हो जाता है। आज इन लीलाओं का मंचन कमतर हो चला है, इन लीलाओं के प्रति पात्र और दर्शक उदासीन है। दशहरे के अवसर पर यत्र - तत्र इनका आयोजन होता रहता है। भरतपुर, अलवर, करौली आदि भागों में रासलीला का प्रचलन अद्यावधि भी देखा जाता है। इन खेलों की भाषा स्थानीय रहती है और कई स्थलों को संवाद अथवा गीतों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। बीच-बीच में हास्य-संवाद मनोरंजक होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सामर, देवीलाल (1957), "राजस्थानी लोकनाट्य", लोक कला मंडल, उदयपुर, पृ.सं. 1
2. वही, पृ.सं. 2 एवं 3
3. सामर, देवीलाल (1968), "लोकधर्मी प्रदर्शनकारी कलाएँ", लोक कला मंडल, उदयपुर, पृ.सं. 163
4. अग्रवाल, रामनारायण (1976), "सांगीत" एक लोकनाट्य परम्परा", राजपाल एंड संस, दिल्ली, पृ.सं. 38.
5. ignca.nic.in/coilnet/rj081.htm. page no. 1

भित्ति चित्रण परम्परा एवं तकनीक : विशेष संदर्भ राजस्थान



shodhshree@gmail.com

डॉ. गीता शर्मा

सह-आचार्य, श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी राजकीय महाविद्यालय, किशनगढ़

शोध सारांश

भित्ति पर सौन्दर्यात्मक चित्रण भित्ति चित्रण कहलाता है। हमारे प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों में भी भित्ति चित्रण की महत्वता को प्रदर्शित किया गया है। संमरागण सूत्रधार के अनुसार किसी भी भवन के सभी विमान, गोपुर आदि मनोहर चित्रों से परिपूर्ण होने चाहिये। राजस्थान में भित्ति चित्रण प्रणाली का विकास बहुतायत में हुआ। राजस्थान में भित्ति चित्रण पद्धति को 'आलागीला', 'आराईश' तथा 'मोराकाशी' के नाम से जाना जाता है। भित्ति चित्रण विधान की दृष्टि से कला की अन्य विधाओं से सर्वथा अलग है। विस्तृत अंतराल, भूमि को तैयार करना, रंगों का चुनाव, परम्परागत आदि सभी के कारण भित्ति चित्रण में अधिक दक्षता अपेक्षित है। भित्ति चित्रण में फ्रेस्को बूजो, फ्रेस्को सेको एवं साधारण भित्ति चित्रण की तकनीक प्रचलित है। राजस्थान में आलागीला की पद्धति विशेष प्रसिद्ध रही है। जिसे मोराकाशी के नाम से जाना जाता है। इस पद्धति में चूने और झींकी के मसाले का प्रयोग कर नम दिवार पर कार्य किया जाता है। राजस्थान में जयपुर-आमेर, शेखावाटी क्षेत्र, अलवर, उदयपुर, कोटा आदि के राजप्रासाद, हवेलियाँ, देवप्रासाद इन भित्ति चित्रों से परिपूर्ण है। ये भित्ति चित्र राजस्थान का गौरव बढ़ाने में सदैव अग्रणी रहे हैं और रहेंगे।

संकेताक्षर : लेपकर्म, चेंजारा, पणा, मोराकाशी, गोपुर, विमान, झींकी, मधुच्छिष्ट, भित्ति चित्रण, राजस्थान।

रं ग और रेखाओं की सहायता से किसी भी सतह पर आकार उकेरना चित्रण कार्य है। एक आकार जो हमारे मनके भीतर विकसित होता है, यह आकार अमूर्त होता है, हम उसे फलक पर उतारकर मूर्तरूप प्रदान करते हैं। इस तरह से मानवीय भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति हम कला के किसी भी माध्यम में सहजता से कर सकते हैं, चित्रकला भी ललितकला का एक महत्वपूर्ण अंग है। भित्ति पर सौन्दर्य की दृष्टि से किया गया अलंकरण भित्ति चित्रण कहलाता है। भित्ति चित्रण में भित्ति याने दीवार ही प्रमुख अंग है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में भित्ति चित्रण को अलग-अलग नामों से सम्बोधित किया गया है। कहीं इसे "कुड्य भूमि बंधन" की संज्ञा दी गयी है।¹ छठी शताब्दी के आसपास भोजकृत संमरागण सूत्रधार में 'भूमिमण्डन' तथा 'लेपकर्म' से सम्बन्धित सामग्री का वर्णन, भित्ति चित्रण की महत्वता को प्रदर्शित करता है।² 12 वीं शताब्दी में सोमेश्वर द्वारा रचित 'अभिलाषितार्थ चिन्तामणी' में नाट्यमण्डप की सज्जा में भित्तिचित्रण का उल्लेख मिलता है। भित्ति चित्रण हेतु प्रयुक्त सामग्री एवं उसके अनुपात के साथ उपयोग का विवरण चित्रसूत्र में विस्तार से किया गया है। समरांगण सूत्रधार में स्पष्ट लिखा हुआ है कि भवनों में सभी विमान व गोपुर आदि मनोहर एवं विचित्र चित्र संयोजन से परिपूर्ण होने चाहिये।³ इसी से स्पष्ट है कि चित्रकला में भित्तिचित्रण का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसी के माध्यम से संयोजन व अलंकरण के द्वारा भित्तियों व छतों को सुसज्जित किया जाता है। राजस्थान में इन भित्ति चित्रों को 'आलागीला', 'आराईश' तथा 'मोराकाशी' के नाम से जाना जाता है।⁴ आधुनिक समय में इन्हें 'म्यूरल्स पेंटिंग' के नाम से भी जाना जाता है।

चित्रण सामग्री एवं विधान के दृष्टिकोण से भित्ति चित्रण अन्य विधाओं से सर्वथा पृथक है। विस्तृत अंतराल, भूमि को तैयार कराना, रंगों का चुनाव, उनकी प्रवृत्ति का अनुभव और परम्परागत आदि सभी के कारण भित्ति चित्रण में अधिक

दक्षता एवं परिश्रम स्वाभाविक रूप से अपेक्षित है। भित्ति चित्रकार की अनेक सीमायें हैं, उसे जहाँ चित्र बनाने हैं वहाँ की स्थानीय जलवायु, वास्तुकला आदि का भी ज्ञान होना आवश्यक है। इसलिए भित्ति चित्रकारों को अन्य चित्रकारों से पृथक अभियान्त्रिक की संज्ञा भी दी गयी है।

मुख्य शास्त्रीय ग्रंथों में भित्ति चित्रण तकनीक/निर्माण प्रक्रिया

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्र में भित्तिचित्रण निर्माण सामग्री को विस्तार से समझाया है। तीन प्रकार के ईंटों के चूर्ण को तीन भाग में रखकर मिट्टी का तीसरा अंश अर्थात् 1/3 में मिलाकर गूगल मधुच्छिष्ट (मोम) मधुव (महुआ) मुद्ग (मूंग) गुड़ और कुसुम्भ (केसर) को तेल में मिलाकर बराबर भाग कर ले, इसमें आग में जले सुधा (हर्रे) का 1/3 भाग भी मिलाना चाहिये। अब इसमें मषक और कष डालकर बालू का अंश मिलाते हैं। अब जल मिलाकर इस सारे आर्द्र पदार्थ को एक माह तक सुरक्षित रखा जाता है। तब एक गाढ़ा लेप तैयार हो जाता है। अब इस लेप को पपारंगत कलाकार द्वारा भित्ति पर लगाया जाता है, यह न मोटा होता है न पतला। जब भित्ति सूख जाये और लेप भला प्रतीत न हो तो उस पर शाल वृक्ष का रस और तेल में मिश्रित मिट्टी से यत्नपूर्वक चिकना करना चाहिये। फिर इस ईष्ट देव का ध्यान करते हुये चित्रण कार्य करना चाहिये।⁵

भित्ति चित्रण की प्रचलित तकनीक/श्रेणियाँ

1. **फ्रेस्को बूनो (Fresco Buono)**— यह शुद्ध भित्ति चित्रण का प्रकार है। फ्रेस्को शब्द लैटिन भाषा में 'फ्रेश' Fresh शब्द से बना है - जिसका अर्थ ताजा है। यहाँ हम ताजा शब्द ताजा प्लास्टर के लिए प्रयुक्त कर रहे हैं। नम भित्ति पर बनाये गये चित्रण को फ्रेस्को बुनो पेन्टिंग कहा जाता है।
2. **फ्रेस्को सेको (Fresco Seco)**— इस विधि में भित्ति याने दीवार को चित्रण कार्य के लिए तैयार करके उसे पूर्ण रूप से सूखने के बाद चित्रण कार्य किया जाता है। इसे फ्रेस्को सेको कहा जाता है। इसमें रंगों के माध्यम (Medium) हेतु गोंद, सरस व अंडे की जर्दी का प्रयोग किया जाता है। ये चित्र फ्रेस्को बुनो की अपेक्षा कम स्थायी होते हैं।
3. **साधारण भित्ति चित्र**— इनका तात्पर्य उन भित्ति चित्रों से है जो सीधे ही किसी भित्ति पर चित्रण

कार्य किया हो। इसमें भी चित्रण करते वक्त रंगों को स्थायी बनाने हेतु गोंद, सरस आदि मिलाये जाते हैं। ये चित्र भी स्थायी नहीं होते।

राजस्थान में भित्ति चित्रण तकनीक

भित्ति चित्रण परम्परा हमारी सांस्कृतिक धरोहर का प्रतिबिम्ब रही है। विषय वस्तु एवं विधि विधान की रीति से राजस्थान के भित्ति चित्रों का अपना महत्व है। भित्ति चित्रों के माध्यम से कलाकारों ने चित्र, संगीत, साहित्य, इतिहास, संस्कृति का ही ज्ञान नहीं दिया वरन् धार्मिक भावना तथा जन सामान्य में इस भावना को प्रचारित करने का भी अभूतपूर्व कार्य किया है। राजस्थान में भित्ति चित्रों की परम्परा का विकास मध्यकाल से ही पूर्ण रूप से विकसित माना जाता है। यहाँ के चितेरो ने अजंता और बाघ की गौरवशाली भित्ति चित्र परम्परा को आरायश तकनीक से समृद्ध किया है। राजस्थान में भित्ति चित्रण परम्परा का इतिहास काफी प्राचीन है। अजमेर, जयपुर, कोटा, बूंदी, शेखावाटी आदि भित्ति चित्रण के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। इस पद्धति का प्रयोग राजमहलों, दुर्गों, मंदिरों, हवेलियों की भित्तियों पर सामाजिक जन-जीवन का मौलिक चित्रण में किया गया। राजस्थान में भित्ति चित्रण की इस पद्धति को आराइश, आलागीला या मोराकाशी के नाम से जाना जाता है। शेखावाटी क्षेत्र में आराइश को 'पणा' शब्द से भी जाना जाता है।⁶

राजस्थान में प्रचलित आरायश या आलागीला पश्चिम में फ्रेस्को के नाम से जाना जाता है। यह कार्य अत्यंत श्रमसाध्य से परिपूर्ण है। यह कार्य पूर्ण गीली दिवार पर ही किया जाता है। राजस्थान से पश्चिम में केवल ये अंतर है कि राजस्थान में आरायश प्रकृति में पॉलिश की जाती है और इटालियन पद्धति में नहीं।⁷ इस पद्धति में चूने और झीकी (मार्बल पाउडर) के मसाले के मिश्रण का प्रयोग किया जाता है। जयपुर के पास राहोली का चूना इस कार्य के लिए श्रेष्ठ माना जाता है। चूने को काफी दिन भिगोया जाता है लेकिन उसका पानी प्रतिदिन बदला जाता है। चूने को शुद्ध करने के लिए उसमें गुड़ एवं छाछ भी मिलाई जाती है। जिससे चूना सफेद व मक्खन की भाँति मुलायम हो जाता है और अत्यंत भीगा होने से उसकी तेजी भी नष्ट हो जाती है। झीकी पाउडर इसलिए मिलाया जाता है। यह प्लास्टर को छिद्रयुक्त बनाता है। जिससे कास्टिक चूने के कार्बोनेट बनने की प्रक्रिया सफल हो जाती है। मार्बल चूने के कण गोल न होकर कोणीय या खुरदरे

होते हैं जो प्लास्टर को मजबूती प्रदान करते हैं।¹ इस कार्य के लिए दीवार बिना प्लास्टर किये खुरदरी छोड़ दी जाती है। इसके लिए ईट और पत्थर की खुरदरी दीवार उपर्युक्त होती है। अगर दीवार पर प्लास्टर किया हुआ है तो कार्य करने से पूर्व दो सूत प्लास्टर टॉच करके निकाल दिया जाता है। जिससे दीवार चूने को पकड़ सके। कार्य आरम्भ करने से पूर्व दीवार को पानी से खूब तर किया जाता है, जिससे चित्रण कार्य करते समय गीली रहे। भित्ति पर झींकी चूने का मसाला का मिश्रण एक तीन के अनुपात में लगा देते हैं। भित्ति पर लगाने से पूर्व मसाले को अच्छी तरह से मिश्रित कर लिया जाता है।

भित्ति पर जो प्रथम अस्तर लगाया जाता है उसे 'सरेसी' कहते हैं। इसमें चूने की मात्रा अधिक व झींकी की मात्रा कम होती है। प्रथम अस्तर झींकी चूने का मसाला लगाकर छः माह से 1 वर्ष तक भित्ति को खुला छोड़ना ठीक रहता है। इससे प्रथम प्लास्टर भित्ति के साथ एक सार हो जाये।

इसके पश्चात् द्वितीय अस्तर 'प्लास्टर' लगाया जाता है। इसमें एक भाग चूना व तीन भाग झींकी होते हैं। इसके पश्चात् तृतीय अस्तर 'कड़ा' लगाया जाता है, यह भी एक व तीन के अनुपात में होता है। अन्तिम अस्तर में छः माह पुरानी ठण्डी कली (चूना) को ही प्रयुक्त किया जाता है।¹ भित्ति पर कड़ा होने के पश्चात् उसे अधिक समय तक नहीं छोड़ा जाता है। वर्षा का मौसम नहीं गुजरने दिया जाता क्योंकि वर्षा की हवा से 'मोखड़ी' (वर्षा की नम हवा उत्पन्न कर देती है जिस पर फिर कोई लेप्य नहीं टिकता) आने का भय रहता है। अगर वर्षा वाला मौसम आ ही गया हो तो कड़े वाले अस्तरपर 'झींकड़ा' (ठंडी व साफ की हुयी कली में झींकी का बारीक चूर्ण मिलाकर तैयार किया हुआ मिश्रण) लगा दिया जाता है। अंतिम अस्तर करने से पूर्व इस पोत को झांवा पत्थर से घिस कर उतार दिया जाता है। इसलिए आरायश चित्रण के लिए अक्टूबर से मार्च माह तक का समय सबसे उत्तम है।

झींकी की जगह पक्की खोर (पकाई हुयी मिट्टी) और बजरी भी काम में ली जा सकती है किन्तु झींकी का मसाला ही सबसे अच्छा माना जाता है। चित्रण करने से पूर्व अंतिम आरायशी अस्तर केवल ठण्डी कली का पतला पेस्ट भित्ति पर बिलोची (छोटी कूंची) के माध्यम से हल्के हाथों से लगाकर, उसे झांवे पत्थर से और लकड़ी के बटकड़े से सपाटकर घुटाई करते हैं। यह

घुटाई 'घूंटी' (चिकना अकीक पत्थर) से की जाती है। घूंटी से घोटने से भित्ति में एक प्रकार की ओप (चमक) आ जाती है। यह चमक ही आरायश का गुण है। अब इस गीली दीवार पर ही चित्रण कार्य करना होता है। जहाँ पर चित्रण कार्य करना है वहाँ की रेखांकन पूर्व में ही तैयार कर कोयले के पाउडर की सहायता से छापा जाता है। वह कितना भाग एक दिन में चित्रित कर सकता है। इसका ज्ञान चित्रकार को अवश्य होना चाहिये। दीवार पर रेखाचित्र के खाके को रखकर छापाई कर तीव्रता से आराईश पर रंगों को चयनित स्थान पर ब्रश के माध्यम से लगाया जाता है। अभिष्ट स्थान पर रंग एक से दो कोट में लगाया जाता है, जिससे रंग एक जैसा नजर आये। रंग भरने के बाद उस स्थान को 'नेहल्या' द्वारा हल्के हाथ से घोंटा जाता, जिससे रंग अंदर तक समा जाते हैं और उनमें ओप भी आ जाता है। यहाँ पर हम खनिज रंगों का ही प्रयोग करते हैं क्योंकि चूना एक क्षार है वह अनेक रंगों के साथ रासायनिक क्रिया करके उनकी रंगत बदल देता है। इसलिए खनिज रंग ही सबसे स्थायित्व एवं उत्तम माने गये हैं।¹⁰ भित्ति चित्रण के लिए प्रयुक्त रंगों में हिरमिच (Indian Red), रामरज (Yellow Ochre), हरा भाटा (Teravert Green), गेरु (Red Ochre), नीला (अल्ट्रामरीन ब्ल्यू), काजल (Black), सफेद (चूना) आरायशी भित्ति चित्रण में सबसे अधिक उपयोगी रहते हैं। उपरोक्त रंगों के आपसी मिश्रण से अनेक तानों व पोत बनाकर विविधता दर्शायी जा सकती है।

जयपुर के कारीगर/वेंजारे इस भित्ति को तैयार करने में विशेष दक्ष थे, उन्होंने देश के विभिन्न स्थानों पर जाकर इस प्रणाली में कार्य किया। फ्रेस्को सेको में चूने के सूखने के पश्चात् चित्रांकन कार्य किया जाता है। इनमें रंगों में गोंद, सरेस और अण्डे की जर्दी को माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यह फ्रेस्को बूनो की अपेक्षा कम स्थायी रहती है। इसी प्रकार साधारण भित्ति चित्रण में भी टेम्परा पद्धति से चित्र बनाने की परम्परा रही है। यहाँ पर भी रंगों में गोंद, सरेस के माध्यम से चित्रण कार्य किया जाता है। इस पद्धति से बने चित्र अधिक स्थायी नहीं होते।

भित्ति चित्रण हेतु उपकरण : भित्ति चित्रण में विशेषकर फ्रेस्को बूनो याने आरायश के लिए कलाकार विभिन्न उपकरणों की सहायता से ही भित्ति को सही स्वरूप प्रदान करता है। उपकरण व उनका उपयोग संक्षेप में उल्लेखित है :-

1. **करणी** – यह दीवार पर मसाला (अवलेह) लगाने के काम आती है।
2. **मिस्टर** – यह भित्ति पर प्लास्टर करने के काम आता है।
3. **बटकड़ा** – यह कड़ा करने के लिए प्रयोग में आता है।
4. **झावा** – यह कोटड़ा गाँव से प्राप्त सख्त पत्थर का होता है। इसके द्वारा भित्ति के अंतिम अस्तर को पानी के साथ घिस कर जमाने के काम आता है।
5. **सावल सूत** – यह भित्ति की सिधाई देखने के काम आता है।
6. **गुठीया** – यह लोहे की एक स्केल है जिसका प्रयोग भित्ति को सम देखने हेतु इसका प्रयोग किया जाता है।
7. **घूटी** – ये अकीक पत्थर की बनी होती है। इसका प्रयोग अंतिम अस्तर को ओपने (चमकाने) हेतु किया जाता है।
8. **नेहल्या** – यह करणी का छोटा स्वरूप है, भित्ति पर चित्रण कार्य पूर्ण करने पर रंगों को हल्के-हल्के पीटने के लिए प्रयोग किया जाता है।
9. **गोलची** – यह करणी का बहुत छोटा सा रूप है, रंगों को हल्के हाथ से पीटने के कार्य में लिया जाता है।
10. **गुजराती** – ये दो मुँहे की लोहे की बनी होती है।
11. **रोद** – यह भित्ति पर चीर लगाने (रिखा के उकेरने) के लिए काम में लिया जाता है। यह लोहे का बना होता है।
12. **हयोड़ी** – भित्ति व पत्थर को तोड़ने के लिए यह उपकरण बना है।
13. **बिलोची** – यह कूची का ही छोटा रूप है। इसका प्रयोग भित्ति पर चूने का आखरी अस्तर लगाने के लिए किया जाता है।
14. **कूची** – यह ब्रश के बड़े आकार की सण से बनी होती है। यह भित्ति पर पानी छिड़कने के काम आती है।
15. **लकड़ी की फट्टी** – ये स्केल जैसा उपकरण है। सीधी लाईन खिंचने हेतु इसका प्रयोग किया जाता है।¹¹

सामग्री

चूना : भित्ति चित्रण हेतु चूना महत्वपूर्ण पदार्थ है। यह शुद्ध रूपेण प्राकृतिक है। पानी में भीगा हुआ चूना ऊष्मा छोड़ता है तथा कैल्शियम हाइड्रोआक्साइड बन जाता है। राजस्थान में भित्ति तैयार करने हेतु 'राहोली' का चूना आराइश चित्रण के लिए सर्वोत्तम माना गया है। आरायश कार्य के लिए सर्वोत्तम चूना, चूने पत्थर को लकड़ी की आंच जलाकर तैयार किया जाता है।

झिंकी : यह संगमरमर पत्थर का चूर्ण है। यह चूर्ण चूने के साथ गारे (मसाले) का मुख्य अवयव है। रेत में मिट्टी तथा अभक की उपस्थिति रहती है, जिससे चूना चटख जाता है अतः संगमरमर का चूर्ण अधिक उत्तम माना जाता है। इसके कण गोल न होकर कोणीय या खुरदरे होते हैं जो प्लास्टर को अधिक मजबूती प्रदान करते हैं। अतः यह भी एक महत्वपूर्ण अवयव है।

यह सम्पूर्ण तकनीक हमारे चित्रकारों की अथक मेहनत का प्रतिफल है जिसके फलस्वरूप हम इन दुर्लभ भित्ति चित्रों की अजस्र कला परम्परा को आज देख पाते हैं।

राजस्थान में लघु चित्रों के साथ-साथ भित्ति चित्रों का भी विकास हमें देखने को मिलता है अपितु राजस्थान के कलाकारों ने तो अजंता व बाघ की गौरवशाली भित्ति चित्रण परम्परा को आरायश तकनीक से समृद्ध कर विश्व के मानचित्र पर अपना नाम दर्ज किया है।

राजस्थान में भित्ति चित्रण परम्परा का इतिहास अति प्राचीन रहा है। जयपुर, आमेर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा, बूँदी, शेखावाटी अंचल भित्ति चित्रण के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। यहाँ के राजप्रासाद, देवप्रासाद, छतरियाँ, झरोखों एवं हवेलियाँ भित्ति चित्रों से परिपूर्ण रही हैं। इन भित्तियों पर चित्रकारों ने कृष्णलीला, रामलीला, महाभारत, गीतगोविन्द, रसिकप्रिया, रागमाला आदि से सम्बन्धित चित्रों को संजोया है। इन भित्ति चित्रों में विभिन्न कलाकारों ने शैलीगत विशेषताओं को निपुणता से प्रस्तुत कर जनमानस की सौन्दर्यानुभूति को उद्वेलित किया है। आरायश पद्धति तो जयपुर की विशिष्ट देन है जो फ्रेस्को बूनों के नाम से जानी जाती है।

राजस्थान में विभिन्न स्थानों पर उत्कृष्ट भित्ति चित्रण मिलते हैं। जिनमें प्रमुख स्थानों का संक्षिप्त में विवरण प्रस्तुत है :

आमेर-जयपुर में भारमल की छतरी में, राज मानसिंह की छतरी में चित्र मिले हैं, जिन पर 17वीं शताब्दी का समय अंकित है।¹² माधोनिवास, सिसोदिया रानी के

महल, गलता मंदिर तथा सिटी पैलेस के भित्ति चित्र करीब 1750-67 के मध्य बने हैं। इसके अतिरिक्त जयपुर की अनेक निजी हवेलियों - दुसादों की हवेली, पुरोहित जी की हवेली, नवाबों की हवेली में ये चित्र देखने को मिलते हैं। महाराज जगत सिंह के काल में बनी पौण्डरिक हवेली के भित्ति चित्रों में गोवर्धन धारण तथा रास मण्डल वाले चित्र तो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।¹³

शेखावाटी का क्षेत्र सिल्क रूट के नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ अफगानिस्तान आदि बाहरी क्षेत्रों से व्यापार करने वाले राजस्थान आते थे तो इस मार्ग में पड़ने वाली गाँवों रतनगढ़, रामगढ़, चूरु, मण्डावा, नवलगढ़, मुकुन्दगढ़ में सेठों की विशालकाय हवेलियों में ये भित्ति चित्र देखने को मिलते हैं। अलवर में भी दीवान जी की हवेली एवं राव राजा बख्तावर सिंह के समय में राजगढ़ के शीश महल में भित्ति चित्रण देखने को मिलते हैं।¹⁴

उदयपुर में राजप्रासादों में, बाफना जी की हवेली, बारहट की हवेली, श्री नाथूराज जी जड़िया की बैठक, अम्बा माता मंदिर, जग मन्दिर, कृष्ण विलास, कर्ण विलास के भित्ति चित्र, पानेरी भवन, पिपलिया हवेली, धाबाई जी की हवेली आदि के चित्र उल्लेखनीय हैं।

बीकानेर के जूनागढ़ महल में, अनूप महल में जैसलमेर के पट्टुओं की हवेली में बने भित्ति चित्र उत्कृष्ट व उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त बूंदी के किले में, कोटा की झाला जी की हवेली, श्रीधर की हवेली, रसिक बिहारी जी के मंदिर में मुख्यता ये भित्ति चित्र देखने को मिलते हैं।

शेखावाटी के भित्ति चित्रों में एक महत्वपूर्ण बात यह देखने को मिलती है कि यहाँ के अधिकतर चित्रों में व अलंकरणों में तिथि व रचनाकारों के नाम का भी उल्लेख है जैसे परशुरामपुरा स्थित सार्दुल सिंह जी की छतरी में भोपा महादेव राजपूत द्वारा छतरी चित्रित करने का प्रमाण है।¹⁵

केड़ के चौधरी राजामल की छतरी में खण्डेला के कारीगर 'हरिराम' के नाम का उल्लेख है।¹⁶

नाथ द्वारा जो वल्लभ सम्प्रदाय की प्रधान पीठ के रूप में विख्यात है, में महुआ वाले अखाड़े, गोवर्धन कुण्ड के तिबारे, मोतीमहल के झरोखे आदि में भित्ति चित्रों के अवशेष यहाँ के कलाकारों के कौशल की बानगी प्रस्तुत करते हैं। यहाँ मंदिर के समस्त द्वारों पर चित्रांकन आकर्षक एवं मधुर लय योजना प्रस्तुत करते हैं। आज भी नाथद्वारा के चित्रकार वल्लभ कुल के चित्रों

की भावना एवं प्रतीकात्मकता के सूक्ष्म ज्ञाता होने के कारण भारत में बनने वाली इस सम्प्रदाय की हवेलियों के चित्र बनाने के लिए आमंत्रित किये जाते हैं।¹⁷

राजस्थान के राजाओं और धनिक वर्ग ने चित्तरे एवं चेजारों को उदारतापूर्वक अर्थ प्रबन्धन कर भित्ति चित्रकला के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। ये भित्ति चित्र वर्तमान में भी पर्यटन की दृष्टि से विश्व मानचित्र पर राजस्थान का गौरव बढ़ाने में सक्षम हैं। उचित संरक्षण के अभाव में ये चित्र अपनी गरिमा को विस्मृत करते जा रहे हैं। इसको सुरक्षित रखना ही पुरातत्व विभाग का मुख्य ध्येय होना चाहिये।

भित्ति चित्रण की महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट आरायश तकनीक को पुनः स्थापित करने हेतु वनस्थली विद्यापीठ में प्रो. देवकी नन्दन शर्मा ने 1953 से विधिवत् भित्ति चित्रण प्रशिक्षण और चित्रकला प्रशिक्षण शिविर आरम्भ किया जो आज भी वहाँ अवरिल चल रहे हैं।¹⁸

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राजस्थानी चित्रशैली की विभिन्न चित्रण विधियाँ - डॉ. नाथूलाल वर्मा, पृ. 70, राज प्रकाशन, जयपुर
2. पर्यटन की अर्थव्यवस्था में सांस्कृतिक धरोहर भित्ति चित्रों की भूमिका - डॉ. रविन्द्र कुमार दुलार, पृ. 18, राजस्थान के भित्ति चित्र - शोधक, जयपुर
3. राज. चित्र की चित्रण विधियाँ - डॉ. नाथूलाल वर्मा, पृ. 71
4. राजस्थानी भित्ति चित्रण तकनीक - डॉ. नाथूलाल वर्मा, आकृति, पृ. 1, अप्रैल, जून, ललित कला अकादमी, जयपुर
5. राज. चित्रशैली की विभिन्न चित्रण विधियाँ - डॉ. नाथूलाल वर्मा, पृ. 71
6. राजस्थान की भित्ति चित्रण तकनीक : डॉ. रीटा प्रताप, पृ. 25, शोधक, जयपुर
7. आरायश - समृद्ध राजस्थानी भित्ति चित्रण परम्परा - प्रो. भवानी शंकर शर्मा, पृ. 49 समकालीन कला, ललितकला अकादमी, दिल्ली
8. राजस्थान की भित्ति चित्रण की तकनीक : डॉ. नाथूलाल वर्मा, पृ. 3, आकृति, राज. ललितकला अकादमी, जयपुर
9. राजस्थान की भित्ति चित्रण तकनीक : डॉ. नाथूलाल वर्मा, पृ. 3, आकृति जयपुर
10. राजस्थान की भित्ति चित्रण तकनीक : डॉ. रीटा प्रताप, शोधक, जयपुर

11. सभी उपकरणों का उल्लेख 'राजस्थानी चित्रशैली की विभिन्न चित्रण विधियाँ' डॉ. नाथूलाल वर्मा की पुस्तक के 74-76 में मिलता है।
12. राजस्थान के भित्ति चित्र - एक सफरनामा - डॉ. रामपाण्डे, शोधक, पृ. 3, पश्चिम सांस्कृतिक केन्द्र, उदयपुर
13. राजस्थान चित्रशैली की विभिन्न चित्रण विधियाँ - डॉ. नाथूलाल वर्मा, पृ. 88
14. शेखावाटी क्षेत्र के भित्ति चित्र - समन्दर सिंह खंगारोत, पृ. 21, आकृति, त्रैमासिक, जयपुर
15. शेखावाटी के भित्ति चित्र : समन्दर सिंह खंगारोत, पृ. 21, आकृति, जयपुर
16. नाथद्वारा की भित्ति चित्रांकन परम्परा : डॉ. सुभाष मेहता, पृ. 32, आकृति, जयपुर
17. आरायश समृद्ध राजस्थानी भित्ति चित्र परम्परा - प्रो. भवानी शंकर शर्मा
18. राजस्थान की भित्ति चित्रण तकनीक : डॉ. रीता प्रताप, राजस्थान के भित्ति चित्र - डॉ. रामपाण्डे, शोधक, जयपुर



नवलगढ़ की हवेली के भित्ति चित्र



मण्डावा (शेखावाटी) की हवेली के भित्ति चित्र

औरंगजेब की जजिया नीति का महाराणा राजसिंह द्वारा प्रतिरोध का अध्ययन



shodhshree@gmail.com

डॉ. सुशीला शक्तावत

आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

शोध सारांश

प्रस्तुत आलेख में महाराणा राजसिंह द्वारा मुगल साम्राज्य का प्रतिरोध किया गया, का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। औरंगजेब की जजिया नीति का विरोध करने वाले एक मात्र शासक थे। सभी हिन्दुओं के लिये जजिया देना अनिवार्य कर दिया गया। जजिया पुनः लागू करने के कारण आर्थिक एवं धार्मिक थे। धार्मिक कारण अत्यन्त घातिक हुए। जिससे आमजन बादशाह के विरुद्ध हो गया। महाराजा राजसिंह ने बादशाह की इस कर नीति का विरोध किया। इस नीति का मुगल मारवाड़ सम्बन्धों पर भी प्रभाव पड़ा अततः यह धार्मिक नीति मुगलों के पतन का कारण बनी।

संकेताक्षर : जजिया, जिम्मी, काफिर, शरीयत, अध्यादेश, औरंगजेब, महाराजा राजसिंह, हिन्दू।

महाराजा जसवंतसिंह की मृत्यु व मारवाड़ पर मुगलों का सहज ही में आधिपत्य स्थापित हो जाने से प्रोत्साहित होकर धर्मान्ध औरंगजेब ने 2 अप्रैल, 1679 ई. को एक फरमान द्वारा सभी हिन्दुओं पर जजिया कर पुनः लगा दिया। जजिया सभी हिन्दुओं को देना पड़ता था, चाहे वह अधिकारी हो, ब्राह्मण हो, लिपिक हो, मनसबदार हो अथवा डाकू हो। इतना ही नहीं, इस कर को वसूलने का तरीका भी अपमानजनक था। जिम्मी यानि हिन्दू को नंगे पैर जजिया वसूल करने वाले अधिकारी के पास जाना पड़ता था जो रौब के साथ वसूली या तकाजा करता था।¹

इसकी व्याख्या करते हुए जदुनाथ सरकार लिखते हैं कि “हिन्दुओं के लिए जजिया का अर्थ था अन्य लोगों की अपेक्षा राज्य को एक-तिहाई अधिक कर देना। इस विशेष कर के विषय में सम्राट के विचार भी उल्लेखनीय हैं। उनका कहना था “अन्य सभी प्रकार के करों में छूट देने की तुम्हें पूरी स्वतंत्रता है किन्तु जजिया को इन काफिरों से पुनः वसूल करने में मैं बड़ी कठिनाई से सफल हुआ हूँ, इसलिए यदि इसमें तुमने किसी प्रकार की छूट दी तो यह कार्य धर्म-विरुद्ध होगा और कर वसूल करने की संपूर्ण व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाएगी। परिणामस्वरूप राजस्व अधिकारियों ने बड़े उत्साह से यह कर वसूल किया जो कही-कहीं तो चौगुने से आठ गुना अधिक तक था।²

जहां तक सन् 1679 में पुनः जजिया लगाने का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि इसके अनेक कारण थे। सतीशचन्द्र के मतानुसार औरंगजेब का यह निर्णय “शरीयत” का कड़ाई से पालन करने की भावना का परिणाम नहीं था। यह तो तत्कालीन “गहराते राजनीतिक संकट” के फलस्वरूप लिया गया निर्णय था। पादशाह की सोच के अनुसार यह संकट एक तो राजपूतों के एक प्रभावशाली वर्ग की “गैरवफादारी” की वजह से उत्पन्न हुआ। दूसरा कारण मराठों का दक्कन की राजनीति पर बढ़ता प्रभाव था और इस प्रकार मुगल साम्राज्य की स्थिरता खतरे में पड़ गई थी।³ औरंगजेब चाहता था कि इस खतरे को टालने के लिए मुस्लिम जनमत उसका साथ दे, इसीलिए उसने जजिया फिर से लगाया। इसे इस संदर्भ में भी देखा जा सकता है कि उन दिनों धर्म को जीविका बनाने वाले वर्गों में भारी बेरोजगारी फैली हुई थी। सन् 1687 में औरंगजेब ने दक्कन के चार सूबों के लिए किसी अब्दुल करीम को जजिया का अमीन नियुक्त किया था।⁴

कट्टरपंथी मुल्ला-मौलवी वर्ग के लिए जजिया रोजगार का एक अतिरिक्त साधन भर नहीं था। अपितु इसके जरिए उन्हें इस्लाम में विश्वास न करने वालों को सताने और नीचा दिखाने का बहाना भी मिल गया। यह जोर जबरदस्ती

रूपया ऐंठने और भ्रष्टाचार फैलाने का माध्यम भी बन गया।⁶ भीमसेन बताते हैं कि इस तरह “काजियों ने लाखों रूपए कमाए।”⁷ इस कर को उगाहने के लिए जो स्थानीय अधिकारी नियुक्त किए गए, उन्होंने भी बड़ी धांधली मचाई। यहां तक कि गांवों से जजिया वसूल करने के लिए उन्होंने फौज की मदद ली। इस प्रकार स्पष्ट है कि औरंगजेब काजियों और स्थानीय अधिकारियों के जुल्म और भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने में असफल रहा।⁸

राजसिंह और जजिया

जजिया कर सम्बन्धी अध्यादेश के प्रसारित होने पर हिन्दुओं ने अपना रोष प्रकट करते हुए घोर विरोध किया। दिल्ली व उसके आसपास के असंख्य हिन्दुओं ने यमुना नदी की ओर सम्राट के झरोखे के नीचे खड़े होकर अध्यादेश का विरोध किया और उसे वापस लेने के लिये अनुरोध किया, परन्तु सम्राट ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया।⁹ इस तरह स्पष्ट है कि संपूर्ण देश में असंतोष सा व्याप्त हो गया था। परन्तु सम्राट ने इसकी कोई परवाह नहीं की, यद्यपि तत्काल प्रतिक्रिया व्यक्त न करते हुए, राजसिंह ने मुगलों से सामान्य सम्बन्ध बनाए रखते हुए कुंवर जयसिंह, इन्द्रसिंह झाला और गरीबदास को औरंगजेब के दरबार में भेजा था और सम्राट ने पोशाक, इनाम और राजा के नाम फरमान देकर 30 अप्रैल, 1679 ई. को उन्हें विदा किया था। 26 मई को वृंदावन, मथुरा आदि स्थानों में यात्रार्थ पर्यटन करता हुआ सम्पूर्ण दल उदयपुर लौटा।¹⁰ अतएव जजिया को लेकर मुगल-मेवाड़ संबंध बिगड़े हों, ऐसा प्रमाणित नहीं होता, राजसिंह एक कूटनीतिज्ञ था। वह इस बात को लेकर अपने सम्बन्ध सम्राट से बिगाड़े ऐसा सोचना ठीक नहीं, इसके लिए मेवाड़ राज्य की हानि से सम्बन्ध रखने वाले कारणों का होना आवश्यक था।¹¹

जजिया के सम्बन्ध में ऐसी मान्यता है कि जब औरंगजेब ने इस कर को हिन्दुओं पर लगाया तो महाराणा राजसिंह ने एक पत्र के द्वारा उसका विरोध किया। परन्तु जब जजिया विरोध पत्र की तीन प्रतियां प्रसिद्धि में आयी तो यह विवादास्पद विषय बन गया कि क्या राजसिंह ने वास्तव में औरंगजेब को ऐसा कोई पत्र लिखा था। इस पत्र की एक प्रति महाराणा के निजी दफ्तर उदयपुर में, दूसरी बंगाल ऐशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के संग्रह में और तीसरी ऐशियाटिक सोसाइटी, लंदन में सुरक्षित हैं। इन तीनों में से उदयपुर वाली प्रति सबसे संक्षिप्त है, जिसको डब्ल्यू.बी. रोज ने अनुदित किया था और जिसे कर्नल

टॉड ने अपनी पुस्तक “एनाल्स” में उद्धृत किया। इसके संबंध में आम्ने का विचार है कि यह पत्र जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह ने लिखा था¹² परन्तु यह स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि जजिया (2 अप्रैल 1679 ई.) जसवन्तसिंह की मृत्यु (28 नवम्बर 1679) के चार मास बाद लगाया गया था। कलकत्ते वाली प्रति का लेखक शम्भाजी बताया जाता है जो संभव नहीं है, क्योंकि उस समय शिवाजी राजा थे। ऐसी स्थिति में शम्भाजी द्वारा पत्र लिखने का प्रश्न नहीं हो सकता। शिवाजी के बाद शम्भाजी द्वारा ऐसे पत्र लिखे जाने की कल्पना करना भी व्यर्थ है, क्योंकि वह निर्बल शासक था।¹³ डॉ. ओझा का कहना है कि शिवाजी के द्वारा पत्र लिखना भी इसलिए सम्भव नहीं हो सकता कि बुरहानपुर में शिवाजी की मृत्यु के बाद जजिया लगाया गया था। लंदन वाली प्रति में सम्भवतः शिवाजी का नाम पीछे से लगा दिया गया हो। इन सम्भावनाओं को समाप्त करने के बाद डॉ. ओझा का कहना है कि यदि कोई जजिया के विरोध में पत्र लिख सकता था तो वह राजसिंह ही हो सकता है न कि शिवाजी, क्योंकि लन्दन वाले पत्र में शिवाजी को औरंगजेब का शुभचिन्तक लिखा है। यह सर्वविदित है कि शिवाजी कभी सम्राट का शुभचिन्तक नहीं रहा। यदि कोई था तो वह राजसिंह था जिनका औरंगजेब से मधुर संबंध था।¹⁴

इन दलीलों के आधार पर ओझा जी ने लिखा है कि “इन सब बातों पर विचार करते हुए यही मानना पड़ता है कि वह पत्र महाराणा राजसिंह ने ही लिखा होगा और जब उसकी नकलें भिन्न-भिन्न स्थानों में पहुँची होगी तब उसमें किसी ने अपनी ओर से कुछ और बढ़ाकर शिवाजी का और किसी ने शम्भाजी का नाम दर्ज कर दिया होगा।”¹⁵ ओझाजी ने इस प्रकार कर्नल टॉड और कविराज श्यामलदास के ऐसे विचारों का समर्थन किया।¹⁶

उक्त मत के विपरीत जदुनाथ सरकार ने वस्तु विवरण और शिवाजी की आत्मगाथा संबंधी तथ्यों के आधार पर इस पत्र का लेखक शिवाजी को निर्धारित किया है।¹⁷

उनका कथन है कि आलमगीर को ऐसा साहसपूर्ण पत्र लिखने की क्षमता केवल शिवाजी में ही हो सकती थी। डॉ. गोपीनाथ शर्मा सरकार के इस मत से सहमत है। उन्होंने उदयपुर वाली प्रति को मूल पत्र का संक्षिप्त रूप माना है। अतः इसमें शिवाजी संबंधी तथ्यों का उल्लेख नहीं मिलता। गोपीनाथ जी का तर्क है कि यदि राजसिंह ने ऐसा कोई पत्र लिखा होता तो उसके समकालीन स्थानीय लेखक मानकवि, सदाशिव, रणछोड़ भट्ट आदि उक्त पत्र का निदर्शन अपनी कृतियों में अवश्य करते।¹⁸

इसके अतिरिक्त पत्र की शैली व लिखावट के विचारों से भी यह पत्र शिवाजी का होना चाहिए न कि राजसिंह का। लेखक का नाम, तिथि आदि यथा स्थान पर लिखने की प्रवृत्ति मेवाड़ के राजकीय पत्रों में सामान्यतः है। उक्त पत्र में इस पद्धति का अनुसरण नहीं हुआ है, अतः यह पत्र राजसिंह के द्वारा लिखा जाना संभव नहीं। एक जगह पत्र में उल्लेखित हैं – “मैं बिना आज्ञा के दरबार से चला आया।” गोपीनाथ जी का कहना है कि यह शिवाजी के आगरे से चले आने का संकेत मात्र है। यह सर्वविदित है कि राणा राजसिंह मुगल दरबार में कभी उपस्थित नहीं हुए थे। इसी प्रकार पत्र के अंत में एक स्थान पर लिखा हुआ है कि मेरे से कर लेने के पहले राजसिंह से कर लिया जाये। इसका अर्थ यह है कि इस पत्र का लेखक राजसिंह नहीं हो सकता। अतः गोपीनाथ शर्मा ने पत्र के प्रसंग व विषय के आधार पर शिवाजी को इस पत्र का लेखक सिद्ध करने का प्रयास किया है।¹⁹

उक्त निष्कर्ष सामान्यतः विश्वसनीय प्रतीत होता है, किंतु उक्त पत्र संबंधी अन्य तथ्यों पर विचार करने पर शिवाजी को पत्र का लेखक स्वीकार करने में हमें संशय है। इस संबंध में शोध अपेक्षित है।

महाराणा राजसिंह का जजिया विरोधी पत्र औरंगजेब को भेजना तो संदिग्ध है, किंतु यह निर्विवाद है कि जजिया कर लगाये जाने से राणा अत्यधिक खिन्न था। वह बादशाह को शंका की दृष्टि से देखने लगा था और उसकी गतिविधियों के प्रति पूर्णतया जागरूक था।²⁰

राणा राजसिंह के समक्ष यह स्पष्ट हो चुका था कि सम्राट की ये नीतियाँ मेवाड़ – मुगल संबंधों में गतिरोध उत्पन्न करने में सहयोग प्रदान करेगी, वहाँ ही ये मेवाड़-मुगल संबंध अब राज्य की स्थिति को सुदृढ़ करने में अधिक लाभदायक सिद्ध नहीं होंगे। इसीलिये वह गुप्त रूप से आंतरिक सुदृढ़ता के प्रयास में संलग्न था ताकि वह आने वाली सम्भावित सभी मुगल चुनौतियों का सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर सके। उसने कूटनीति से ही काम लिया और मुगलों से सौहार्द बनाये रखकर अपना अधिकांश समय मेवाड़ की आंतरिक सुदृढ़ता एवं सुरक्षात्मक कार्यों में व्यतीत किया। राणा मुगल सम्राट को उसकी चुनौतियों का स्पष्ट एवं सशक्त प्रत्युत्तर देना चाहता था। औरंगजेब की असहिष्णुतावादी नीति के प्रति राणा का दृष्टिकोण पूर्णतया विरोधी था। परंतु खुले रूप से उसका विरोध करने के लिये राणा को उपयुक्त समय व अवसर की प्रतीक्षा थी।²¹

जसवंत सिंह की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने मारवाड़ पर अधिकार कर लिया था, परंतु राठौड़ राजपूतों की शक्ति को पूर्णतया कुचलने में मुगल सम्राट सफल नहीं हो सका। वीर राठौड़ों ने अजित सिंह को मेवाड़ में जाकर सुरक्षा दिलायी और वे मेवाड़ की शक्ति से मिलकर सम्राट की शक्ति को चुनौती देने लगे। राणा इस गतिविधि के पोषक इसलिए भी बने कि मुगलों का मारवाड़ में आना मेवाड़ की सीमा के लिए हानिकारक था। अजित सिंह की माँ भी राणा की निकट संबंधी थी। इस परिस्थिति ने मेवाड़ और मारवाड़ को एक बनाया।²²

राजस्थान के इतिहास में इस मैत्री संबंध का बड़ा महत्व है, इस संघ ने मुगल राज्य की नींव को हिला दिया। औरंगजेब अन्ततोगत्वा सिसोदिया और राठौड़ों को कुचल न सका, जैसा कि युद्ध की गतिविधियों से स्पष्ट होता है।

सिसोदिया-राठौड़ गुट के बन जाने से सम्राट बड़ा चिंतित हुआ। उसने अपने राज्य की शक्ति इन राजपूतों को नष्ट करने में लगा दी। चित्तौड़, देसूरी आदि भागों पर अपना अधिकार स्थापित कर उसने आसपास के भागों को लेना आरम्भ किया। इस नीति से जन-जागरण हो उठा और चारों ओर मुगल थानों और अधिकारियों को नीचा देखना पड़ा। मारवाड़ के अधिकांश भागों में उसे सामन्तों और जनसाधारण के प्रत्याक्रमण का सामना करना पड़ा। अब युद्ध ने मुगल शक्ति और जन संगठन के मुठभेड़ का स्वरूप ले लिया। मेवाड़ के कई कस्बे मुगलों के हाथ लग गये जहाँ उनके थाने बिठा दिये गये। फिर भी राणा राजसिंह शाही शक्ति के समक्ष नतमस्तक नहीं हुआ। इसके विपरीत सिसोदिया और राठौड़ों के छापामार युद्धों की मार से त्रस्त मुगल सेना निष्क्रिय हो चुकी थी। अतः औरंगजेब का मेवाड़ विजय हेतु सैनिक अभियान महाराणा राजसिंह की रण कुशलता के कारण निष्फल ही सिद्ध हुआ।²³

एक तरफ राणा शहजादे अकबर को औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उकसा रहा था, दूसरी ओर वह बादशाह से सन्धि के लिए भी गुप्त वार्ता कर रहा था। हर हालत में वह मेवाड़ पर मुगल सैनिक दबाव को कम करने के लिए प्रयत्नशील था। संयोगवश महाराणा राजसिंह की 22 नवम्बर, 1680 ई. को अकस्मात् मृत्यु हो गई।²⁴

महाराणा राजसिंह के मृत्योपरान्त उसका पुत्र जयसिंह राणा बना। मुगलों और राणा में 24 जून 1681 को संधि हुई जिसके अंतर्गत मेवाड़ के लिए पुर, मण्डल

और बदनौर को जजिया के एवज देना निश्चित हुआ। ऐसा करने पर मुगल अपनी सेना मेवाड़ से हटा लेंगे। राणा को अपने पैतृक राज्य का स्वामी माना जायेगा और उसे पाँच हजारी मनसब दिया जायगा।²⁵ राणा जय सिंह ने मेवाड़ के लिए संधि कर मारवाड़ को अकेले युद्ध में उलझाये रखा, यह उचित नहीं था। यदि इस समय संधि की शर्तों के साथ मारवाड़ का भी बिन्दु रखा जाता तो संभवतः राजस्थान में मुगलों से युद्ध की संभावना टल जाती। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि भविष्य में राजपूत अपनी ओर से दक्षिण अभियान में मुगलों के सहयोगी न रहे। वे तटस्थ दर्शक के रूप में औरंगजेब की उलझनों को देखते रहे। यदि मुगल राज्य का पतन हुआ तो उसके बनाने वालों का भी उत्तरदायित्व है कि उन्होंने इस ओर उपेक्षावृत्ति धारण कर ली।²⁶ आखिरकार औरंगजेब को सन् 1704 में यह कर दकन से उठा लेना पड़ा। सतीशचन्द्र के अनुसार तो यह घटना यह दर्शाती है कि औरंगजेब ने अपनी धार्मिक नीति की असफलता को स्वीकार करके उसे त्याग दिया जिसकी घोषणा उसने सन् 1679 में बड़ी शानो शौकत से की थी।²⁷

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्यामलदास-वीर विनोद भाग-2 वैदिक यंत्रालय अजमेर 1928 पृष्ठ 453
2. फतुहाते आलमगिरी (ईशरदास कृत) यदुनाथ सरकार का अंग्रेजी अनुवाद एम सी सरकार एण्ड सन्स कलकत्ता 1947 पृष्ठ 174
3. यदुनाथ सरकार- हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब (1618-1708 ई.) भाग-2, ओरियेण्ट लॉगमान कलकत्ता 1972 पृष्ठ 152-153
4. हरिशचन्द्र वर्मा- मध्यकालीन भारत (खण्ड-2), हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली पृ. 152.
5. राम प्रसाद शर्मा- महाराणा राजसिंह और उसका समय मोतीलाल बनारसी दास आगरा 1971 पृ. 88
6. वही, पृ.101
7. वही, पृ.102
8. वही, पृ.104
9. फतुहाते आलमगिरी (ईशरदास कृत) यदुनाथ सरकार का अंग्रेजी अनुवाद एम सी सरकार एण्ड सन्स कलकत्ता 1947 पृष्ठ 175 गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा 1951 पृ. 349
10. मुहमद हाशिम खाफी- मुन्तखब उल लुबाब (नटनागर शोध संस्थान सीतामऊ) भाग-2 पृ. 255
11. अ राजप्रशस्ति सर्ग 2 श्लोक 1-9
11. बश्यामलदास वीरविनोद भाग-2 वैदिक यंत्रालय अजमेर 1928 पृ. 457-459
12. कर्नलटॉड - एनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान भाग 1 ऑक्फोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस 1920 पृ. 442
13. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा- उदयपुर राज्य का इतिहास भाग 2 वैदिक यंत्रालय अजमेर 1928 पृ. 549-554
14. वही पृ.554
15. वही पृ.554
16. वही पृ. 554
17. यदुनाथ सरकार का लेख- मॉर्डन रिव्यू जनवरी 1908, पृ. 21 से 25
18. गोपीनाथ शर्मा- राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा 1951 पृ. 350
19. गोपीनाथ शर्मा- मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्पर्स, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी 1954 पृ. 163-165
20. रामप्रसाद व्यास- महाराणा राजसिंह, हिन्दी साहित्य अकादमी जयपुर पृ. 104
21. वही पृ. 104
22. यदुनाथ सरकार- हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब 1618 से 1708 ईस्वी एमसी सरकार एण्ड सन्स कलकत्ता 1921 पृ. 167
23. रामप्रसाद शर्मा- महाराणा राजसिंह और उनका समय मोतीलाल बनारसी दास आगरा 1971 पृ. 121
24. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा- उदयपुर राज्य का इतिहास भाग 2 वैदिक यंत्रालय अजमेर 1928 पृ. 565
25. मुहमद हाशिम खाफी खां- मुन्तखब उल लुबाब (नटनागर शोध संस्थान सीतामऊ) भाग-2 पृ. 178 से 263
26. गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा 1951 पृ. 353 गोपीनाथ शर्मा- मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्पर्स, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी 1954 पृ.182 यदुनाथ सरकार- हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब 1618 से 1708 ईस्वी एमसी सरकार एण्ड सन्स कलकत्ता 1921 पृ. 369
27. हरिशचन्द्र वर्मा- मध्यकालीन भारत खण्ड-2, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली पृ. 153

नक्सलवादी आंदोलन के हिंसक स्वरूप का अध्ययन



shodhshree@gmail.com

विकाश कुमार

शोधार्थी, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध सारांश

नक्सलवादी आंदोलन की शुरुआत 25 मई 1967 को पश्चिम बंगाल के नक्सलवाड़ी गांव से हुई थी। इस आंदोलन की नींव चारु मजूमदार, कानू सान्याल व जंगल संथाल के द्वारा रखी गई थी। नक्सलवाद मार्क्सवाद के वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत से भी प्रभावित है। इसके तहत शोषित, उपेक्षित एवं दलित वर्ग अपने संघर्ष शक्ति से पूंजीपतियों, जमींदारों, साहूकारों एवं शासक-वर्ग को अपना शिकार बनाते हैं। वर्तमान में देश के लगभग 20 राज्य इससे प्रभावित हैं। इस आंदोलन की दिशा और दशा में अनेक परिवर्तन हुए हैं। आज यह आंदोलन अपने मूल उद्देश्यों से भटक गया है। वर्तमान में यह आंदोलन घोर हिंसक कार्यवाहियों का पर्याय बन चुका है, जिससे देश की आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था को गंभीर चुनौती मिल रही है व देश का विकास भी प्रभावित हो रहा है। इस शोध में ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग कर यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है, कि सरकार के अनेको प्रयास के बावजूद भी इस आंदोलन के हिंसात्मक स्वरूप में कोई कमी नहीं आई है, बावजूद इसके हिंसा के मामले बढ़े हैं। भारत सरकार हिंसा छोड़ने व आत्मसमर्पण करने वाले नक्सलियों के पुर्नवास की व्यवस्था भी कर रही है। तथा उन्हें उचित इनाम भी दे रही हैं। ताकि इससे भी इस समस्या से निपटा जा सकें।

संकेताक्षर : नक्सलवादी आंदोलन, हिंसा, आंतरिक सुरक्षा, देश का विकास, आंदोलन की राजनीति।

नक्सलवाद एक आंदोलन का नाम है जिसे कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों ने आरंभ किया था। यह आंदोलन पश्चिम बंगाल के सिलीगुड़ी जिला अंतर्गत एक गांव जिसका नाम नक्सलबाड़ी है, उसी गांव से इस आंदोलन की शुरुआत हुई थी। यही कारण रहा कि इस आंदोलन को नक्सलवादी आंदोलन कहा गया तथा इस आंदोलन में भाग लेने वाले को नक्सलवादी। इस आंदोलन की नींव 25 मई 1967 को रखी गई थी। इस आंदोलन के प्रमुख नेतृत्वकर्ता चारु मजूमदार, कानू सान्याल व जंगल संथाल थे। यह सभी चीन के कम्युनिस्ट नेता माओत्से तुंग के विचारों से प्रभावित थे। हम सभी जानते हैं कि हर आंदोलन का कोई न कोई मकसद होता है। इस आंदोलन का मुख्य मकसद था, गरीब-शोषित किसानों, मजदूरों, दलित आदिवासियों व सर्वहारा वर्ग को न्याय दिलाना। उनका मानना था कि भारतीय किसानों व मजदूरों के दुर्दशा की जिम्मेदार यहां की सरकार एवं सरकार की नीतियां हैं। जिसके कारण ही यंहा उच्च वर्ग का शासन तंत्र और उनका वर्चस्व स्थापित हो रहा है। यह आंदोलन आरंभ तो किसानों की समस्या से हुआ पर इसमें धीरे-धीरे अन्य मुद्दे भी जुड़ते चले गए। सर्वहारा, दलित आदिवासी समाज में भी बदले की चिंगारी भड़क रही थी, उन्हें लगा कि वो अपने अधिकार को इसके तहत प्राप्त कर सकते हैं। किसी भी कीमत पर अपने अधिकारों को हासिल करने का यह आंदोलन बंगाल के एक छोटे से गांव से आरंभ होकर आज देश के कई राज्यों में अपना पैर पसार चुका है। देश के लगभग 20 राज्य इससे प्रभावित हैं। नक्सल प्रभावित राज्यों में छत्तीसगढ़, झारखंड, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, केरल, तेलंगाना, असम, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड प्रमुख हैं। नक्सलवाद मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष के सिद्धांत से प्रभावित है। इसके तहत शोषित, उपेक्षित एवं दलित वर्ग अपने संघर्ष शक्ति से पूंजीपतियों, जमींदारों, साहूकारों एवं शासकों को अपना शिकार बनाते हैं। उनकी धारणा यह है कि अपने अधिकार को प्राप्त करने में जो भी बाधा पहुंचता है उसे समाप्त कर देना चाहिए, तभी सर्वहारा तंत्र की स्थापना संभव है।

किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीय सुरक्षा के दो अंग होते हैं, बाह्य और आंतरिक हम इसे एक गाड़ी के दो पहिये कह सकते हैं, जो किसी एक के खराब होने से ठीक से नहीं चल सकती। प्राचीन काल से लेकर आज तक भारत की राष्ट्रीय एकता एवं सुरक्षा को अनेक आंतरिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। भारत का क्षेत्र बड़ा होने एवं भिन्न-भिन्न भाषाओं ने विकास के स्तर को प्रभावित किया है। ऐसे में जिस क्षेत्र के लोगों को भेदभाव का अहसास होता है। वहां के लोगो में असंतोष की भावना पैदा होना स्वाभाविक है। इस असंतोष की भावना को बढ़ावा देने में कुछ हद तक हमारी व्यवस्था भी जिम्मेदार है तथा ऐसे अतिवादी भी जिम्मेदार है, जो देश की एकता व अखंडता पर ध्यान न देकर जनमानस की संवेदनशील भावनाओं के साथ खेलते हैं। जनमानस की यही कट्टर भावना देश की आंतरिक सुरक्षा को खतरा पैदा करती है। इन परिस्थितियों में देश के एक भाग के कुछ लोग उस तानाशाही, निरंकुशता, स्वार्थलोलुपता तथा देशज निहित स्वार्थी तत्वों के हाथ का खिलौना होना का आरोप लगाते हुए सशस्त्र संघर्ष का आह्वान करते हैं, ये आंतरिक विद्रोही कहलाते हैं एवं देश की आंतरिक सुरक्षा को खतरा पैदा करते हैं।

नक्सलियों के प्रभाव वाले क्षेत्र को लाल गलियारों के रूप में भी जाना जाता है। सुगठित क्रांतिकारी क्षेत्र (सी. आर. जेड.) या लाल गलियारा उन जगहों में है, जो इस देश में अभी भी पिछड़े इलाकों में आते हैं। मूलतः गरीब, शोषित, दलित आदिवासी मजदूर एवं किसान ही नक्सलवाद के प्रमुख पक्षधर हैं। लेकिन इसके साथ-साथ इस आंदोलन में एक खास बुद्धिजीवी वर्ग भी पक्षधर दिखलाई पड़ता है।

सामाजिक समस्या के समाधान के लिए प्रारंभ हुए इस आंदोलन पर इसके आरंभ के कुछ वर्षों बाद से ही राजनीति की छाया पड़ने लगी थी। और यह आंदोलन अपने मुख्य मुद्दों से भटकने लगा। बंगाल से चलकर जब यह आंदोलन बिहार में पहुँचा तो यह अपना रास्ता भटक चुका था। इस आंदोलन ने किसानों की समस्या को भुलाकार जातीय हिंसा की लड़ाई में परिवर्तित हो गया। माओवादियों की एक बड़ी सेना बन चुकी थी, जिसका नाम श्री राम सेना रखा गया था। यह संगठन उच्च जातियों के खिलाफ हिंसक प्रदर्शन करना आरंभ कर दिया। सन् 1972 में आंदोलन के हिंसक रूप लेने के कारण ही इसके जुझारू नेता चारु मजूमदार

को गिरफ्तार कर दस दिनों के लिए जेल भेज दिया गया। उसी दौरान जेल में ही उनकी मृत्यु संदेहास्तमक स्थिति में हो गई।

इस आंदोलन के प्रभाव के कारण ही सन् 1977 में पहली बार पश्चिम बंगाल में कम्यूनिस्ट पार्टी की सरकार बनी और ज्योति वासू पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बने।

इस आंदोलन के दुसरे जुझारू नेता कानू सान्याल ने इस आंदोलन को अपने मुख्य मुद्दा से भटकने एवं इसके राजनीतिकरण होने के कारण ही 23 मार्च 2010 को उन्होंने आत्म हत्या कर ली।

हाल के दिनों में इस आंदोलन की दशा और दिशा में अनेक परिवर्तन हुए हैं। आज यह आंदोलन अपने मूल उद्देश्यों से भटक गया है। वर्तमान में इस आंदोलन का स्वरूप घोर हिंसक कार्यवाहियों का पर्याय बन चुका है। जिससे देश की आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था को गम्भीर चुनौती मिल रही है। एवं देश का विकास भी प्रभावित हो रहा है। आए दिन हमारे देश के आंतरिक सुरक्षा में लगे जवानों पर हमले हो रहे हैं। कुछ बड़ी घटनाएं इसके हकीकत को बयां कर रही हैं।

नक्सलियों द्वारा की गई बड़ी घटनाएँ

- सन् 2007 में छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले में 300 से ज्यादा नक्सलियों ने 55 पुलिसकर्मियों को मौत के घाट उतार दिया था।
- सन् 2008 में उड़ीसा के नयागढ़ में नक्सलियों ने 14 पुलिसकर्मियों और एक नागरिक की हत्या कर दी थी।
- सन् 2009 में महाराष्ट्र के गढ़चिरोली में हुए एक बड़े नक्सली हमले में 15 सी. आर. पी. एफ. के जवानों की मौत हो गयी थी।
- सन् 2010 में नक्सलियों ने कोलकता-मुंबई ट्रेन में 150 यात्रियों की हत्या कर दी थी, एवं इसी साल पश्चिम बंगाल के सिल्दा कैम्प में घुसकर नक्सलियों ने 24 अर्द्धसैनिक बलों को मार गिराया था।
- सन् 2011 में छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा में हुए एक बड़े नक्सलवादी हमले में कुल 76 जवानों की हत्या कर दी गई, जिसमें सी. आर. पी. एफ. के जवानों समेत छत्तीसगढ़ के पुलिसकर्मी भी शामिल थे।

- सन् 2012 में झारखंड के गढ़वां जिले के पास बरिगन्वा जंगल में 13 पुलिसकर्मियों को मार गिराया।
- सन् 2013 में छत्तीसगढ़ के सुकमा जिले में नक्सलियों ने कांग्रेस के नेता समेत 27 व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया।

यह घटना दिनांक 24 अप्रैल 2017 की है, जगह छत्तीसगढ़, जिला-सुकमा, थाना- चिंतागुफा यहां हमारे देश के केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के जवान एक निमार्णाधीन सड़क की सुरक्षा में तैनात थे, तभी अचानक से करीब 300 नक्सलियों के एक झुण्ड ने उनपर हमला कर दिया एवं ताबड़तोड़ गोलियां चलाई, इस गोलीबारी में हमारे देश के 26 जवानों ने अपनी शहादत दे दी। इस घटना ने देश के लोगों के दिलों दिमाग को झकझोर कर रख दिया।

अभी हाल में एक घटना घटित हुई है, यह तो और भी गंभीर स्थिति को बयां कर रही है। यह घटना है, दिनांक 22 मार्च, 2020 की इस दिन पूरा देश (कोविड-19) कोरोना वायरस की महामारी के लिए प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के आह्वान पर जनता कर्फ्यू में था। तो दूसरी तरफ यह दर्दनाक घटना सुनाई देती है कि नक्सलियों द्वारा छत्तीसगढ़ के सुकमा जिले में एक बड़ा हमला एस. टी. एफ. जवानों पर किया गया जिसमें 17 जवानों की निर्मम हत्या हो जाती है तथा 14 जवान गंभीर रूप से घायल हो जाते हैं। एक तरफ पूरा विश्व मानव जीवन को बचाने में लगा है, तो वही यह संगठन अपने ही देश के जवानों को मारने में। यह घटना मानव के मानवीय संवेदना को भी तार-तार करता हुआ दिखाई पड़ता है। देश के सुरक्षा तंत्र पर हुए इन हमलों ने देश की सुरक्षा व्यवस्था पर प्रश्न-चिन्ह खरा कर दिया है। पिछले दस वर्षों में देश के 1150 सुरक्षाकर्मी नक्सलविरोधी गतिविधियों में शहीद हो चुके हैं। गृह मंत्रालय के एक रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में देश के 11 राज्यों के 90 जिले इस समस्या के चपेट में हैं।

नक्सलवादी आंदोलन के विस्तार में निम्नलिखित कारण

- भूमि-सुधार कानूनों के कार्यान्वयन में होती देरी से उपजता असंतोष।
- गरीबी और अमीरी के बीच बढ़ती खाई से उपजा असंतोष।

- सामाजिक एवं आर्थिक समस्या का बढ़ता ग्राफ।
- पिछड़े इलाकों में बुनियादी सुविधाओं का अभाव।
- भ्रष्टाचार का बढ़ता ग्राफ।
- विकास के लिए योजनाओं के कार्यान्वयन में सरकार की विफलता।
- राज्य सरकार व केन्द्र सरकार के बीच सामंजस्य का अभाव।
- विकास की आड़ में आदिवासियों के अधिकारों का हनन।
- न्यायिक प्रक्रिया की लेटलतीफी व लचर व्यवस्था।
- राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी व उत्तरदायित्व न लेने का अभाव। आदि अनेकों समस्या के कारण ही इस आंदोलन के विकास को रफ्तार मिल रही है।

नक्सलियों को जड़ से समाप्त करने एवं उन्हें मुख्य धारा से जोड़ने के लिए सरकार द्वारा किए गए प्रयास:-

सन् 1965 में नक्सलियों से निपटने के लिए विशेष कानून बनाये गए जिसे टाडा का नाम दिया गया। इस कानून के अंतर्गत नक्सलियों के लिए विशेष अदालत बनाने का भी प्रावधान था। इस कानून में जमानत का कोई प्रावधान नहीं रखा गया था। न्यायालय को यह अधिकार था कि वह अभियुक्तों के अधिकारों में कटौती कर सकें। टाडा में गिरफ्तार अभियुक्तों को मजिस्ट्रेट के यहां न ले जाकर सीधे विशेष न्यायालय में पेश किया जाता था। जिसमें उनको छह: माह से लेकर एक वर्ष तक के लिए पुलिस हिरासत में भेजने का अधिकार प्राप्त होता था। यह कानून सन् 1987, 1989 व 1993 में संशोधित भी किया गया था। सन् 2002 में इस कानून को बदलकर एक नया कानून पोटा बनाया गया। नक्सलियों के हिसंक घटनाओं को रोकने के लिए राज्य स्तरीय पुलिस के साथ-साथ केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, सशस्त्र सुरक्षा बल, भारत तिब्बत सीमा पुलिस एवं सीमा सुरक्षा बल को भी इस कार्य में लगाया गया है। नक्सलवाद की गंभीरता को समझते हुए भारत के पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह जी ने कहा था कि यह समस्या देश की आंतरिक सुरक्षा में बड़ा खतरा है। नक्सलरोधी अभियान के तहत उन पिछड़े इलाकों में विकास की योजना के लिए सरकार ने 7300 करोड़ रुपये का बजट आवंटित किया था। देश के गृह मंत्रालय ने इस समस्या से मुक्ति पाने के लिए नई पहल नाम की एक योजना आरम्भ की है। इस योजना में कुल तीन भाग है।

- इस समस्या का विशेष अध्ययन
- उन क्षेत्रों में विशेष सशस्त्र बलों की तैनाती
- इस समस्या पर नई पहल।

नक्सली समस्या का अध्ययन करने के लिए देश की खुफिया एजेंसी का भी सहारा लिया जा रहा है। भारत सरकार ने नक्सलियों के आत्मसमर्पण करने पर उनके पुर्नवास कि व्यवस्था करने के साथ-साथ उन्हें ईनाम देने का कार्य भी कर रही है। जो भी नक्सली अपने हथियार के साथ आत्मसमर्पण करता है, उसे एक लाख पचास हजार रुपये के साथ-साथ 30000 रुपये का मासिक वेतन देने की बात कही गई है। ताकि इससे भी इस गम्भीर समस्या से निपटा जा सके।

सन् 2014 में श्री नरेंद्र मोदी जी की सरकार ने नक्सली हिंसा एवं लेफ्ट विंग एक्टिविज्म को खत्म करने के लिए इससे प्रभावित क्षेत्रों में विकास कार्यों में तेजी लाने का कार्य किया है। वहा स्वास्थ्य सेवा, विधुत एवं मोबाईल संचार सेवा, कौशल विकास कार्यक्रम, यातायात की सुविधा, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, आदि सेवाओं में तेजी आई है। नक्सलियों पर मनोवैज्ञानिक दबाव बनाने का भी प्रयास सरकार द्वारा किये जा रहा है।

निष्कर्ष

इस शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि नक्सली समस्या मूलतः शोषण, उत्पीड़न के साथ-साथ सामाजिक आर्थिक विकास से जुड़ी है। नक्सलवाद केवल कानून व्यवस्था का मसला नहीं है, बल्कि यह समस्या मानव के व्यवहार से जुड़ी है। इसलिए इस समस्या का समाधान बन्दूक के बल पर नहीं किया जा सकता। आज भी इस देश का एक बड़ा हिस्सा विकास से वंचित है और अनेक तरीकों से कुछ बड़े लोगों के शोषण का शिकार हो रही हैं। यही कारण है कि आज भी यह समस्या जस की तस बनी हुई है तथा इसके हिंसक प्रवृत्ति में विस्तार हुआ है। सामाजिक-आर्थिक शोषण और सामंती मानसिकता के खिलाफ हथियारों के बल पर शुरू हुए इस आंदोलन को अब कुछ पढ़े

लिखे लोगों यानी बुद्धिजीवी वर्ग का भी समर्थन मिलने लगा है। जिस कारण आज शहरी नक्सलियों की चर्चा भी हो रही है। शरू से ही यह आंदोलन वैचारिक मतभेद का शिकार होता रहा है। सरकार के अनेकों प्रयास के बावजूद इस आंदोलन के हिंसात्मक रूप में कोई कमी नहीं आई है, बावजूद इसके हिंसा के मामले बढ़े हैं। देश की नरेंद्र मोदी सरकार वर्ष 2014 से नक्सली हिंसा एवं वाम अतिवाद को समाप्त करने के लिए नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में तेजी से विकास कार्य कर रही हैं, ताकि इस गम्भीर समस्या से जल्द से जल्द निपटा जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. यादव, रमता. (2018, जुलाई-दिसम्बर). "नक्सलवाद भारत की प्रमुख सामाजिक समस्या एवं आंतरिक सुरक्षा की चुनौती के रूप में एक अध्ययन", भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, वर्ष. 10, अंक. 02, पृष्ठ संख्या. 615-620
2. प्रताप, हरेंद्र. (2018, सितम्बर 8). "वैचारिक कंगाली का शिकार नक्सली", दैनिक जागरण, पृष्ठ संख्या. 10
3. दीक्षित, हृदयनारायण. (2019, मई 6). "वैचारिक दुराग्रह से पीड़ित वामपंथी", दैनिक जागरण, पृष्ठ संख्या. 08
4. उदयभास्कर, सी. (2019, दिसम्बर 23). "आंतरिक सुरक्षा के समक्ष नई समस्या", दैनिक जागरण, पृष्ठ संख्या. 10
5. शाह, अमित. (2019, अगस्त 19). "नक्सल प्रभावित इलाकों में और तेज होगा विकास", दैनिक जागरण पृष्ठ संख्या. 15
6. वैध, डॉ. मनमोहन. (2019, मार्च 9). "भारतीयता से दूर भागते वामपंथी", दैनिक जागरण, पृष्ठ संख्या, 10
7. सिंह, राम विजय एवं नवीन वर्मा (2011). "भारत की आंतरिक सुरक्षा को खतरा", नक्सलवाद इंडियन जर्नल ऑफ हुमन रिलेशन, अंक 40, पृष्ठ संख्या 314-320

जनजातीय इतिहास लेखन की परम्परा



shodhshree@gmail.com

डॉ. कैलाश चन्द गुर्जर

सहायक आचार्य, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

शोध सारांश

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में इतिहास लेखन की अलग-अलग परम्पराएँ विभिन्न कालखण्डों में प्रारम्भ हुई। पश्चात् इतिहासकारों ने प्रारम्भ से ही यह सिद्ध करने का प्रयास किया की भारतीयों को इतिहास का ज्ञान नहीं था। प्रारम्भ में इतिहास उच्च व शासित वर्ग का ही माना गया तथा आमजन को इतिहास का हिस्सा ही नहीं माना गया। सबल्टन इतिहास लेखन ने निम्न व जनजातीय समुदाय के इतिहास लेखन का आरम्भ किया, जिससे इतिहास में आमजन को भी हिस्सा मिला। ब्रिटिश भारत में इतिहास लेखन अंग्रेजी दृष्टिकोण से लिखा जाता था। परन्तु कालान्तर में भारतीय दृष्टि से इतिहास के महत्व को भी साबित किया गया। इस दृष्टि से जनजातीय इतिहास बहुत महत्वपूर्ण है जो भारतीय संस्कृति का परिचायक माना जा सकता है। भारतीयों के इतिहास दर्शन का ज्ञान ऋषि मुनि परम्परा, प्राचीन सभ्यताओं की खोज आदि ने दुनिया के इतिहासकारों के चक्षु खोल दिए तथा भारतीय शासकों राजा-महाराजाओं के इतिहास के साथ-साथ जनजातीय व निम्न वर्ग का इतिहास भी स्थापित होने लगा।

संकेताक्षर : इतिहास लेखन, पश्चिमी इतिहासकार, स्वदेशी इतिहास, सबल्टन इतिहास, जनजातियों का अस्तित्व, मार्क्सवाद की संकल्पना, प्रकृतिवादी, वंशावलियाँ, वंश लेखक।

इतिहास लेखन के वैश्विक दृष्टिकोण से ज्ञात होता है कि विदेशी इतिहासकारों ने यह सिद्ध करने का नाकाम प्रयास किया है कि भारतीयों को इतिहास का ज्ञान नहीं था। मैकाले से लेकर आज विन्डी डोनिगर, शेल्डन पॉलक अपनी ही संस्कृति का परिचय कराते आ रहे हैं आश्चर्यजनक रूप से भारत भी उनका सम्मान कराने को आतुर है। अरब इतिहासकारों से लेकर मेक्स वेबर, हीगल आदि यही सिद्ध करते रहे की भारत में इतिहास लेखन व इतिहास दर्शन का अभाव था। ऐसे में स्वदेशी स्थानीय व जनजातीय इतिहास का चिंतन कैसे दिखाई देता। हीगल ने कहा India has no History.¹ वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने एक लेख 'इतिहास दर्शन' में इस दृष्टिकोण पर कटाक्ष किया। यूरोप के ढले हुए शब्द यथा कम्यूनियज्म, सोशलीज्म, डेमोक्रेसी, नेशनलिज्म आदि के आलोक में सभी सभ्यताओं को पढ़ा जा रहा है।

18वीं सदी के अन्त में स्वदेशी इतिहास की प्रवृत्ति एक क्रांति के रूप में उभर कर आयी। हर्डर ने एक क्रिया आइनफालेन की संकल्पना स्थापित की। पहले राष्ट्र के प्रति सहानुभूति रखो, उस काल में जाओ। भूगोल और पूरे इतिहास में जाओ। उसमें स्वतः अपने आपको महसूस करो। इस दृष्टि से सरकारी रिकॉर्ड्स के आधार पर उस देश के इतिहास का निर्माण किया जाए।

यूरोप में जन्म लेने वाले इतिहास दर्शनों एवं इतिहास लेखन की विविध अवधारणाओं में भारतीय इतिहास लेखन को अत्यधिक प्रभावित किया। यहाँ प्रश्न उठता है कि भारत में भारतीय दृष्टि या स्वदेशी दृष्टिकोण क्या होना चाहिए। हमारे मन में प्रश्न उठता है कि इतिहास के प्रति उदासीनता क्यों? ऐतिहासिक विचार-विमर्श के लिए क्या भारतीय संस्कृति में कोई स्थान नहीं था या फिर भारतीय इतिहास की समझ का अभाव परिलक्षित होता है। इतिहास लेखन के लिए व्यापक दृष्टि आवश्यक है।

क्या उन जातियों का इतिहास नहीं था, जिन्होंने अपना इतिहास हमें खुद लिख कर नहीं दिया। उनके भी संवत् और दिन उतने ही महत्वपूर्ण थे। भारतीय इतिहास दर्शन के मूल वैदिक सभ्यता में सुरक्षित दिखाई देते हैं। इतिहास की

भारतीय मौलिकता है, भारत की व्यापक विभिन्नताओं में छिपे हुए 'एक्य' को पहचानना।

इतिहास लेखन के नये-नये आयाम विकसित हो रहे हैं जो इतिहास को समृद्ध बनाते हैं। इसी कड़ी में जनजातीय इतिहास लेखन भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह इतिहास का एक ज्वलंत एवं समसामयिक विषय माना जा सकता है तो उन्हें "Animistic" कहीं "Uncivilized" कहीं अनार्य, दस्यु, अस्पृश्य, पिछड़ी, दलित, आदिवासी आदि शीर्षकों में बाँटकर प्रस्तुत किया जाता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इसे Tribal या Subaltern History कहा जाता है।

भारतीय समाज विभिन्न समूहों का संगम रहा है। प्राचीन काल से ही अनेक समुदाय अपना-अपना इतिहास एवं गौरव संजोये हुए हैं। भारतीय संदर्भ में जनजातीय अध्ययन करना आवश्यक है। जनजातीय अध्ययन वर्तमान दौर में इतिहास का ही विषय नहीं अपितु समाजशास्त्रीय एवं मानवशास्त्रीय परिभाषाएँ भी प्राप्त होती हैं। जनजातीय इतिहास का शुद्ध रूप से प्राप्त करना भी एक चुनौती है क्योंकि इनका इतिहास लेखन या परम्पराओं का संकलन दूसरे लोगों के द्वारा किया गया है। आज भी समाज के मुख्य तबके से दूर पर्वतों जंगलों आदि में असुविधाओं से भरपूर जीवन यापन देखने को मिलता है।

जहाँ तक Tribes शब्द का प्रश्न है यह उपनिवेशवाद का उत्पाद है। 12वीं शताब्दी के आस-पास विश्व के कई देशों में वहाँ की रहने वाली मूल जातियों को पराजित कर नये राष्ट्रों (उपनिवेशों) का जन्म हुआ और इन मूल जातियों को सामाजिक दृष्टि से बर्बर अर्थात् Social Unequal घोषित करने का प्रयास हुआ। धीरे-धीरे यह वर्ग शासन, सत्ता व इतिहास के परिदृश्य से बाहर होने लगा था। 19वीं शताब्दी में उन्हें पुनः मुख्य धारा में लाने के लिए प्रयास आरम्भ होते हैं।

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जनगणना 1881 ई. में प्रारम्भ किया। इसमें जातीय गणना के साथ जनजातीय अस्तित्व भी उजागर हुए। Caste के साथ-साथ Tribes का लेखा-जोखा भी तैयार किया गया। जे.एन. बेन्स ने परम्परागत व्यवसायों के आधार पर जातियों का वर्गीकरण किया। जिनमें 'वन्य जातियों' का जिक्र किया गया। जनजातीय इतिहास लेखन के अभाव में इस समूह के नामकरण को लेकर भी विभिन्न काल-खण्डों में एकरूपता दिखाई नहीं देती है। 1901 की जनगणना में उन्हें 'प्रकृतिवादी' कहा गया, वहीं 1911 की जनगणना में 'जनजाति प्रकृतिवादी' संबोधित किया गया। 1921 की जनगणना रिपोर्ट में 'आदिम जनजाति' का उल्लेख

मिलता है। 1935 के भारत सरकार अधिनियम में जनजाति समुदाय को 'पिछड़ी जनजातियों' नाम दिया गया। 1941 की जनगणना में उन्हें केवल 'जनजाति' नाम से उल्लेखित किया गया।¹ भारत में एक बड़ा जन समुदाय बीहड़ों, जंगलों व पर्वत शृंखलाओं में निवास करता है जो अधिकांश आदिवासी जनजाति के रूप में पहचान रखते हैं। भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग 13 करोड़ आबादी जनजाति समुदाय की है।

रिजले एवं विलियम क्रुक ने अपने ग्रन्थों में ट्राइब्स का जिक्र करना प्रारम्भ किया। उन्होंने बताया कि कुछ जनजातियाँ तो भारत की जाति व्यवस्था में सम्मिलित हो गईं और कुछ का स्वतंत्र अस्तित्व बरकरार है। इनका अध्ययन Ethnological (नृजाति विज्ञान) अध्ययन के माध्यम से प्रारम्भ हुआ। कुछ समाज सुधारों ने भी जनजातीय स्थिति का अध्ययन किया तथा उनके सुधार के प्रयास किये परिणामस्वरूप Tribal History का सूत्रपात इतिहास लेखन में देखने को मिलने लगा।

ब्रिटिश काल में भारत में इतिहास लेखन की दो परम्पराएँ स्पष्ट रूप से देखने को मिलती हैं। प्रथम मार्क्सवादी जो शोषण को क्रांति के माध्यम से प्रस्तुत कर रहा था तथा दूसरा Progressive Approach, इसमें न केवल अध्ययन किया गया अपितु उस वर्ग के लिए प्रत्यक्षतः काम करने की संकल्पना मौजूद थी।

भारत में कबीलाई विशिष्टता वाला जनजातीय समुदाय उड़ीसा, महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, अण्डमान निकोबार, छत्तीसगढ़ व आन्ध्रप्रदेश आदि राज्यों में पाया जाता है। उत्तर-पूर्व में 12 प्रतिशत दक्षिण क्षेत्र में 5 प्रतिशत और उत्तरी क्षेत्र में 3 प्रतिशत की आबादी जनजातीय समुदाय की है। भारत में जनजातियाँ भील, मीणा, गरासिया, गोंड, बिरहोर, भुइया, संथाल, कोटकू, साओट, मीडिया, मिशमी, कोल, डाफला, धानका, सहरिया, कोंकण, खासी, गारो, आगरिया, बकरवाल, नागा, कुकी आदि प्रमुख मानी जाती हैं।

पूर्व में इतिहास अध्ययन को तीन प्रकार से समझा गया। अकादमिक पांडित्य, अकादमिक विधा और प्रभुत्व स्थापित करने का माध्यम। ब्रिटिश काल में अपनी राजनैतिक प्रभुता के सन्दर्भ में उन्होंने अपनी समीक्षा का केन्द्र भारत को बनाया। एडवर्ड सैद ने स्वयं ही Imperialism और Orientalism को सम्बन्धित बताया।²

भारत का देशीय इतिहास Orientalism कहलाया। सैद ने Orientalism को चार प्रकार से विश्लेषित किया-

1. ज्ञान व सत्ता का सम्बन्ध 2. पूर्व का पश्चिम के आलोक में अध्ययन 3. फूको (फ्रांसिसी दार्शनिक) (सत्ता ताकत की अवधारणा) का Orientalism 4. ग्रामशी (इटली का मार्क्सवादी विचारक) का प्रभुत्व अथवा उपाश्रय वर्ग का अध्ययन।⁴

इतिहास की भारतीय मौलिकता, भारत की व्यापक विभिन्नताओं एवं बहुविधता जो आचार-विचार व्यवहार में दिखाई देती है, उसके अन्दर छिपे हुए सूत्रों को खोजना भारतीय दृष्टिकोण है।

अनेक विद्वानों एवं इतिहासकारों ने भारतीय दृष्टि से भी इतिहास की व्याख्या की। तब ही तो हम विजेता, राजा, सामन्त व धनी वर्ग से बाहर भी आमजन, आदिवासी, शोषित व पीड़ित वर्ग का इतिहास पाठकों के सामने ला सकें। इतिहास में मानव ओर लोक परिवेश दोनों का सामंजस्य है।

भारत की पवित्र भूमि ऋषि मुनियों की तपों व कर्म भूमि रही है। ऋषियों ने अपनी साधना के माध्यम से मानव कल्याण के सूत्र स्थापित किए। अनेक भारतीय विद्वानों एवं ऋषि-मुनियों ने सामाजिक इतिहास लिखा। 'कुटुम्ब' परम्परा भारतीय समाज व्यवस्था की रीढ़ मानी जाती है। यह आज भी जनजातीय समुदाय की एक विशिष्ट पहचान बनी हुई है। कुटुम्ब के गौरवशाली अतीत से पीढ़ियों को जोड़े रखने हेतु 'वंश लेखन' जैसी विधा आरम्भ हुई। इस परम्परा को जीवित रखने के लिए राज-ऋषियों ने राज-परिवारों का वंश लेखन किया। अन्य ऋषियों ने अपने परिवार का तथा शेष समाज के लिए लेखन कार्य आरम्भ किया, विभिन्न पुराणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनमें भृगु, सोम, नाग, अग्नि, मनु आदि की वंशावलियों का वर्णन मिलता है। ऐसे ही सूर्यवंश व चन्द्रवंश आदि का वर्णन भी पुराणों में मिलता है। एफ. ई. पार्जीटर ने पुराणों का अध्ययन करते हुए उल्लेख किया है कि ब्रह्माण्ड पुराण में प्रामाणिक वंशावलियाँ मिलती हैं। वायु-पुराण भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।⁵

विभिन्न कालखण्डों में वंश लेखकों ने विभिन्न जन व समुदायों को इतिहास को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित रखा। विभिन्न सामाजिक समारोह एवं सांस्कृतिक महत्त्व के पारिवारिक कार्य व गतिविधियों की सटीक जानकारी वंश लेखकों की बहियों में मिलती है जो भारतीय इतिहास का बोध कराती है। आदिवासी जनजातियाँ इस संदर्भ में अग्रणी हैं। उनके सभी कुटुम्बीय रीति-रिवाज, संस्कार, महत्त्वपूर्ण कार्य, मातृभूमि के प्रति लगाव आदि उनकी वंश बहियों में ही मिल सकते हैं। क्योंकि उनका अन्य किसी लोगों ने तो इतिहास लिखा नहीं है। वंशावली परम्परा ने इतिहास लेखन को एक प्रामाणिक गति प्रदान की जो जनजाति

इतिहास लेखन के लिए तो अति महत्वपूर्ण साक्ष्य के रूप में माना सकता जा है।

ब्रिटिश काल में इतिहास लेखन में अंग्रेजों का अपना उद्देश्य होता था। अतः आमजन व जनजाति समुदाय का तो ऐतिहासिक रूप में लेखन का हथ्र क्या हो सकता था यह सर्वविदित है। आज की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा व इतिहास की दृष्टि से जनजाति इतिहास लेखन प्रांसंगिक माना जा सकता है। क्योंकि जनजातियों का देशप्रेम, मातृभूमि के प्रति लगाव, अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता एवं परम्पराओं में विश्वास, स्वामिभक्ति, शौर्य, परिश्रम आदि भारतीय संस्कृति के परिचायक तत्व उनमें मौजूद हैं।

विलियम जोन्स ने ब्रिटिश भारत में व्यवस्थित इतिहास लेखन का सूत्रपात किया। इस दृष्टि से मैक्समूलर तो भारत के मानसपुत्र घोषित हुए। मैक्समूलर से लेकर शेल्डन पॉलक तक सभी भारतीय इतिहास को अपने-अपने नजरिये से प्रस्तुत करते रहें जिनमें जनजातीय इतिहास तो दूर-दूर तक नजर नहीं आता। अरब इतिहासकारों को वैज्ञानिक माना गया जबकि उनके इतिहास लेखन के प्रमुख साक्ष्य वंशावलियाँ ही थीं और जब भारत में आमजन व जनजातीय इतिहास लेखन में वंशावली साक्ष्य बनी तो कपोल कल्पित सिद्ध करने का प्रयास किया गया। अब जब पश्चिमी देशों ने वंशावली साक्ष्य का उपयोग आरम्भ किया तो हमने भी साहस करते हुए इनको इतिहास लेखन में प्रयोग किया। कब तक हम पश्चिम की ओर देखेंगे।

सबल्टर्न इतिहास लेखन ने हाशिये पर रखी जातियों एवं जनजातियों के इतिहास लेखन की परम्परा कायम करके उनकी पहचान, उपयोगिता एवं महत्त्व को सिद्ध किया। इस प्रकार विभिन्न कालखण्डों में भारत के विभिन्न समुदायों के इतिहास लेखन की परम्पराएँ आरम्भ हुईं। इसी कड़ी में आदिवासी जनजातीय इतिहास महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में लिखा जाने लगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. G.W. Hegel, *The Philosophy of History*, New York, 1956, pg. 161-162.
2. *Census of India, 1961, Vol. I, part V-B (II), P.2-3*
3. सम्प्रति सिंह राय, *The Concept of Imperialism in Edward Said's Orientalism* <http://www.qcademicedu.orientalism.at.the.service.of.imperialism.A.Review.Article.of.Edward.Said's.Orientalism> London, New York. 1978.
4. एडवर्ड सैद, *Orientalism*, Pantheon Books, New York, 1978, pg.2-11.
5. डॉ. सूरज राव, *वंशावली, परम्परा-प्रवर्तक एवं पौषक-पौराणिक वाग्मय-वंशावली उद्भव और विकास*, पृ. 3

इंदुलेखा: एक आधुनिक स्त्री की दास्तान



shodhshree@gmail.com

स्मिता रजक

शोधार्थी, प्रेसिडेन्सी विश्वविद्यालय, कोलकाता (पश्चिम बंगाल)

शोध सारांश

प्रस्तुत आलेख में स्त्री के दो रूप लक्षित होते हैं। एक ओर कल्याणी कुट्टी जैसी स्त्री है जो रुढ़ियों और प्रथाओं की बलि चढ़ाई जाती है तो दूसरी ओर इंदुलेखा जैसी स्त्री है जो किसी भी प्रकार की अधीनता स्वीकार नहीं करती है। दरअसल परतंत्र भारत में स्त्री रूपक के तौर पर गढ़ी जा रही थी और उपन्यास उसका सशक्त माध्यम बना। गौर से देखा जाए तो कल्याणी कुट्टी जैसी स्त्री परतंत्र भारत के यथार्थ रूप को अभिव्यंजित कर रही थी तो इंदुलेखा जैसी स्त्री स्वाधीन भारत के कल्पित रूप को। लेखक की यह पैनी दृष्टि ही है जिसके तहत उन्होंने इन दो तरह की स्त्रियों की टकराहट से निर्मित स्त्री के आधुनिक रूप को गढ़ा। जिसकी प्रासंगिकता आज भी बनी है।

संकेताक्षर : इंदुलेखा, पंचु मेनन, स्त्री, माधवन, विवाह, नंपूतिरिप्पाट्टु, स्वतंत्रता, शिक्षा।

पी

के. परमेश्वरम नायर, ओ. चंतु मेनन कृत 'इंदुलेखा' (1889 ई.) को आधुनिक साहित्य के सभी नियमों का पालन करने वाला प्रथम उपन्यास ही नहीं कहते हैं वरन इसे मलयालम में मूलभूत महत्व प्राप्त करने वाला श्रेष्ठ उपन्यास की श्रेणी में भी रखते हैं।

आलोचक के.एम. थरकन जी मलयालम का प्रधान और पूर्ण उपन्यास ओ. चंतु मेनन कृत 'इंदुलेखा' (1889 ई.) को मानते हैं। उनका कहना है कि यह एक यथार्थपरक उपन्यास है जो मालाबार के मध्यवर्गीय परिवार को चित्रित करता है।

यहां ओ.चंतु मेनन कृत 'इंदुलेखा'(1889 ई.) के महत्वपूर्ण बिंदुओं की ओर ध्यान खींचा गया है-

'इंदुलेखा' उपन्यास की नायिका इंदुलेखा है। वह एक स्वतंत्र स्त्री है। उसकी स्वतंत्रता उसकी कथनी-करनी और निर्णय लेने में दिखाई देती है। वह अपने जीवन साथी का चुनाव स्वयं करती हैं एवं अपने इस निर्णय में अंतिम समय तक बनी रहती है। ऐसी क्रांतिकारी पहल न उस समाज में प्रचलित थी न ही साहित्य में। प्रथम आधुनिक उपन्यास के रूप में मान्यता प्राप्त इस उपन्यास में ऐसी पहल सराहनीय है। इंदुलेखा का विवाह उसके प्रेमी माधवन से तय हो जाता है। किंतु इंदुलेखा के नाना जी (पंचु मेनन) माधवन के आधुनिक रुख से नाराज होकर शादी से इंकार कर देते हैं। दरअसल इंकार के रूप में वे शपथ ही ले लेते हैं। नायर परिवार में यह प्रथा चली आ रही है कि एक बार प्रतिज्ञा ले ली जाए तो उसे पूरा किया जाता है। सभी यह बात तय मानते हैं कि दोनों की शादी नहीं होगी। यहां तक कि नायक भी इसे दुःखी मन से स्वीकार कर लेता है। लेकिन इस प्रथा के विरुद्ध नायिका का कहना है "उनकी (नाना जी की) पसंद के अनुसार मुझे जो करना है, वह जरूर करूंगी, लेकिन कुछ कार्य मैं स्वेच्छा से ही करूंगी। दुर्भाग्य से उनमें से एक यह बात है (माधवन और इंदुलेखा की शादी) इसके लिए उन्होंने व्यर्थ में शपथ ले ली है।"

अंततः इंदुलेखा जब माधवन से विवाह करती है तो ऐसी स्थिति में पंचु मेनन अपने शपथ का प्रायश्चित्त करते हैं। वह प्रायश्चित्त के लिए एक अनोखी रुढ़ि अपनाते हैं। वे जितने अक्षरों में शपथ लेते हैं उतने ही अक्षरों यानी तैंतीस अक्षर के स्वर्ण अक्षरों की प्रतिमाएं दान करते हैं। ऐसे आधुनिकता बनाम सामाजिक अंधविश्वास को दिखाना भी लेखक का उद्देश्य रहा है।

इंदुलेखा के विचार बहुत कुछ बातचीत के ढर्रे पर पाठकों तक पहुंचाया जाता है। उसके आधुनिक विचार कई मायनों में आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। वह केरल की समस्त स्त्रियों को स्वतन्त्र अधिकार दिए जाने की वकालत करती है। यह वकालत वह माधवन द्वारा स्त्री स्वाधीनता पर प्रश्न किए जाने पर करती है। माधवन का कहना है कि केरल की स्त्रियों को पति के चयन और उसे छोड़ने की स्वतंत्रता है। इसी स्वतंत्रता के कारण केरल की स्त्रियों में काफी घमंड है। वे पतिव्रत धर्म का पालन नहीं करती हैं। इसी बात का इंदुलेखा खंडन करती है। वह तर्क द्वारा अपनी सफाई देती है। इंदुलेखा कहती है कि यदि “पतिव्रता धर्म को लेशमात्र भी नष्ट किए बिना अन्य पुरुषों के साथ कई तरह से विनोद और हंसी मजाक करने का अवसर और स्वतन्त्रता संभव है।”² जहां तक स्त्री द्वारा पति के चयन और त्यागने की बात है इस विषय में उसके विचार हैं- “इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग न करके, अगर जरूरी होने पर ही उसका उपयोग करें तो वह स्त्रियों और पुरुषों दोनों के लिए सहायक सिद्ध होगी।”³ आज विभिन्न तरह की स्वतंत्रता की मांग की जाती है, पर इंदुलेखा के स्वतंत्रता से जुड़े विचार यहां विशेष उल्लेखनीय हैं। वह कहती है “इस स्वतन्त्रता का होना अच्छा है। लेकिन जरूरी होने पर इसका इस्तेमाल करना चाहिए। कुछ लोग कभी-कभी गैर जरूरी तौर पर भी इसका इस्तेमाल करते होंगे। इससे उनका अपमान भी होता होगा। लेकिन वह उस स्वतंत्रता का दोष नहीं है। उसके दुरुपयोग का ही दोष है।”⁴

इंदुलेखा की मां लक्ष्मीकुट्टी भी एक आधुनिक स्त्री हैं चूंकि इंदुलेखा माधवन से प्रेम करती है और उसी से विवाह भी करना चाहती है। लक्ष्मीकुट्टी अपनी बेटी का समर्थन करती है, वह माधवन को हर दृष्टि से इंदुलेखा के अनुकूल देखती है।

इंदुलेखा स्त्री स्वाधीनता के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण प्रश्न भी रखती है। वह है स्त्री-पुरुष समानता का प्रश्न। यह वैश्विक प्रश्न आज भी प्रासंगिक है। इसे तर्कपूर्ण रखने के लिए वह यूरोपीय स्त्री-पुरुषों का हवाला देती है। उसका मानना है कि जैसे यूरोपीय स्त्री और पुरुषों को समान रूप से शिक्षा, ज्ञान और स्वतन्त्रता प्राप्त है वैसे ही यहां की स्त्रियों को भी प्राप्त होना चाहिए।

इंदुलेखा स्त्रियों की शिक्षा पर भी जोर देती है। वह स्त्रियों में शिक्षा का अहम योगदान मानते हुए कहती

हैं - “पढ़ाई- लिखाई और ज्ञान दुर्बुद्धि को मिटाने का प्रमुख उपाय है।”⁵ इंदुलेखा अपने मामा (कोच्चुकृष्ण मेनन) के कारण ही शिक्षा प्राप्त कर सकी थी। वे इंदुलेखा को शिक्षा दिए जाने के आग्रही थे। उनका कहना था कि “अच्छी शिक्षा देकर इंदुलेखा को योग्य बना देने का दायित्व ही मेरा है। वैसे योग्यता हो जाने पर इंदुलेखा अपनी इच्छा के अनुरूप स्वयं ही अपने काम संभाल लेगी।”⁶

स्त्री शिक्षा को लेकर कोच्चुकृष्ण मेनन के आधुनिक विचार हैं तो दूसरी ओर पंचु मेनन और नंपूतिरिप्पाटु ठीक इसके विपरीत हैं। पंचु मेनन स्त्री-पुरुष दोनों को ही अंग्रेजी शिक्षा दिए जाने के विरोध में हैं। उन्हें यह डर है कि अंग्रेजी पढ़ते-पढ़ते कहीं अंग्रेजों का धर्म ही न मानने लगे। वे चाहते हैं कि इंदुलेखा ‘रामायण’ या ‘भागवत’ पढ़े। उनका मानना है कि अंग्रेजी पढ़ाना एक बेवकूफी भरा काम है। वह कहते हैं यदि इंदुलेखा अंग्रेजी न पढ़ी होती तो वह जैसी है उससे भी कहीं ज्यादा अच्छी होती। पंचु मेनन की ही भांति नंपूतिरिप्पाटु स्त्रियों को अंग्रेजी पढ़ाना बहुत ही हानिकारक मानते हैं। वह इंदुलेखा की तर्क सम्मत बातचीत को भी अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव मानते हैं। लेकिन वस्तुस्थिति पर गौर किया जाए तो वहां अंग्रेजी शिक्षा का कोई तुक नहीं दिखाई देता है। इंदुलेखा नंपूतिरिप्पाटु के पत्र को लेने से इंकार कर देती है। उसका बस इतना ही कहना है कि नंपूतिरिप्पाटु को कोई हक नहीं है कि वह उसे चिठ्ठी लिखे। अतः वह नंपूतिरिप्पाटु के पत्र को लेने से इंकार कर देती है। इस पर अंग्रेजी शिक्षा को बीच में लाना ठीक नहीं है।

भारत के अन्य प्रांतों की भांति केरल में प्रचलित सामाजिक प्रथाओं की भेंट स्त्रियों को चढ़ाया जाता था। उसका चित्रण उपन्यास में हुआ है। नायिका जब ग्यारह-बारह वर्ष की होती है तो उसके विवाह की चिंता उसके नानाजी को होती है। नानाजी (पंचु मेनन) वर ढूंढना शुरू कर देते हैं। लेकिन पंद्रह वर्ष की आयु तक उनके मामा (कोच्चुकृष्ण मेनन) द्वारा टाल दिया जाता है। लेकिन पुनः पंद्रह वर्ष की आयु में वर ढूँढे जाने की बात सामने आने पर कोच्चुकृष्ण मेनन का इस मामले में अभिप्राय यह रहता है कि “पढ़ाई-लिखाई पूरी करने के बाद इंदुलेखा अपने अनुरूप किसी योग्य पुरुष को स्वयं चुन ले।”⁷ इंदुलेखा बाल-विवाह से बच तो जाती

है लेकिन उसी के घर में शीनु नामक ब्राह्मण की बेटी कल्याणी कुट्टी, जो महज तेरह वर्ष की है। उसकी शादी कर दी जाती है।

यह शादी रातों रात तय होती है और उसी रात को शादी संपन्न भी होती है। यह बाल-विवाह के साथ-साथ बेमेल विवाह भी है। कल्याणी कुट्टी की शादी नंपूतिरिप्पाट्टु से तय होती है। वह पैंतालिस वर्ष का अपढ़, रईस और व्यभिचारी इंसान है। इस विवाह को लेकर कल्याणी कुट्टी की मां कुम्मिणी अम्मा बहुत ही खुश होती है। लेकिन जिस लड़की की शादी होनी है उसे पता ही नहीं कि उसकी शादी रातों-रात तय होने के साथ रात में ही विवाह होना है। ऐसे विवाह पर इंदुलेखा अफसोस करते हुए कहती है - “अफसोस! उस लड़की की शादी उसे बताकर ही तय करनी चाहिए थी?”⁸

दरअसल नंपूतिरिप्पाट्टु पहले इंदुलेखा से ही विवाह करने के लिए आता है। इंदुलेखा ऐसे बेमेल विवाह का आगे बढ़कर विरोध करती है। वह पंचु मेनन से कहती है- “यह औंधी खोपड़ी वाला नंपूतिरिप्पाट्टु मुझे नहीं चाहिए।”⁹ इतना ही नहीं वह नंपूतिरिप्पाट्टु से कहती है- “मैं इस जन्म में आपकी पत्नी नहीं बनूंगी।”¹⁰

केरल में विधवा विवाह को सहजता से स्वीकार किया जाता है। लक्ष्मीकुट्टी का विवाह पहले किलिमानूर के राजा के साथ होता है। उसकी मृत्यु के पश्चात दूसरा विवाह केशवन नंपूतिरी से होता है। यह और बात है कि लक्ष्मीकुट्टी एक बड़े घराने की बेटी है। क्या ऐसा अन्य गरीब परिवारों में संभव है? ऐसी बात देखने को नहीं मिलती है।

इंदुलेखा का चरित्र-चित्रण माधवन के चरित्र से अधिक सुगठित रूप से आंका गया है। इंदुलेखा अपने आधुनिक विचार में बनी रहती हैं। उसके आधुनिक विचार यह है कि चाहे जो हो जाए वह माधवन से ही विवाह करेगी। जिसे वह विपरीत परिस्थिति में पड़कर भी निभाती है। इस मामले में माधवन इंदुलेखा से थोड़ा कमजोर निकलता है। दुष्ट व्यक्ति नंपूतिरिप्पाट्टु और अनजाने में इंदुलेखा की नानी कुंचिकुट्टी अम्मा द्वारा यह अफवाह फैल जाती है कि इंदुलेखा का विवाह नंपूतिरिप्पाट्टु से हो रहा है। इस अफवाह के प्रवाह में माधवन भी आ जाता है। वह वस्तु स्थिति को बिना समझे ही दुःखी हो देशाटन के लिए निकल पड़ता है। उसे न ही अपनी प्रेमिका और न ही अपने प्रेम पर

भरोसा है। जबकि इंदुलेखा एकनिष्ठ भाव से प्रेम पर भरोसा रखती है। वह उसकी प्रतीक्षा अंतिम समय तक करती हैं।

उपन्यास में नंपूतिरिप्पाट्टु का व्यंग्यात्मक और हास्यास्पद चित्र खींचा गया है। वह नाम मात्र का धनी व्यक्ति है। कर्ज तले दबा हुआ है, लेकिन अपने शानो शौकत में कमी नहीं आने देता है। चाटुकारों से घिरा यह असुंदर और अपढ़ व्यक्ति अपने आपको कामदेव और ज्ञानी मानता है। अंधविश्वासी इस तरह है कि किसी भी कागज में दस्तखत करने के पहले पंडित से निश्चित तिथि निकलवाता है। चारित्रिक रूप से इतना गिरा इंसान है कि कई-कई स्त्रियों के साथ संभोग कर चुका है, लेकिन अब भी कुंवारा कहलाने में गर्व करता है। ऐसी ओछी सोच पर लेखक ने व्यंग्य किया है। वह इंदुलेखा से विवाह करने जाता है सब कुछ बनावटी दिखावे को लेकर ऊपर से नीचे तक भाड़े के स्वर्ण वस्त्र में लिपटा हुआ जाता है। उसके इस ऊपरी स्वर्ण सामंती रूप को देखकर पूरा का पूरा समाज ही अभिभूत हो जाता है। लेकिन इंदुलेखा जैसी आधुनिक स्त्री उसका जमकर बड़े ही शालीन तौर पर उपहास करती है। वह ऐसे बनावटी व्यक्ति से विवाह के लिए इंकार कर देती है। उसका यह इन्कार दरअसल बने बनाए सामाजिक जड़ता और रुढ़ियों का ही विरोध है। विवाह से इन्कार के बाद वह अपना मुंह छिपाने के लिए उसी घर की तेरह वर्षीय कन्या से विवाह करता है और खुशी-खुशी प्रस्थान करता है। सामाजिक रुढ़ियों के बने रहने की इस विडंबना पर लेखक व्यंग्य करते हैं। उपन्यास का एक पात्र चारुशेरी नंपूतिरी कहता है - “भगवान की कृपा हुई कल्याणी कुट्टी भी नहीं मिलती तो कम से कम दासी अम्मू से शादी करके ही रहते। अफसोस! बुद्धि में व्यवस्था और आत्मसम्मान न हो तो फिर वह आदमी किस काम का!”¹¹

भारत के प्रारंभिक उपन्यासों में यह पहला ऐसा उपन्यास है जिसमें संयुक्त और विशाल परिवार को दिखाया गया है। अधिकांशतः यह कहा जाता है कि आधुनिकता के आने और औद्योगिकीकरण के विकास का असर संयुक्त परिवारों पर पड़ता है। लेकिन भारत में उस तरह का औद्योगिकीकरण का विकास 1889 ई. तक उस पैमाने पर नहीं हुआ था। जबकि अन्य भारतीय उपन्यासों में संयुक्त परिवार बनने के पुनः बाद में उसके टूटने को देखा जा सकता है। ‘देवरानी जेठानी की कहानी’ (हिंदी), ‘अलालेर घरेर दुलाव’ (बांग्ला),

‘मिरातूल उरुस’ (उर्दू) आदि जैसे उपन्यासों में संयुक्त परिवार के टूटने को दिखाया गया है। इसकी वजहों में धन कहीं न कहीं एक कारण माना जा सकता है। वैसे ही यदि हम ‘इंदुलेखा’ उपन्यास को देखें तो इसमें वैसी बात नहीं है। फिर भी ध्यान दें तो दरारें पड़नी शुरू हो गई थी। संयुक्त परिवार होने के कारण घर की सत्ता पंचु मेनन के हाथों में रहती है। पैसों के लिए सभी को उनके अधीन रहना ही नहीं पड़ता बल्कि पूछकर खर्च करना पड़ता है। माधवन (भांजे) से पंचु मेनन नाराज हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में उसे नौकरी के सिलसिले में मद्रास जाना पड़ता है। माधवन के पिताजी स्थिति को समझते हुए मामा जी से पैसे न मांगकर स्वयं देना चाहते हैं। वहीं पंचु मेनन की पत्नी के परिवार का शीनु पट्टर अपने बेटे शन्नन को अंग्रेजी पढ़ाना चाहता है। अंग्रेजी पढ़ाने के लिए वह उसे मद्रास भेजना चाहता है। परंतु पंचु मेनन इसके लिए राजी नहीं होते हैं। शीनु अपने बेटे को अपनी मेहनत से जमा किए पैसे खर्च के लिए देना चाहता है। चूंकि परिवार का स्वामित्व पंचु मेनन के हाथों में है। वह इस तरह की स्वतंत्रता बर्दाश्त नहीं कर पाता है। पंचु मेनन कहते हैं कि ‘तुम्हें जिस जमीन पर खेती करने को दी गई है वह तुमसे छीन ली जाएगी।’ कुल मिलाकर कहा जाए तो ऐसे परिवार में भी पैसा ही वह मुख्य कारण है जिससे परिवार में दरार पड़नी शुरू हो गई थी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. इंदुलेखा- ओ. चंतु मेनन, अनुवादक- सुधांशु चतुर्वेदी, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, पहला संस्करण- 1994, पृष्ठ संख्या- 30
2. वही, पृष्ठ संख्या- 20-21
3. वही, पृष्ठ संख्या- 21
4. वही, पृष्ठ संख्या- 21
5. वही, पृष्ठ संख्या- 21
6. वही, पृष्ठ संख्या- 4
7. वही, पृष्ठ संख्या- 4
8. वही, पृष्ठ संख्या- 142
9. वही, पृष्ठ संख्या- 138
10. वही, पृष्ठ संख्या- 135
11. वही, पृष्ठ संख्या- 142

17 वीं 18 वीं शताब्दी में वस्त्र उद्योग : मारवाड़ के विशेष सन्दर्भ में



shodhshree@gmail.com

डॉ. मधु कुमावत

सहायक आचार्य, श्री रंतनलाल कंवर पाटनी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किशनगढ़

शोध सारांश

मारवाड़ राज्य राजस्थान के पश्चिम भाग में स्थित था जिसे संस्कृत शिलालेखों एवं ग्रन्थों में मरु, मरुदेश, मरुमण्डल आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। मारवाड़ में प्रचलित अनेक उद्योगों में वस्त्र उद्योग एक महत्वपूर्ण उद्योग था। हमें अनेक अभिलेखागारीय स्त्रोतों से जानकारी मिलती है कि उस समय वस्त्र उद्योग उन्नत अवस्था में था। उस समय मारवाड़ में रेजा, पाघ, चुंदडिया, गुलुबंद, ऊनी कम्बल, ऊनी चटाइयों और घूघियों, गोरबन्ध आदि दक्ष दस्तकारों द्वारा बनाये जाते थे।

संकेताक्षर : मारवाड़, अभिलेखागार, रेजा, पाघ, गुलुबंद, घूघियों, गोरबन्ध, दस्तकार, वस्त्र उद्योग।

17 वीं 18 वीं शताब्दी में मारवाड़ में अनेक उद्योग प्रचलित थे जैसे नमक उद्योग, वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, लकड़ी उद्योग, आभूषण उद्योग एवं रत्न जड़ित उद्योग, चमड़ा उद्योग, खाद्य तेल उद्योग, चूड़ी उद्योग, हाथी दांत उद्योग, पत्थर उद्योग आदि। उस समय आधुनिक समय की तरह उद्योगों के लिये कारखाने नहीं होते थे। तत्कालीन समय में उद्योग दक्ष दस्तकारों एवं उनके परिवार के सदस्यों एवं इनसे प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों द्वारा संचालित होते थे। 17 वीं 18 वीं शताब्दी की अभिलेखीय सामग्री से हमें ज्ञात होता है कि राज्य द्वारा भी उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाता था। इसी वजह से देश के अनेक भागों से दस्तकारों का इस काल में मारवाड़ आने के प्रमाण हमें मिलते हैं।

इस काल में मारवाड़ में वस्त्र उद्योग विकसित अवस्था में था। वस्त्र उद्योग को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

- (1) सूती वस्त्र उद्योग
- (2) ऊनी वस्त्र उद्योग

सूती वस्त्र उद्योग

हमारे अध्ययन काल में मारवाड़ में सूती वस्त्र उद्योग उच्च विकसित अवस्था में था। यह उद्योग पाली, जालौर, जोधपुर, देसुरी, पचपदरा, फलौदी, बिलाड़ा आदि कस्बों में प्रचलित था। उस समय जालौर में मोटा सूती कपड़ा जिसे रेजा भी कहा जाता था अच्छा बनता था। जोधपुर कस्बे में भी रंगाई छपाई, चुंदडिया, पगड़ियाँ (पाघ), लहरिया, साफे, स्त्रियों के लिए गुलुबंद, उत्तम किस्म के निर्मित किये जाते थे। महाराजा अजीतसिंह रे समय कपड़ा रा कोठार री बही जवाहर खाना एंड मिन्ट में कपड़ों का विस्तृत विवरण मिलता है जिनका पाघ कीमखाब, पोतिया, दुपट्टा, बालाचुन्दरी, आसावरी, कीरमंची घागरा, कांचली, चोली, पाटजामा, सरेजन, बागा के रूप में उल्लेख है वही कपड़ों के रूप में मलमल, छीट, मखमल, लट्टा, रेशम अदि का वर्णन है। सनद परवाना बही सं, 21, वि. स. 1835 में हमें वर्णन मिलता है कि अखेमल जोधपुर का एक प्रसिद्ध कारीगर था जो मसरु कपड़े बनाने में प्रवीण था।²

मारवाड़ में पाघे भी बहुत अच्छी बनती थी। महाराजा अजीतसिंह रे समय कपड़ा रा कोठार री बही वि. संवत 1777 में विभिन्न प्रकार की पाघों का उल्लेख आया है, जैसे - पाघ मुकनी, पाघ पट्टी, पाघ सफेद मुकनी, पाघ लाल, पाख मुलमुल, पाघ कसुमल, पाघ कोमली, पाघ छीट की, पाघ लट्टे की, पाघ बादलाई आदि। कोठार बही सं 28 में इनकी कीमतों का वर्णन मिलता है³

क्र. सं.	वस्तु का नाम	कीमत
1.	पाघ का गुलाबी पोत	20 रूपए
2.	पाघ फुरफसार की चौकड़ी लफादार	8 रूपए
3.	सफेद पाघ (नागौरी)	15 रूपए
4.	बनवाडा की पाघ	3 रूपए 12 आना

कपडा रा कोठार री बही सं 1 में हमें पोतियों (साफों) का भी वर्णन मिलता है जैसे - पोतिया लच्छेदार, पोतिया गुजराती, पोतिया कसुमल, पोतिया जरिबेल, पोतिया रेशमी लाल बेलदार, पोतिया कीरमची आदि।⁴ जोधपुर में साफे व स्त्रियों के गुलुबन्द “छडिव” के

नाम से जाने वाले मुसलमान कारीगरों द्वारा बनाये जाते थे।⁵ प्रमाण मिलता है कि ये लोग मुल्तान के रहने वाले थे एवं 15 वीं सदी में ये लोग नागौर आये व यहाँ से जोधपुर आकर बस गए।

जोधपुर कोतवाली - चबूतरा जमाबंदी बही संख्या 887 वि. स. 1831 में कपड़ों के भाव इस प्रकार थे-⁶

क्र.सं.	वस्त्र का नाम	नग	कीमत (रूपए में)
1.	ख्रीमखाब के पाट	2	8.00
2.	साडी (गुलेल)	1	1.25
3.	घाघरा (जमर)	1	1.50
4.	घाघरा (मुल्तानी की छीट)	1	2.00
5.	साडी (सोसनी)	1	1.50
6.	कोयली	1	0.25
7.	साडी (कंसुबल कोरदार)	1	4.00
8.	चीरो (साबु लखानी)	1	2.00
9.	जामो (कंसुबल कोरदार)	1	2.00
10.	कांचली (लाल)	1	1.25
11.	कपडा देशी	5 (थान)	7 रूपए 4 आना
12.	साफा	1	8 आना 3 टका
13.	पचेवडा	151 (गज)	9 रूपए 10 आना

हमे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि मारवाड़ रंगाई एवं छपाई के लिए प्रसिद्ध था।⁷ मारवाड़ में जोधपुर शहर के अतिरिक्त उसके संभाग के कई क्षेत्रों में ठप्पा की छपाई की जाती थी। कपड़ों की सतह का रंग गहरा लाल अथवा सोसनी होता था जिन पर विभिन्न रंग जैसे अमरसिया, नारजिया, बादामी, केसरिया, पिसताखी, कंसुबल, सफेद लहर में स्याही बूटी, सफेद बूटी में लाल पान, भस्म में छपयोडा वस्त्र, लाल लीकदार, तुसी, लाखी व हलारी रंगों का प्रयोग किया जाता था। मारवाड़ में घाघरे के लिए रेजा या खादी के वस्त्रों में बूटादार, छोटी व बड़ी बूटी की लताएं मोठडदार व लहरदार छपाई की जाती थी। लोग बड़े

चाव से पक्के रंग वाले लाल, केसरिया, नीला व काले रंग वाले कपडे पहनते थे।

केसरिया रंग की रंगाई कसूली नामक वृक्ष के फूल के रस से किया करते थे और लाल रंग को कसूम नामक वृक्ष की लकड़ी के बुरादे से बनाया जाता था। नीला व काला रंग बैंगनी रंग को मिश्रित करके बनाया जाता था।⁸ महाराज विजैसिंघ जी रे वगत में नवा कपड़ों रा कोठार रो रोजनावों में उस समय के कपड़ों के रंगों का जैसे कसुबल रंग, सबज रंग, तोरुफुल रंग, सोसनी एवं गुलाबी रंग का वर्णन है।⁹ पचपदरा में ओढ़ने की रंगाई छपाई का कार्य अच्छा होता था। इस कस्बे में कपड़ों के भाव नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट हो जाता है-

क्र.स.	वस्तु का नाम	नग	भाव
1.	कांचली (जरी)	1	50 पैसे
2.	पाघ (सफेद)	1	57 पैसे
3.	पछेवडी	10 हाथ	25 पैसे
4.	सैलो	6 हाथ	25 पैसे
5.	पाघ (कसूंबल)	1	1 रूपए

इसी के साथ मारवाड़ में सोने चांदी के द्वारा वस्त्रों पर सजावट का काम किया जाता था। इस कला को करने वाले लोगों की एक जाति विशेष को जरदोज कहा जाता था। इनका कार्य पूर्व में रजवाड़ों एवं कुलीन घरों के लिए ही किया जाता था। राजा महाराजा, जागीरदार और सेठ साहूकार लोग दान दहेज व विवाह आदि में जरी के वस्त्रों का उपयोग करते थे। महिलाओं के लिए जरी के काम किये हुए दुपट्टे, ओढनी, लहंगे, कुर्ती कांचली आदि होते थे। इसी के साथ कस्बा बिलाड़ा परगने के पीपाड़ कस्बे में मुसलमान छीपे छपाई के कार्य में बड़े कुशल थे। उनके द्वारा छपी हुई जाजमें, तोशके, रजाईया, मेजपोश, पलंग पोश, छींटे दूर दूर तक भेजी जाती थी।¹⁰ कपड़े रे कोठार री बही संख्या 58 से हमें वर्णन मिलता है कि मुल्तानी छींट मुल्तान से खरीदी गई थी।¹¹ महाराजा अजीतसिंह रे समय कपड़ा रा कोठार री बही संख्या 1 में हमें कुछ छींटों के नाम मिलते हैं जो इस प्रकार है - केसरिया छींट मोलाखी छींट, लाल छींट, सफेद छींट, सुदामी छींट, बदरी छींट, गुलाबी छींट आदि। इनमे मुल्तानी छींट प्रसिद्ध थी।¹² मारवाड़ के मारोठ और जालोर परगनों में हाथ से कती और बुनी रेजी काफ़ी प्रसिद्ध थी।

ऊनी वस्त्र उद्योग

हमारे अध्ययन काल में मारवाड़ में सूती वस्त्र उद्योग की तरह ही ऊनी वस्त्र उद्योग भी उन्नत अवस्था में था। इसके प्रमुख केंद्र नागौर, सांचोर और जोधपुर थे। मारवाड़ रा परगना री विगत में हमें ज्ञात होता है कि नागौर ऊनी वस्त्र उद्योग का सबसे महत्वपूर्ण केंद्र था एवं यहाँ के बने हुए ऊनी कम्बल मारवाड़ में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण हिंदुस्तान में प्रसिद्ध थे।¹³ जोधपुर की सनद परवाना बही संख्या 13 में हमें वर्णन मिलता है कि शाही परिवार द्वारा 300 कम्बले नागौर से खरीदी गई थी।¹⁴ ऊनी सामान धनी वर्ग एवं सामान्य वर्ग दोनों द्वारा उपयोग में लिया जाते थे। सनद परवाना बही संख्या 25 से हमें वर्णन मिलता है कि ऊनी शॉल पश्मीना धनी वर्ग की अत्यधिक मांग की वजह से पंजाब और कश्मीर से आयात किया जाता था।¹⁵

सनद परवाना बही संख्या 14 में हमें उल्लेख मिलता है कि नागौर में 20 ऊनी कम्बलों का भाव 10 रूपए

था। इसी के साथ इसी बही में उल्लेख मिलता है कि 1 मोमनी थान (25 हाथ) का मूल्य 1 रूपए 14 आना था।¹⁶ नागौर कोतवाली चबूतरा जमाबंदी बही संख्या 1183 से हमें नागौर के ऊन के गलीचे बनाने वाले कुछ दक्ष कारीगरों करीम, फलु, लालो, फतो, प्यारा आदि के नाम मिलते हैं।¹⁷ नागौर हुकुमत जमाबंदी बही संख्या 1283 में हमें उल्लेख मिलता है कि नागौर से जोधपुर 5 ऊनी चदर भेजे गए जिनकी कीमत 2 रूपए 1 आना प्रतिगज थी। इसी बही में नागौर से 20 ऊन के गलीचे अमरकोट भेजे जाने का उल्लेख मिलता है जिनका मूल्य 30 रूपए 8 आना 1 पैसा था।¹⁸ इसी के साथ हमें पता चलता है कि सांचोर में ऊनी चटाइयों और घूघियों का काम अच्छा होता था। इसके अलावा जोधपुर में ऊंट और बकरी के बालों के बोरे और चटाईयाँ अच्छी बनती थी। ऊंटों को सजाने के लिए गोरबन्ध तैयार किये जाते थे।

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि 17 वीं 18 वीं शताब्दी में मारवाड़ में वस्त्र उद्योग उन्नत अवस्था में था। वस्त्रों का उत्पादन इतना अधिक होता था की स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद राजस्थान के अन्य भागों के साथ साथ देश के अन्य भागों में भी निर्यात किया जाता था। राज्य द्वारा संरक्षण दिए जाने के कारण यह उद्योग इस काल में उन्नत अवस्था में रहा। हमें अनेक प्रमाण मिलते हैं जिससे पता चलता है कि अन्य राज्यों से भी दस्तकार मारवाड़ में इस काल में आकर रहने लगे थे। इस प्रकार यह उद्योग इस काल में दस्तकारों की आजीविका का महत्वपूर्ण साधन रहा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. गहलोत, जगदीश सिंह, मारवाड़ राज्य का इतिहास, पृ. 218-244, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर, 1925 ई.।
2. सनद परवाना बही नं. 21, वि.सं. 1835 (1778 ई.), जोधपुर रिकार्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
3. कपड़ों की कोठार री बही नं. 28, वि.सं. 1879 (1822 ई.), जोधपुर रिकार्ड्स, जोधपुर जिला अभिलेखागार, जोधपुर।
4. महाराजा अजीतसिंह रे समय कपड़ा रा कोठार री बही, जवाहर खाना एंड मिन्ट, सं. 280, वि.सं. 1777 (1720 ई.)।
5. जालौर कोतवाली चबूतरा जमाबन्दी बही सं. 754, वि. सं. 1832 (1775 ई.), जोधपुर रिकार्ड्स, जोधपुर जिला अभिलेखागार, जोधपुर।

6. मारवाड़ रा परगना री विगत, भाग द्वितीय, भाटी नारायणसिंह (सं.), पृ. 449, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर 1968 ई.।
7. इम्पीरियल गजेटियर्स आफ इण्डिया, प्रोविन्सियल सीरिज, राजपूताना, पृ. 252।
8. गुप्ता, डॉ.बी.एल., ट्रेड एण्ड कामर्स इन राजस्थान, पृ. 56-57, जयपुर पब्लिशिंग हॉऊस, जयपुर, 1987 ई।
9. महाराजा विजैसिंघ जी रे वगत में नवा कपड़ों रा कोठार रे रोजनावो, सं. 155, वि. सं. 1843 (1786 ई.)।
10. गहलोत, जगदीश सिंह, मारवाड़ राज्य का इतिहास, पृ. 235, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर, 1925 ई.।
11. कपड़ों रे कोठार री बही सं. 58, वि.सं. 1843 (1786 ई.), जोधपुर।
12. महाराजा अजीतसिंह रे समय कपड़ा रा कोठार री बही सं.1, जवाहर खाना एंड मिन्ट, सं. 280, वि.सं. 1777 (1720 ई.)।
13. मारवाड़ रा परगना री विगत, भाग द्वितीय, पृ. 424।
14. सनद परवाना बही नं. 13, वि. सं. 1830 (1773 ई.), जोधपुर रिकार्ड्स।
15. सनद परवाना बही नं. 25, वि. सं. 1838 (1781 ई), फाईल 77, जोधपुर रिकार्ड्स।
16. सनद परवाना बही नं. 14, पृ. 34, वि.सं. 1831 (1774 ई.), जोधपुर रिकार्ड्स, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
17. नागौर कोतवाली चबूतरा जमाबन्दी बही सं. 1183, वि.सं. 1832 (1775 ई.), जोधपुर रिकार्ड्स, जोधपुर जिला अभिलेखागार, जोधपुर।
18. नागौर हुकूमत जमाबन्दी बही सं. 1283, वि.सं. 1825 (1768 ई.), जोधपुर रिकार्ड्स, जोधपुर जिला अभिलेखागार, जोधपुर।

आदिवासियों में सामाजिक एवं राजनैतिक जनजाग्रति में मामा बालेश्वर दयाल का योगदान



shodhshree@gmail.com

कान्ति कटारा

शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

शोध सारांश

मामा बालेश्वर दयाल ने आदिवासी बाहुल्य इलाकों में शिक्षा की अलख जगाई। आपने सदियों से शोषित, पीड़ित एवं उपेक्षित आदिवासी भीलों के उत्थान एवं कल्याण को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। मामा बालेश्वर दयाल की छवि कोमल स्वभाव की थी। अपने आप को भीलों के अनुकूल ढाल कर उनकी भाषा सीखी और उनके अनुरूप रहकर भीलों में जनजागरण का अभियान चलाकर उनमें फैली कुरीतियों, नशा खोरी, निरक्षरता व शोषण के विरुद्ध चेतना जगाई। आपके विचार में वह एक शोषक ना बनकर आदिवासी समाज के उत्थान का पोषक बने।

संकेताक्षर : समाज, बालेश्वर, आदिवासी, भील, आश्रम।

मामा बालेश्वर दयाल को मध्यप्रदेश, राजस्थान एवं गुजरात के मिले-जूले भीलांचल में आदिवासी अधिकारों के लिए समर्पित व्यक्ति के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने आदिवासी बाहुल्य इलाकों में शिक्षा की अलख जगाई। मामा बालेश्वर दयाल का जन्म 1905 में उत्तर प्रदेश में हुआ था। किंतु बचपन से ही सेवा भाव एवं देश भक्ति की भावना ने उन्हें अपने जन्म स्थल से कोसों दूर ले जाकर रख दिया। सन् 1930 से 1936 का काल उन्हें एक ऐसे अपरिचित क्षेत्र में खींच लाया जो मध्यप्रदेश का आदिवासी क्षेत्र था। वहां आकर मामा बालेश्वर दयाल ने सदियों से शोषित, पीड़ित एवं उपेक्षित आदिवासी भीलों के उत्थान एवं कल्याण को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे प्रसिद्ध क्रांतिकारी चन्द्र शेखर आजाद के गाँव भाबरा में भीलों के प्रथम दर्शन किए और आजाद की माता से मिले। भाबरा में आजाद की माता ने उन्हें कुछ भील लोगों के बारे में जानकारी दी व उनके गांवों के नाम नोट करवा दिये थे। ताकि मामाजी को उनसे मिलने में आसानी रहे अपने इस पहले भील सम्पर्क के दौरान ही वे थांदला के जैन धर्मदास विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्त हुए थे। अब तक इस विद्यालय में केवल जैन ही पढ़ते थे क्योंकि यह विद्यालय प्रधानतः उन्हीं का था परन्तु झाबुआ रियासत की जनसंख्या में अधिकाधिक संख्या भीलों की थी और इस विद्यालय में एक भी भील बालक अध्ययनरत नहीं था। बस यही वह समय था जहां उन्होंने भीलों को शिक्षित करने का दृढ़ निश्चय किया इस हेतु उन्होंने विद्यालय के संचालक से भील बालकों के प्रवेश के संबंध में निवेदन किया किन्तु संचालक मण्डल से इसकी अनुमति नहीं दी। इसके बावजूद भी मामा बालेश्वर ने हार नहीं मानी और इस संबंध में निरंतर प्रयास करते रहे। अन्ततः उन्हें एक जैन संत एवं मुनि श्री नानचन्द्र जी के सहयोग से भील बालकों का विद्यालय में प्रवेश दिलाने में सफलता मिली। तब मामा बालेश्वर दयाल ने मध्य भारत राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश के आदिवासी अंचल का नक्शा देखा और पाया कि इन्दौर रियासत की पेटलावद तहसील टापूनुमा है यदि इसके इर्द-गिर्द 6 रियासते हैं और इन्दौर राज्य का यहां बामनियां रेलवे स्टेशन यातायात की सुविधा और इन्दौर प्रजामण्डल का झाबुआ संघर्ष में उल्लेखनीय योगदान रहा था। सन् 1937 से भावी जीवन की जन-जागरण यात्रा का केन्द्र मध्यप्रदेश के बामनिया गाँव को बनाया और एक बोहरा सेठ ने पूरी ऊपरी मंजिल अपनी बिना किराये मामाजी को सौंपी और वहां से थांदला विद्यालय के आदिवासी जवानों का आश्रम शुरू किया। इस आश्रम से बामनिया की आर्थिक व्यवस्था का खर्च वहन किया और उन नौजवानों में जो आठ वर्ष पूर्ण खचरोक के **‘भंग-भोज’** में मामाजी के साथी हॉकी खिलाड़ी थे वे बड़े होकर दुकानों के मालिक बन गये थे। आश्रम वासियों के कपड़े भोजन हेतु अनाज के थैले व कपड़े के थान बामनिया

भेजते थे आगे जाकर इसी आश्रम को हिन्दी विश्वविद्यालय प्रयाग ने समूचे मालवा अंचल का केन्द्र घोषित किया। यहां से अनेकों नौजवान बड़ी संख्या से पास हुए और जिनमें कवि श्री नटवर लाल स्नेही राष्ट्र कवि बने। उन्हें इन्दौर, उज्जैन और दिल्ली से राष्ट्रीय सम्मान से पुरस्कृत किया गया था। पौराणिक विषैली व्यवस्था के खिलाफ जवानों के अन्तर्मन का जागरण 'भंग भोजी' खाचरोद का आर्थिक सलाहकार इस आश्रम के निराश्रित, लावारिस और आदिवासियों के सहायक बने।²

मामा बालेश्वर दयाल की छवि कोमल स्वभाव की थी वे लम्बे बाल और दाढ़ी, तेजस्वी भाल, खादी का सादा कुर्ता यह उनकी पहचान थी जो अपने आप को भीलों के अनुकूल ढाल कर उनकी भाषा सीखी और व उनके अनुरूप रहकर भीलों में जनजागरण का अभियान चलाया और उनमें फैली कुरीतियों, नशा खोरी, निरक्षरता व शोषण के विरुद्ध चेतना जगा रहे थे। उन्होंने प्रथम दौर में महावीर विद्याशाला, प्रताप विद्यामंदिर, अहिल्या माता वाचनालय, शिवाजी उद्योग शाला तथा पास पड़ौस के 9 स्थानों में विद्यालय खोले। जहां पर भील बालकों की शिक्षा का प्रबंध किया था। भीलोड़ी भाषा में पहली पोथी और दूसरी पोथी तैयार की व वस्त्र, भोजन तथा पुस्तकों का प्रबन्ध भी होता था। छात्रों की संख्या दिनों दिन बढ़ती रही। बामनिया स्थित छात्रावास में अनाथ बच्चों का पालन-पोषण उनकी धर्म पत्नी ने किया। भील आश्रम बामनिया में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाएँ विधिवत होने लगी। कृषि आदि उद्योगों का साहित्य आने लगा जिसका उपयोग विद्यालय द्वारा किसानों में होता था चेतना साहित्य जैसे भीलनी खडन्ली, पाय नो घुटवों बनाम गरीबी की आग, पंचतर वार्ता आदि की रचनाएँ हुई। शिवाजी उद्योगशाला में चरखा कातना, साबुन बनाना व सुनारी का काम सिखाया और यह संस्थाएँ वन से बनी औषधि वितरण का भी कार्य करती थी।

मामा बालेश्वर दयाल के भील आश्रम बामनिया में उन दिनों 200 छात्र-छात्राएँ रहते थे। लड़के-लड़कियों के लिए अलग-अलग छात्रावास थे। मामाजी का सभी पर कठोर अनुशासन और अंकुश था। सभी प्रातः 4 बजे उठते थे। पहले सभी छात्र उसके बाद सभी छात्राएँ दैनिक क्रिया स्नान से निवृत्त होते थे। उसके बाद सभी सामुहिक रूप में सन्ध्या एवं राष्ट्रगान में सम्मिलित होते थे। छात्रों को लाठी चलाना सिखायी जाती थी।

छात्राओं को व्यायाम कराया जाता था। प्रातः 9 बजे नाश्ते में उबले चने, छाछ और दोपहर में भोजन में मक्का की रोटी-चना, उड़द, मसूर की दाल तथा कड़ी भी बनती थी। मामाजी ने महिलाओं को साक्षर बनाने और आदिवासी महिलाओं के उत्थान का भी बेडा उठाया था। उन्होंने भील आश्रम के अन्तर्गत कन्या आश्रम की स्थापना की थी। आश्रम में रहने वाली लड़कियों के लिए मामाजी सावन में हरी साड़ियां लाते झूला-झुलाते और उत्तर प्रदेश का सावन का गीत मामाजी गाते -

सावन के झूले डरे।

आवोरी बहना झूला झूले।।

मामाजी लड़कियों को पतंग उड़ाना, गिल्ली डण्डा खेलना सिखाते थे। मामाजी ने हकरसिंह झोंसली की पत्नी श्रीमती चतुराबाई को पढ़ाया। यह पहली आदिवासी महिला थी जिसे मामाजी ने पढ़ाया था। इसके बाद कम-से-कम बीस आदिवासी लड़कियां गंगाबाई, पूनी, केसरबाई, वेला, रेशमी आदि को भी मामाजी ने पढ़ाया। रेशमी तो बाद में पंच बनी आश्रम में सामाजिक गतिविधियां भी संचालित होती रहती थी। मामाजी पत्रकार थे उन्होंने पत्रकारिता के माध्यम भीली भाषा में अविस्मरणीय योगदान दिया है। मामाजी चौखम्भाराज (लखनऊ-इंदौर) के सम्पादक रहे। भील आश्रम बामनिया से भीली भाषा में पंचायतीराज, काम की बात और गोवर नाम से अखबार निकाले और इनका सम्पादन और प्रकाशन भी किया। आश्रम में श्री ज्ञान मन्दिर मुद्रालय बामनिया से प्रकाशित होते थे। भीली भाषा में प्रकाशित 'काम की बात' में मामाजी ने लिखा था-जूना साधु संत, एक मंतर दे गया है उसके विद्या के भण्डार की मनभावन एक बात, खरच करे जेतरीज बड़े, बिन खरचे घट जात। मामाजी ने भीली भाषा में 80 कहानियां व रामायण, महाभारत भी लिखी जो प्रकाशित भी हुई जो भीली, वागड़ी, मालवी भाषा का सम्मिश्रण है। साथ ही अपने जीवन स्मरण भी लिखे उन्हीं दिनों सरकार के साक्षरता अभियान की शुरुआत जोर-शोर से शुरू हुई। इस अभियान के सिलसिले में बांसवाड़ा जिला कलेक्टर बामनिया आए और निवेदन किया की आपका प्रभाव बांसवाड़ा क्षेत्र में अधिक है। इस अभियान में हमारी मदद करे। मामाजी अपने भाषण में शिक्षा पर अधिक जोर देते थे "सेवा के मंच पर चढ़ने के लिए साधन नहीं बल्कि संकल्प" की उक्ति को चरितार्थ करते हुए गर्मी के समय में भी दिन में

तीन-चार मीटिंग करते और जनता को शपथ दिलवाते एवं शिक्षा का महत्व बताते थे।³

मामा बालेश्वर दयाल द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में जनजागृति लाने के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों में लगा दिया। उनका कहना था कि संसार की तमाम सभ्यताएँ जब एक दूसरे से दूर-दूर थी तब किसी युग में काम के बंटवारे हुए और वहीं काम-काज एक-एक वर्ग का गुण या स्वभाव बन गया। आज तो संसार की तमाम सभ्यताएँ और जनपद वैज्ञानिक विकास में एक दूसरे के करीब आ गये हैं। अपने देश में भी वोट प्रणाली में संयुक्त उत्तरदायित्व की सभ्यता का संदेश घर-घर पहुंचाया है। इसे सफल करने के लिए गुण, कर्म और स्वभाव का संयुक्त स्वरूप भी विकसित होना अनिवार्य है। हिन्दुओं और मुसलमानों में भी जन्मजात कोई भेद नहीं है। वर्ग विभाजन व्यवस्था में एक में ज्ञान और विद्या का अतिरिक्त गुण रहा तो दूसरे में शूरवीरता का तीसरे में राजकाज और व्यापार की कुशलता और चौथा सिर्फ कर्मयोगी बनकर रह गया। बाद में जाकर यह वर्ग कलम और कर्म की प्रधानता में बंट गये। उत्तरोत्तर विकास में कलम और कर्म की सामाजिक व्यवस्था ने छुटाई बड़ाई कायम हो गयी। वोट की समानता के युग में इन दोनों का संघर्ष स्वभाविक ही था जिसके निश्चित प्रतिकूल नतीजे होंगे। बजाय विकास के विनाश होगा क्योंकि विचार व कर्म दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। विचार विहीन कर्म नतीजे में निष्फल रहेगा और कर्म विहीन विचार पंगु या बांझ रह जायेगा। आज के युग धर्म को समझकर कर्म और विचार को समान पटरियों पर दौड़ाना लाजिमी है और वह तभी होगा जब गुण कर्म स्वभाव के बंटवारे का दायरा वैज्ञानिक क्रम से गठित हो ज्ञान, कर्म, कुशलता या शूरवीरता की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति का समान अवसर सब के लिए खुला कर दिया जाए। भारत की मौजूदा व्यवस्था में संविधान को बनाने वाला सबसे बड़ा पंडित आखिरकर डॉ. भीमराव अम्बेडकर ही थे।⁴

मामा बालेश्वर दयाल ने आदिवासियों को अपने वर्ग का ही सार्वजनिक कार्यकर्ता बनाया जिससे शिक्षित हो वह अपने स्वदेशी संस्कार लेकर बाह्य प्रलोभन का शिकार ना बन सकें। वह एक शोषक ना बनकर आदिवासी उत्थान का पोषक बने। हमें तो वह संख्या बतायी जावे की शिक्षा प्राप्त करके कितने भील बालकों ने भीलों के बीच रहने का सुधार करने का संकल्प

लिया तथा भील सेवा का मिशन लेकर बैठे हैं और कहां-कहां शिक्षा का इनका यह दृष्टिकोण मौलिक एवं सराहनीय था। जिसे गांधीजी ने गद्गद् होकर सराहा था। काश इस व्यापक दृष्टिकोण का प्रसार यदि देश में हुआ होता तो आज शिक्षा जगत की वर्तमान दुर्गति देखने को न मिलती। गौरे शासकों के स्थान पर काले शासकों का कालिमामय प्रशासन और शोषण का शिकार देश न हुआ होता तथा जनता के बीच गांधी का सच्चा जनसेवक विकास कार्य में सलंगन दिखाई पड़ता। अपने देश में अपना सुराज्य की मानवीय कल्पना सिद्ध हुई होती। गांधी का देश राम राज्य दिखाई देता। बालेश्वर दयाल का विचार था कि शिक्षा जैसे सबल माध्यम द्वारा भी ऐसे शिक्षक और शिक्षार्थी तैयार किए जाने चाहिये जो पुरातनवादी समाज को सुधार कर नवीन मार्ग पर ला सके और लोक सेवी बनकर अग्रिम समाज का निर्माण करे तथा साम्राज्यवादी शोषक मण्डली के प्रशासक बनने से बच सके जिससे गुलामी का जड़ से निराकरण हो सके और शिक्षा द्वारा प्राप्त ज्ञान समाज के नव निर्माण में सलग्न हो। नई पीढ़ी बनकर उभरे विदेशी शासन द्वारा तैयार किए गए प्रशासन में जुड़े युवाजन को मन से संस्कार से विदेशी बनकर रहेंगे और हुआ भी वैसा ही।⁵

1937 से झाबुआ जिले के बामनिया में बालेश्वर दयाल ने अपनी कर्मभूमि बनाकर भील आश्रम शुरू किया। जहां से हिन्दी विश्वविद्यालय प्रयाग के माध्यम से मालवा अंचल के शिक्षण कार्य को आगे बढ़ाया और कई आदिवासी लड़के-लड़कियों को समाज व देश के नेतृत्व के लिए तैयार किया। ये तैयार किए गए 6 छात्र संसद सदस्य बने एवं 18 छात्र-छात्राएँ विधायक बने जिन्होंने प्रदेश व देश में आदिवासियों व पिछड़ों का नेतृत्व किया जिनमें प्रमुख रूप से पूर्व सांसद स्व. भागीरथ भंवर, रायसिंह राही, फतेहसिंह डामोर, वर्तमान कांग्रेस लिडर श्रीमती जमुना देवी, दिलीप सिंह भूरिया आदि हैं। कान्तिलाल भूरिया व महेश जोशी भी मामाजी को अपना गुरु मानते हैं। मामाजी का प्रभाव क्षेत्र गुजरात में गोदरा एवं दाहोद जिले में रहा इसी तरह राजस्थान में मामाजी के नाम से बांसवाडा, डूंगरपुर से भी हीराभाई संसद सदस्य बने। मध्य प्रदेश में झाबुआ, रतलाम, धार, बड़वानी, इंदौर आदि इनके प्रभाव क्षेत्र रहे। मामाजी सेवा कार्य में क्रांति के पुंज थे। इतने सहज, सरल की उनकी वाणी जिससे संवाद कहे या भाषण जनता को सीधे-सीधे संप्रेषित होती थी।

अभिभावको और महत्वाकांक्षी पिताओं से वे कहते थे “बच्चों के लिए खांचे मत बनाओ उनको अपना स्वभाविक विकास करने दो।” उनका कहना था कि शिक्षा का अर्थ है कि जीवन के सभी पहलुओं की जानकारी जिसमें प्रकृति की जानकारी, ज्ञान और कर्म का समन्वय तथा समाज में व्यक्तित्व की शक्ति और व्यक्ति सामाजिकता का अहसास ऐसा आचरण हो जो शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन हो अपनी भाषा में तकनीकी, वैज्ञानिक शिक्षण शोध अभिमुख छवि का प्रधान्य हो। ज्ञान और श्रम परिणाम स्वरूप नाना प्रकार के उद्योगों में छोटी इकाई वाली मशीनें बाजार में आ सके, रोजगार के अवसर बढ़े, हर हाथ को काम मिले, विकेन्द्रीकरण का फैलाव हो और ग्रामीण विकास सादा जा सके सरकारी व प्राईवेट शिक्षण संस्थाओं का भेद समाप्त हो, प्रशिक्षण प्रशासन तथा सार्वजनिक जीवन से विदेशी भाषा अंग्रेजी सर्वस्व तत्काल समाप्त होना चाहिए। जिससे सार्वजनिक जीवन से चिंता का भाव विदा हो जाए। टेलीप्रिन्टर सेवा में राष्ट्रीय भाषा हिंदी का प्रयोग हो सर्वोच्च सेवाओं में भी अंग्रेजी भाषा ज्ञान बाधक न बने शिक्षा का अर्थ और कर्म का योग है।⁶

इस प्रकार आदिवासियों में सामाजिक एवं राजनैतिक जनजाग्रति में मामा बालेश्वर के अमूल्य योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। आपके द्वारा किये गये कार्य भावी पीढ़ी के लिये सदैव प्रेरणा के स्रोत रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. रमेश चन्द्र वडेरा :- मामा बालेश्वर दयाल, मामाजी, इंडोग्लोबल सोशियल सर्विस सोसायटी उदयपुर (राज.) 2006 पृष्ठ सं. 2,221
2. अर्जुन देथा :- जवानी में जीवन के सपने, समता प्रकाशन शास्त्री सर्कल उदयपुर 1997 पृष्ठ सं. 16
3. डॉ. सुनीलम, कांति कुमार वैद्य :- समाजवादी क्रान्ति के प्रणेता, जनजागरण प्रिंटिंग प्रेस थांदला म.प्र. 2006 पृष्ठ सं. 32,41
4. जीवन मण्डलेचा :- आदिवासियों के मसीहा, लोक संवाद प्रकाशन, इंदौर 2015 पृष्ठ सं. 55
5. तपन भट्टाचार्य :- सामाजिक महर्षि, मामा बालेश्वर दयाल, सामाजिक विकास केन्द्र एवं शोध संस्थान, झाबुआ म.प्र. 2006 पृष्ठ सं. 43
6. डॉ. सुनीलम, कांति कुमार वैद्य :- क्रांति 2007 स्मारिका भील आश्रम बामनिया म.प्र. 2007 पृष्ठ सं. 14,50

स्वावलंबी परम्परा बनाम आधुनिक भारत: सततता से मृगतृष्णा की ओर

डॉ. अनुज कुमार मिश्रा

सहायक आचार्य, पी. पी. एन. पी. जी. कॉलेज, कानपुर (उत्तरप्रदेश)



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

आज हम लोग जिस संकट से जूझ रहे हैं, उसके लिए सिवाय सूझ बूझ के कोई मानवीय समाधान विज्ञान ने प्रस्तुत नहीं किया। सर्वोत्तम समाधान मात्र जीवन शैली नियंत्रण के रूप में अभी तक बताया गया, जो कि सत्य है। आधुनिक विज्ञान से वैक्सीन बनेगी जरूर, परन्तु जो वैक्सीन बनेगी उसके क्या प्रति-परिणाम होंगे, उससे कितने नए संकटों का और जन्म हो सकता है, यह बहुत गंभीर चिंता का विषय है। उपचार की अपनी सीमाएँ हैं, आज शायद हम नहीं समझते। हमारे पूर्वजों ने इसलिए वह चाहे भारत, चीन यूनान कहीं के भी हों, उन्होंने स्वावलंबी ग्रामीण जीवन की प्रशंसा की है। आधुनिक भारत तक विस्तारित ग्रामीण जीवन के प्राकृतिक आनंद को किसका अवचेतन महसूस ही करता है? यह केवल भारत ही नहीं यूनानी नगर राज्यों की आदर्श जीवन व्यवस्था, शूमाकर के 'स्माल इज ब्यूटीफुल' की प्राचीन अभिव्यक्ति भी है। चीनी ताओ और कन्फ्यूसियस चिंतन की सीख भी यही चीख चीख कर कहती रही, संतोष में ही सुख है, वर्तमान में गांधी, विनोबा, जयप्रकाश नारायण की धारा के प्रबल चिंतक धर्मपाल ने स्थानीयता की इस शाश्वत कल्याणकारी क्षमता के प्रकटन हेतु एक महान ग्रंथ लिखा। पूरे संदर्भ के निर्वचन में यह तर्कतः सिद्ध होता है कि भविष्य की आशावादिता इस पर आधारित है कि प्रथम, जीवन में बढ़ता हुआ संतोष और घटती हुई जरूरतें, सुख का मूल हैं, द्वितीय, स्थानीयता का नियम शाश्वत है इसका कोई साइड इफेक्ट नहीं, प्रश्नांकित है वैश्वीकरण और उसके मिथक। तृतीय औषधि रूपी मानवीय बुद्धि को कम से कम ईश्वर की सत्ता को चुनौती देने का स्वांग नहीं रचना चाहिए। चतुर्थ, सरकारों को अब फिर से ग्रामीण जीवन और स्वावलंबन को सुदृढ़ करने में सहायक बनना चाहिए। विकेंद्रीकरण की यह प्रक्रिया बहुमुखी धरातल पर अपनाती होगी, केंद्रित बुद्धि पर अतिविश्वास न केवल आपदाओं को जन्म देता है बल्कि शोषण और अधिनायकत्व को भी बलवान बनाता है। प्रतिदिन से जीवनपर्यंत विकेंद्रीकरण का पालन और उस संस्कृति के विकास का प्रयास हो।

संकेताक्षर : कोरोना, वैश्वीकरण, आधुनिकता, स्थानीयता, भारतीय।

परंपरा से मेरा सीधा और पहला निहितार्थ ग्रामीण संस्कृति से है ग्रामीण संस्कृति में प्रायः वस्तुओं की बहुलता का अभाव पाया जाता है, इसलिए वस्तुओं के संरक्षण की प्रवृत्ति प्रमुखतः पायी जाती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संस्कृति समूह के मान-मूल्य हैं और इसे मानवीय विशेषता माना जाता है, जिसके अंतर्गत भाषा, परंपरा, नियम, रीतिरिवाज की समग्र विशेषताएँ आ जाती हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर' जी संस्कृति को जीवन का एक तरीका मानते हैं उनके अनुसार यह तरीका जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं²। उपरोक्त दोनों परिभाषाएँ संस्कृति की एक अनवरतता को इंगित करती हैं स्पष्टतः ऐसी अनवरतता ग्रामीण संस्कृति का ही अंग है, क्योंकि शहर तो बदलाव की बहार का दूसरा नाम है, यह बदलाव शहरों के उपभोग मानकों के बढ़ते स्तर के भी सूचक है, इसलिए सुधार के बजाय बदलाव शहरों का मूल स्वभाव हो जाता है। 'वैश्विकता' शब्द मूलतः वैश्वीकरण या तेजीकरण या प्रवाहीकरण का सूचक है, इसका सीधा और पहला निहितार्थ शहरीकरण से है। ऐसा परिभाषित किया विद्वानों ने कि इसमें 'समय और स्थान'³ मायने नहीं रखते हैं, यह शहरी सोच पर अवलंबित है, यह 'दुनिया का दबाव और दुनिया की चेतना के तीव्रीकरण दोनों से संयुक्त रूप से सम्बंधित है'⁴ इसके प्रथम चरण में सामान्यतः ग्रामीण संस्कृति के प्रति हीन या हिकारत की भावना पायी जाती है। यांत्रिकता इसके केंद्र में है। अति-उपभोग, व्यक्तिवादिता और विशेषीकरण इसके पर्यायवाची हैं। इसलिए सामान्यतः परंपरा के प्रति इसका

दृष्टिकोण एक ओर विद्रोही तथा दूसरी ओर उपयोगितावादी है। कोरोना संकट के कारण ही आज हम सभी 'वेबिनार' कर रहे हैं। कोरोना संकट ने आधुनिक सभ्यता को जिसे गाँधीजी 'शैतानी सभ्यता'⁵ कहते थे पर भय का पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया, मनुष्य के सर्वश्रेष्ठ होने के आत्मघोष करने के बाद पहली बार जहाँ कहीं भी आधुनिकता का अतिविस्तार हुआ था उस पर एक वायरस का नियंत्रण लागू हुआ। सारा मानवीय विज्ञान धरा रह गया, सुरक्षा के सारे एटमी प्रपंच धरे के धरे रह गये, सर्वश्रेष्ठ महाशक्ति और अन्य पिछलग्गू महाशक्तियाँ निरीह होकर परमसत्ता की ओर देखने पर मजबूर हुई, शायद पहली बार यूरोप और अमेरिका भयभीत दिखे, हमेशा जब अन्य राष्ट्र तबाही में कराहते थे तब यह अपने व्यापार रूपी परोपकार का ढिंढोरा पीटते थे, अब प्रकृति से विवश हुए, पिछले 200 साल में प्रकृति पर जितना अत्याचार उपभोगवादी मनुष्य⁶ और उसके साम्राज्यतंत्र ने किया है यह उसी का परिणाम है, मानवीय 'लालच और हवस' को हम भुगत रहे हैं। वास्तव में यह वैश्विकता द्वारा स्वयं सहित सर्वनाश का घटक संकट है। इसने वैश्विकता के सभी प्रतिष्ठानों पर तो प्रतिबन्ध लगाया ही, साथ ही आध्यात्मिक श्रद्धा को भी तालाबंद कर दिया। आज के इस घनघोर संकट में वह ऋषि महर्षि पुनः स्मरण हो रहे हैं जिन्हें यूरोप ने 9वीं सदी से ही अछूत समझकर उनकी ओर देखना बंद किया और भारत ने राम मोहन राय के बाद। क्योंकि यह "ऋषि महर्षि"⁷ मानवीय लिप्सा पर नियंत्रण लगाने की मांग करते हैं। पश्चिम में प्लेटो, अरस्तू, एक्विनास, और आधुनिक समय में बर्क, रेने गेने, आनंद कुमारस्वामी, फ्रिट्ज शुआन, सैय्यद हुसैन नस्र, रस्किन, ए जे पेंटी, विलियम मोरिस, जॉर्ज बर्डवुड, लियो टॉलस्टॉय जैसे चिन्तक इस दिशा में अवगत कराते हैं। भारत तो इस संयम और नियंत्रण की प्राणभूमि ही रहा है। भारत की सम्पूर्ण हिन्दू आध्यात्मिक परंपरा (जैन, बौद्ध सहित) अतिविकास को अनर्थकारी मानता है। 20वीं सदी जब से दुनिया भर में आधुनिक विकास की बाढ़ आई तथा गाँवों को उजाड़कर शहरों को प्राथमिकता देने का चलन बढ़ा भारत में इसका तीव्र विरोध हुआ। आजादी पूर्व महात्मा गाँधी का सम्पूर्ण जीवन और चिंतन इस आधुनिकता के अनिष्ट की चेतावनी देता रहा, गाँधी के बाद के गाँधीवादी जैसे जे सी कुमारप्पा, विनोबा भावे, जय प्रकाश नारायण, आचार्य राममूर्ति, नारायण देसाई, सुन्दरलाल बहुगुणा, ठाकुरदास बंग और धर्मपाल जैसे चिंतकों ने 'स्माल इज ब्यूटीफुल', 'गॉड इज ग्रेट', 'प्रेम सहयोग प्रतिस्पर्धा से अधिक महत्वपूर्ण

है' पर आधारित ग्रामीण जीवन और चिंतन शैली पर बहुत जोर दिया। आज मजबूरी में ही भले सही, लोगों के समर्थन ने इन चिंतकों के चिंतन को सार्थक कर दिया तथा भविष्य के लक्ष्य और साधन के बार में जीवन्त चेतावनी भी दी है। कोरोना वायरस के कारण आज दुनियाँ की सबसे बड़ी महाशक्ति अमेरिका में मृत्यु का ताण्डव हो रहा है, इटली, चीन, रूस, भारत, जापान, स्पेन, फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी, तुर्की, ईरान, अरब जगत सहित सर्वत्र मृत्यु के भय से त्राहि-त्राहि मची है। दुर्भाग्य यह है कोई उसके मूल में जाने को न तो तैयार है न ही उस दिशा में सोचना चाहता है। पिछले 200 साल की सभ्यता आज एक वायरस की वजह से कैद में है, इस कैद का जन्म अतिशय उपभोग और प्रकृति के गुह्यतम में हुए मानवीय हस्तक्षेप में छिपा है। प्राणी जगत के जीनों की उलटफेर अब भी जारी है, वास्तव में यह नवीन आपदाओं के आमंत्रण के कारण बनेंगे। अभी ग्लोबल वार्मिंग बढ़ेगी और ग्लेशियरों की बर्फ पिघलेगी तो क्या इससे लाखों वर्षों से बर्फ की चादर में कैद दानवीय विषाणु और उत्पन्न नहीं होंगे? मेनचेस्टर और हारवर्ड के "महायंत्रप्रवर्तक" अपनी जुगत दिखाने के लिए प्रयासरत हैं, अर्थात् अभी प्रकृति विनाश जारी रहेगा, परमाणु शक्ति के संकट बने रहेंगे, गरीब राष्ट्रों का शोषण जारी रहेगा, परम्परागत और संतोषी व्यवस्थाओं को आक्रामक बनाने के लिए हथियार उद्योगों को डिफेंस एक्सपो के माध्यम विस्तारित किया जाता रहेगा। समर्थ गाँव के बजाय स्मार्ट सिटी की बदहवास हरसत अभी जारी रहेगी, पुनरावृत्ति में किसानों को मजदूर बनाना, मजदूरों को देश एवं विदेश में नारकीय जीवन के लिए अभिशप्त करना जारी रहेगा। चिन्हित करें कि इस अवस्था की पैदाइश के लिए जिम्मेदार कौन है? मनुष्य का लालच या ईश्वर, भोगवाद या अध्यात्म, मनुष्य पर मनुष्य द्वारा प्रयोग किया जाने वाला शक्तिवाद या धार्मिक संयम, अति-उद्योगवाद या आवश्यकता हेतु चलने वाले लघु, कुटीर उद्योग और परम्परागत शिल्प कौन विनाश कर रहा खुद तय करें? यदि अभी भी अहंकारवश इन विचारों को अव्यावहारिक मानने से नहीं बचे, तो कलिकाल के भयानक दंड के लिए तैयार रहें। आधुनिक मानव-जनित शक्ति कितनी बेबस है- यूरोप, चीन और अमेरिका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। सावधानी से समझें! याद रखें, धृतराष्ट्र और दुर्योधन की महत्वाकांक्षा, रावण और हिरण्यकश्यप का शक्ति अहंकार, भस्मासुर का अति-विश्वास, अशोक से प्रारम्भ पलायनवाद की कीमत भारत ने कितनी चुकाई है। कहाँ गए वह अतिवादी साम्राज्य जिनका सूरज कभी नहीं डूबता था।

वह चाहे पुर्तगाली हो, अब्बासी, फ्रेंच, युआन, विंग, उमय्याद, स्पेनिश, रूसी, मंगोली या ब्रिटिश साम्राज्य क्यों न हों। इसलिए उपरोक्त तथ्यों पर बहुत गहनता से मानवजाति को विचार करना होगा, अपने विचार और व्यवहार दोनों में। यह न तो सनसनीखेज है, न ही इसका उद्देश्य उत्तेजना उत्पन्न करना है, भयावहता जिसका आप सभी ने मानसिक अनुभव किया, उनकी पीड़ा भी समझें जिन्होंने पूरे परिवार खो दिए, यह व्यक्तिगत से अधिक परिवेशजन्य, सभ्यताजन्य प्रश्न है। सामान्यतः सभी समाजों में मानवीय आदर्श रूप में एक ऐसी व्यवस्था की कामना की जाती है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के समस्त मंगल निहित हो और किसी को किसी प्रकार का कष्ट न हो। यह “आदर्श” परम्परावादी समाजों में भी पाया जाता है और आधुनिक भौतिकवादी समाज भी इसकी कल्पना करते हैं। दोनों में मूल भेद मनुष्य पर आरोपित की जाने वाली सीमाओं, वर्जनाओं और अधिकारिता को लेकर है। पारम्परिक समाज में आदर्श व्यवस्था का रूप ‘दैहिकदैविक भौतिक तापा। राम राज नहीं काहुँह व्यापा’⁸ ॥ साथ ही यह आदर्श इस अनुशासन पर आधारित थे कि ‘सब नर करहँ परस्पर प्रीती। चलहँ स्वधर्म निरत श्रुति नीति’⁹ ॥ वहीं भौतिकवादी व्यवस्था में व्यक्ति आचरण और स्वच्छंदता में इस स्तर तक आगे बढ़ गया कि वह स्वयं को ही नियंता मानने लग गया। इस चरम उत्कर्ष से चरम अपकर्ष के मध्य की समूची मानव-यात्रा को अनेकों पड़ाव प्राप्त करने हैं, चतुर्युग के चक्रीय सिद्धान्त में यह व्याख्यायित है। यह दो बीज शब्द ‘भौतिक या लौकिक’ और ‘आध्यात्मिक’ मानवीय विकास की दो भिन्न स्थितियों (जड़ और चेतन) की द्योतक रही है। इनकी समानांतर धाराएँ सदैव साथ-साथ चलती रही और जब तक आध्यात्मिक सत्ता ने लौकिक शक्ति पर नियंत्रण बनाए रखा तब तक मानव और सम्पूर्ण चराचर प्रकृति के मध्य एक संतुलन बना रहा¹⁰। परन्तु जब से लौकिक शक्ति और सत्ता अर्थात् आधुनिक शब्दावली में ‘संप्रभुता’ का अर्थ ग्रहण कर लिया तब से अंध भौतिकता और प्रकृति विनाश के साथ-साथ स्थूल और सूक्ष्म दोनों धरातल पर क्षुद्र और क्षत्र मानवीय सुखों की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण मानवीय शक्ति क्षमता का प्रयोग किया जाने लगा। दुर्भाग्य यह रहा कि इस पूरे घटनाक्रम में संचालकशक्ति की कमान हमेशा ऐसे लोगों के हाथ में रही जिन्होंने स्वयं के स्वार्थाभिमान या इतिहास में स्वयं के स्थान या मानवीय मुक्ति की दिग्भ्रमित समझ के आधार पर दीर्घकालिक निर्णयों को प्रतिपादित करने की शक्ति का प्रयोग किया। इसके लिए समय-समय

पर इतिहास में अनेक विचारधाराओं की निष्पत्ति हुई। जिन्होंने सामन्तवाद, साम्राज्यवाद, तर्कबुद्धिवाद, धर्मनिरपेक्षवाद, उदारवाद, पूँजीवाद, समाजवाद, निरीश्वरवाद, मार्क्सवाद, आदर्शवाद, विज्ञानवाद, व्यवहारवाद तथा उत्तर-आधुनिक विश्व ने जिन विखंडन और पहचान के नए मुद्दों को उठाया उन्होंने आधुनिक भौतिक सभ्यता को और परिष्कृत हथियारों और तर्कों (नारीवाद, पर्यावरणवाद, शांतिवाद, बहुसंस्कृतिवाद, सर्व लोकतंत्रवाद) के द्वारा चरम भोगवाद और भ्रामक उपचार की दिशा में धकेला है। इन उहापोहों में सहज मानव की प्रकृति लुप्त होने के कगार पर है। ईश्वर ही बचाए। आज प्रकृति का स्वास्थ्य सुधर रहा है, मनुष्य के अतिरिक्त आज कोई संकट में नहीं है। आज यह साबित हो रहा है कि अदूरदर्शी मानवीय क्रियाकलाप स्वयं मनुष्य के लिए खतरा है। इसलिए मनुष्य की नियति के लिए उसकी नियत पर नियंत्रण आवश्यक है। आज प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र के लिए यह निर्धारित करना आवश्यक हो गया है कि उससे कहाँ किसकी और कितनी आवश्यकता है ? राजनीतिक ताकत के दुरुपयोग अर्थव्यवस्था मात्र को एकमात्र विकास का मानक मानने से भयंकर परिणाम उत्पन्न होते हैं। लोकतन्त्रों में राजनीतिक दुरुपयोग की बाढ़ सी आ गयी है, मीडिया और प्रचारतंत्र से सही सूचना की आशा ख्याल बनती जा रही है, चतुर्दिक झूठ का तंत्र काम कर रहा है, सरकारों के समर्थक तथा विरोधी दोनों झूठ प्रचारित करने के माध्यम बनते जा रहे हैं। राजनीति के मूल्यों में व्यक्तिगत शुचिता एवं आदर्श के तत्वों के स्थान पर अधिनायकवादी प्रवृत्तियाँ तेजी के साथ बढ़ती जा रही है, जिसे ‘पोस्ट ट्रथ’ कहकर सिद्धांत गढा जा रहा है वास्तव में यह नेतृत्व का पतन है, और राष्ट्रों की अस्मिता पर धब्बा है।

परम्परा विनाश और आधुनिक सभ्यता की विवेचना - यूरोप में नवीन विज्ञान एवं तकनीकी के प्रसार के द्वारा पूरी दुनिया में राजनीतिक और सैनिक वर्चस्व की स्थापना के द्वारा बहुत अपनी प्रतिष्ठा स्थापित की, ऐसी बहुतां की मान्यता है। यहाँ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि केवल आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता ने ही मानव को वह सब कुछ करने की खुली छूट दी, जो वह कर सकता है और इसके परिणाम हम सबके सामने हैं। मनुष्य के लालच और विकास पर सीमायें प्राचीन यूनानी प्लेटो और ऐरिस्टॉटल भी लगाता है और मनुस्मृति भी महायंत्रों को विनाशक मानती है। शक्तियाँ सदैव से रही, परन्तु उन्हें प्रकट न करने का संकोच मानव-सभ्यता के हित में माना गया। इस

मर्यादा को न मानने के कारण महाशक्तियंत्रों के चरम विकास ने अब प्रतिक्रम में विनाश का मार्ग उत्पन्न कर दिया। भोग की पराकाष्ठा को अब प्रकृति सहन करने को तैयार नहीं है और मनुष्य की यह नासमझी कि वह भौतिक बल की प्रतिष्ठा मात्र से सुरक्षा प्राप्त कर सकता है, कोरोना संकट ने यह यह भ्रम तोड़ा है, परन्तु अहंकार अभी नहीं टूटा है। पश्चिमी जगत का यह अहंकार पिछली कुछ शताब्दियों का परिणाम है। भौतिक बल की प्रतिष्ठा के द्वारा यूरोपीय अनुभव और मानकों पर दुनिया के इतिहास, भूगोल, संस्कृति सभ्यता को बदलने का प्रयास और उसे मानकीकृत करने के लिए “वैचारिक” एवं संस्थात्मक भौतिक बल की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति और अहं को प्राप्त करने के बाद भी यूरोप और अमेरिका को अपने भोग से संतुष्ट नहीं किया जा सका। अब इन्होंने अपनी भौतिक मान्यताओं के आधार पर पूरे विश्व को अपनी ताकत के प्रभाव और दबाव से एकरस बनाने का कार्य किया। प्रारम्भ में ये मान्यताएँ “सभ्यता मिशन” के रूप में आयी, परन्तु बाद में वैश्विक जीवन के एक बड़े भाग को परिवर्तित करती चली गयीं। इसलिए इनका प्रारम्भिक रूप जहाँ टकराव था जैसा कि सुन्दरलाल ने लिखा कि, “वास्तव में, भारत और इंग्लिस्तान का सम्पर्क दो अलग-अलग सभ्यताओं और अलग-अलग आदर्शों का एक-दूसरे से टकराना था।”¹¹ वहीं बाद में इसे यूरोपीय शिक्षा, जीवन-पद्धति और धार्मिक विन्यास के प्रारूप से परिवर्तित करने का प्रयास किया। यूरोप ने स्व-प्रधानता के अलावा कभी कुछ स्वीकार करने का साहस नहीं दिखाया चर्चित अफ्रीकी राजनीतिशास्त्री अचील मबेंबे के शब्दों में, (यूरोप की आधुनिक दार्शनिक परम्पराओं में से) हीगलपंथी हो या हीगल के बाद के लोग, या वेबरपंथी, दुनिया बदलने वाले दार्शनिक हों, या नीत्से तथा हाइडेगर से प्रेरणा लेकर सब कुछ को विखंडित करने को तत्पर दार्शनिक, बात जब पश्चिम और गैर पश्चिमी समाजों के बीच फर्क की हो, तब निर्णायक प्रश्नों पर ये सब एक ही तरह सोचते हैं। सबकी मान्यता है कि पश्चिम में व्यक्ति-सत्ता ने धीरे-धीरे स्वयं को परम्पराओं से मुक्त कर लिया है। इन मुक्त व्यक्तियों ने लोक-व्यवहार के नियमों को तर्कसंगत ढंग से परिभाषित तथा अर्जित करने की क्षमता और उनका स्वतंत्र रूप से व्यवहार करने वाली वैयक्तिक, तार्किक इच्छा-शक्ति अर्जित कर ली है। कोई कम तो कोई ज्यादा, लेकिन आधुनिक यूरोपीय दार्शनिक परम्परायें यह भी सर्वसम्मति से ही मानती हैं कि पश्चिमी की तुलना में अन्य समाज आदिम, सरल या पारम्परिक हैं। इन पारम्परिक

समाजों में वैयक्तिक व्यवहार पर परम्परा का बोझ लदा रहता है। विकल्पों में से चुना कौन-सा जाएगा, या गोया पहले से ही तय होता है। पारम्परिक (अर्थात् गैर-यूरोपीय) समाजों में लोक व्यवहार के नियमों के निर्धारण में सार्वजनिक बौद्धिक विमर्श की कोई भूमिका नहीं होती। क्योंकि वाद-विवाद-संवाद के जरिए ऐसे नियमों का निर्धारण करने की प्रक्रिया का अविष्कार ही आधुनिक यूरोप ने किया है।¹² इसी तथ्य को लोहियाजी ने उदभासित करते हुए लिखा कि, “अर्थशास्त्र में एडम स्मिथ और उनके बाद के विद्वानों ने तर्कों का एक भयानक व विशाल ढाँचा खड़ा करके इस अस्वस्थ विकास को जीवित रखा। राजनीति में यह विश्वास प्रतिनिधि लोकतंत्र और बेन्थम तथा मिल्स की कृतियों से जीवित रहा। समाजशास्त्र में यह विश्वास किया जाता था कि मनुष्य पहले से क़बायली, आस्तिक और तत्वज्ञानात्मक आधारों से होकर, आधुनिक नैश्चित्यवाद तक काम्ते और स्पेन्सर में प्रतिबिम्बित विश्वास तक पहुँचा है। जर्मनी ने इस विश्वास की इस भावना से कठिन क्षेत्रों में ले जाकर दर्शन को, विशेषकर ऐतिहासिक दर्शन को, एक विशाल ढाँचा प्रदान किया। हेगल और फिश्टे ने अपने अपने ढंग से मनुष्य की एक के बाद एक आने वाली संस्थाओं में मूर्त, जिनमें राज्य सर्वश्रेष्ठ है, इतिहास की आत्मा के निरन्तर उत्थान से स्वर्ग को पृथ्वी पर उतार दिया।”¹³ भौतिकवादी मानव की शक्ति और मान्यताओं पर आश्रित निरपेक्ष चिंतन ईश्वर और ईश्वरीय नैतिक विधान से दूर यांत्रिक विधान के भरोसे खड़ा किया गया, परन्तु क्या ईश्वरीय प्रकोप से ‘मानव-रक्षा’ मानव द्वारा सम्भव है ?

बची-खुची सभ्यताओं की आत्मशक्ति के अंशों का विकासवाद एवं प्रतिस्पर्धावाद के नाम पर राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उपनिवेशीकरण द्वारा विनाश-विकास का स्वरूप जिसे “आधुनिक विकास” कहा जाता है वह मात्र भौतिक विकास है। इसे एक महत्वपूर्ण गांधीयन ने कुछ ऐसे व्यक्त किया, “an 'Anglo-Saxon' concept which has been applied towards the economic progress of the poor countries in an attempt to ‘save them’ from destruction and make them civilized like the 'developed' countries. Hence, “Fundamentally, development implies the replacement of general competence and abundant subsistence activities by the use and consumption of commodities. Development implies the monopoly of wage laborer over all other work. Furthermore, “

....(it) is a process of societal transformation from a traditional society to a Modern Society, and such a transformation from a traditional society to a Modern Society, and such a transformation is known as modernization. The idea of 'development' carries with it a sense of reaching an economic utopia, where all human wants will be fulfilled, and humans will be happily ever after. Central to this thinking are the notion of the wants, large production, consumerism, and the accumulation of wealth. However as many experts tell us, “.... development activities have tended to create avenues for excessive consumerism of some against the continued deprivation of many others”¹⁴ विकास का यह स्वरूप एवं प्रकार जो कि आज लगभग दुनिया भर में प्रचलित है और जिसकी ओर लगभग प्रत्येक देश गतिमान है आज पूरी दुनिया के प्राकृतिक संसाधनों के लिए तथा मानवीय गरिमा और सुरक्षा के लिए खतरा बन गया है। ऐल्विन टौफ्लर ने अपनी ‘फ्यूचर शॉक’¹⁵ थीसिस के माध्यम से इसकी गहन समीक्षा की है। आधुनिक औद्योगीकरण ने अपने वृहत् उत्पादन के माध्यम से मानव प्रकृति की भोगवृत्ति में आमूल परिवर्तन उत्पन्न कर दिया है, इसी भोगवृत्ति के कारण बड़े पैमाने पर सैन्यवाद और आधिपत्य के सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का पुनः विस्तारवाद प्रकट होता दिख रहा है। आज अमेरिका और चीन अपने विस्तारवाद के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार है। कोरोना की “शडयंत्र सैद्धांतिकी” भी इस ओर इशारा कर रही है। एम.वी. नायडू लिखते हैं कि, “The economics of mass industrialization needs large production, sophisticated technology, colonies to sell the goods, corruption mentality, indoctrination of masses through media control and various forms of monopolies. The end results is that it produces a culture of militarism and a culture of imperialism.”¹⁶ इसलिए जैसा कि इतिहाससिद्ध प्रमाणों से पुष्ट हुआ कि आधिपत्य की धारा में इसने विनाश को अंतिम परिणाम में उत्पन्न किया है। “The end result of science, and industry and technology is war”¹⁷ क्योंकि आज विज्ञान और तकनीक ने अपने स्वरूप से मानवीय कमजोरियों पर पूर्ण आधिपत्य जैसा स्थापित कर लिया है। रजनी कोठारी लिखते हैं कि “when science became an instrument for technology it ceased to be liberating force. Today, “Technology

has become Frankenstein”¹⁸ दैवीकरण के इस रूप में मानवीय जीवन की गुणवत्ता खोजने का प्रयास व्यर्थ होगा। न ही इसमें अनासक्ति, वैराग्य और अपरिग्रह के किसी आदर्श समाज का कोई स्थान शेष है। वह चाहे पूँजीवादी व्यवस्था हो या साम्यवादी दोनों भोगपरक होने के कारण अंततः शोषणपरक ही है।¹⁹ इनसे हारकर और इनकी असफलता को समझकर प्रधानमंत्री नेहरू ने अपने शासनकाल के अन्तिम क्षणों में 11 दिसम्बर 1963 को भारतीय संसद में बड़े उद्योगों की असफलता पर पुनः गांधी विचार का ध्यान केंद्रित करने पर बल दिया था।²⁰ काश! नेहरू का वह शेष भारत को ग्राम-राज्य की दिशा में मोड़ पाता, तो आज भारत अधिक सुदृढ़ होता। गांधीवादी बँग ठाकुरदास लिखते हैं, “Our war is a war between the urban culture and the village culture. If we want to be environmentally safe, we will have to move towards preserving the village culture”²¹ आधुनिक सभ्यता और उससे जुड़ने की परम्परागत दृष्टि के मध्य संघर्ष को कोरोना वायरस ने प्रासंगिक बना दिया। समझना और आचरण करना जनमानस का कार्य है, प्रकृति का यह संकेत नहीं चेतावनी है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मानविकी पारिभाषिक कोष : मनोविज्ञान खण्ड; पद्मा अग्रवाल (नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, १९६८) पृष्ठ ८।
2. रामधारी सिंह ‘दिनकर’: संस्कृति के चार अध्याय, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, १९५६, पृष्ठ ६५३।
3. एंथोनी गिडेंस: द कांसीवर्सेजेन ऑफ़ मॉडर्निटी, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९९१, पृष्ठ ६४।
4. आर. राबर्टसन: ग्लोबलाइजेशन, सोसल थ्योरी, एंड ग्लोबल कल्चर, सेज पब्लिकेशन, लन्दन, १९९८, पृष्ठ ८।
5. महात्मा गाँधी : हिन्द-स्वराज (महात्मा गाँधी का जीवन दर्शन), अनुवादक कलिका प्रसाद, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, २ ११, पृष्ठ ३।
6. रामचंद्र गुहा : उपभोग की लक्ष्मण रेखा, अनुवादिका रुबीना सेफी, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, २ १३।
7. इस वर्ग के सभी चिन्तक मनुष्य की अति-लालसा की प्रवृत्ति पर रोक की मांग कीघ और शासन सत्ता को ऐसे वर्ग को सौंपने की जरूरत बताई जिसे न्यूनतम उपभोग की आवश्यकता हो, प्लेटो का संपत्ति का साम्यवाद, अरस्तू का संपत्ति अर्जन पर नियंत्रण, महात्मा गाँधी का न्यासिता का विचार, विनोबा का भूदान और आधुनिक पर्यावरणीय आन्दोलन इसी अतिभोगवाद के विपरीत है

8. तुलसीदासः रामचरितमानस, उत्तरकांड 21-1 गीता प्रेस, गोरखपुर, सं. 2069 पृ0 930।
9. पूर्वोक्त।
10. ए.के. कुमारस्वामी: स्प्रिचुअल अथॉरिटी एंड टेम्पोरल पॉवर इन द इंडियन थ्योरी ऑफ़ गवर्नमेंट, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978। फ्रेंच विद्वान रेने गुएने ने स्प्रिचुअल अथॉरिटी एंड टेम्पोरल पॉवर नामक निबन्ध में यही बात कही। यही बात मनुस्मृति के अध्याय 11, श्लोक 83, अध्याय 9, श्लोक 322, यजुर्वेद, अध्याय 20, मंत्र 25 में है।
11. सुन्दरलालः भारत में अंग्रेजी राज, प्रथम खंड, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 2001, पृ. 17।
12. अचील मर्बेबे: ऑन दि पोस्टकॉलोनी, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले, 2001, पृ. 10-11।
13. राममनोहर लोहिया: इतिहास-चक्र, संपादक-ओंकार शरद, लोकभारती प्रकाशन, 2009, पृ. 21-22।
14. K. D. Gangrade: Gandhian Ideal Development and Social Change (Delhi North Book Center), 199 pp 3-5. Quoted by Ishwar C. Harris, Gandhians in Contemporary India : The vision and Visionaries, The Edwin Mullen Press, 1998, pp.289.
15. Alvin Toffler: Future shock, Bantam, 1970.
16. Dr. M.V. Naidu: The Modern Industry – Military State : A Gandhian Analysis, in Gandhi Marg (Special Issue on non-violence), April-June 1992, pp.253-257.
17. Ignatius Jesudasan: Behavioural Pattern and Social Structures in the Gandhian Perspective, in Mercy Kamenskoye, ed., Gandhi and Social Action Today, (New Delhi : Sterling Publishers), 1990, pp.2.
18. Rajni Kothari: Transformation and Survival (New Delhi : Ajanta Publications), 1988, pp.15.
19. Ishwar, C. Harris: Gandhians in Contemporary India : The vision and Visionaries, The Edwin Mullen Press, 1998, p. 96.
20. Bang Thakurdas: Whither India (Bharat kidher), Sarve Seva Sangh Prakashan, 1988 p. 6.

नरेश मेहता कृत “संशय की एक रात” में युद्ध-शांति का द्वन्द्व



shodhshree@gmail.com

श्रीमती अलका जैन

सह आचार्य, श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किशनगढ़

शोध सारांश

मानव सभ्यता में युद्ध एक ऐसा सनातन प्रश्न है जिस पर अनेकों साहित्यकारों ने खण्डकाव्य लिखे जैसे कुरुक्षेत्र (दिनकर), जय भारत (गुप्त) अंधा युग (धर्मवीरभारती) सेनापति कर्ण (लक्ष्मी नारायण मिश्र) त्रिपथगा (भगवती चरण वर्मा) सूर्यपुत्र (जगदीश चतुर्वेदी) सुतपंत्र (विनोद रस्तोगी) इत्यादि चूंकि युद्ध में सबसे ज्यादा नुकसान मानवता का होता है इसलिए “संशय की एक रात” कृत कवि नरेश मेहता भी लिखते हैं जिस प्रकार कुछ प्रज्ञा पुरुष सनातन प्रतीक होते हैं राम ऐसे ही प्रज्ञा प्रतीक हैं। इस प्रज्ञा प्रतीक राम को कवि ने युद्ध की समस्या से निर्मित विभिन्न प्रश्नों के समाधान करने के लिए कवि ने संशय की एक रात लिखा। जिसमें नरेश मेहता का राम आधुनिक मानव का प्रज्ञा प्रतीक है जो स्वातंत्र्योत्तर काल के भटके हुए, बिखरे हुए जीवन में मूल्यान्वेषण करता है, आधुनिक विसंगतियों से बोझिल खण्डित व्यक्तित्व का मूल्य बोध भी देता है तथा समाधान भी प्रस्तुत करता है ‘संशय’ से निर्मित सारी समस्याएं, लघु एवं विराट व्यक्तित्व के खण्डित संदर्भ की ऐसी सर्जनात्मक एवं युगबोध निर्मित स्थितियां हैं।

संकेताक्षर : मूल्यान्वेषण, महामानवत्व, सनातन, प्रज्ञा, परिष्कृत, संक्रमणात्मक, प्रयोजन, परिताप, संशयग्रस्त।

साहित्य में साहित्यिक मूल्य एवं जीवनमूल्यों को लेकर एक दौर चल रहा है – जीवन मूल्यों की साहित्यिक अभिव्यक्ति ने भारतीय मानव समाज पर प्रश्न चिन्ह लगाये हैं जैसे-मानव अस्तित्व की समस्या, अस्तित्व बोध की समस्या, लघुमानव और महामानव की समस्या खण्डित व्यक्तित्व की समस्या, अधूरे विवेक की समस्या, उससे निर्मित संशय की समस्या, संशय से निर्मित युद्ध की समस्या, युद्ध से निर्मित इतिहास की समस्या, इतिहास से निर्मित शान्ति की समस्या, खण्डित व्यक्तित्व बोध की समस्या, लघु एवं महामानव के समर्पण की समस्या ? अधूरे जीवन संदर्भ की समस्या ? अस्तित्व के लिए स्वत्व की समस्या, कर्म की समस्या, एक व्यक्ति की समस्या, सामूहिक व्यक्ति की समस्या, एक ही स्थिति में दो-दो सत्य दो दो संकल्प और दोहरी आस्थाएँ बनाम मनोवैज्ञानिक समस्या ? इनसे निर्मित खण्डित संशय की समस्या, संशय से निर्मित क्षण की समस्या, क्षण में युद्ध तथा विजय, पराजय, समर्पण, शान्ति और सत्य आदि की समस्या, शुभ के स्थापना की समस्या ? जीवितों की समस्या, मृतकों की समस्या और इन समस्याओं की लम्बी तालिका से मूल्य स्थापना की अपेक्षा मूल्य निर्णय की समस्या को ‘संशय की एक रात’ में भी श्री नरेश मेहता ने उठाया है। ये एक ऐसी स्थिति है, जिसमें चित्रित मुख्य संशय युद्ध की अपेक्षा शान्ति की सापेक्षिक श्रेष्ठता से सम्बद्ध है। इस काव्य रूपक के नायक राम के मन में एक अन्तर्द्वन्द्व चल रहा है। सीता हरण उनकी वैयक्तिक समस्या है सीता का उद्धार उन्हें अवश्य करना होगा किन्तु इस अभीष्ट की प्राप्ति हेतु युद्ध का अवलम्बन लिया जाय अथवा शान्ति का-राम इस दिशा में उलझ गये हैं। युद्ध और शान्ति दो भिन्न-भिन्न विचारदर्शन हैं और इन भिन्न-भिन्न मतों के मध्य उनका अन्तर्मानस आन्दोलित हो रहा है।

नरेश मेहता कृत, ‘संशय की एक रात’ के प्रेरणा स्रोतों के संबंध में स्वयं कवि ने कृति के ‘शीर्ष बन्ध’ (भूमिका) में कहा कि-‘यह स्थिति राम की एक विशिष्ट मनोदशा तथा युद्ध एवं शांति से संबंधित प्रश्नों के एक विशेष प्रयोजन को ही प्रस्तुत करती है’। प्रश्न और उनके निराकरण अपनी सामाजिकता के बाद भी, राम उन्हें व्यक्तिगत पाते हैं। यह उन्हें निरा व्यक्ति कर देने की चेष्टा नहीं है। बल्कि उनके व्यक्ति को देखने की चेष्टा है। (संशय की एक रात शीर्षबंध से उद्धृत)

‘संशय की एक रात’ जिस युग की रचना है वह युग वास्तव में विघटन का युग है और यह विघटन किसी एक संदर्भ में नहीं प्रत्युत कई संदर्भों में है। आज हमारे अपने कई सवाल हैं। हमारी अपनी समस्याएँ हैं। जिनका समाधान हमें भी ढूँढना है। आस्था, अनास्था, व्यक्तित्व, खण्डित व्यक्तित्व, युद्ध और शांति साम्राज्यवादी दृष्टि उपनिवेशवादिता, कई समस्याएँ हैं। जो हमारे सामने विकल्प बनकर आने लगी है। (डॉ. बलभीमराज गोरे-हिन्दी के बहु-चर्चित काव्य नये संदर्भ पृ.34)

‘संशय की एक रात’ इन्हीं सवालों, समस्याओं का आंशिक समाधान है। इस कार्य के लिए कवि ने राम कथा जिस अंश को प्रबन्ध के लिए चुना है वस्तुतः वह आधुनिक बोध के लिए माध्यम मात्र है, प्रतीक मात्र है। प्रबंध काव्य के अंतर्गत पाये जाने वाले राम, लक्ष्मण, हनुमंत, विभीषणादि सभी पात्र भी आधुनिक चेतना के वाहक हैं। अत एव ‘संशय की एक रात’ में नरेश मेहता ने जिस समस्याओं को उपस्थित किया है। वे समस्याएँ भी पुर्णरूपेण सनातन, प्रज्ञा पुरुष राम की न होकर हमारी है, आधुनिक प्रज्ञा पुरुष की है, अत्याधुनिक चेतन मानव की अथवा चिन्तनशील पुरुष की है।

प्रस्तुत खण्डकाव्य में राम का चरित्र एक केंद्रीय व्यक्तित्व के रूप में उभारा गया है। यद्यपि आदिकवि के काव्य से लेकर साकेत आदि रचनाओं तक राम के चरित्र को परम्परागत और कुछ परम्परा भिन्न रूपों में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु यहाँ राम के चरित्र का वर्णन ऐतिहासिक संदर्भों से गुंथे हुए व्यक्तित्व का प्रकाशन साहित्यिक धरातल पर किया गया है जिसमें राम एक ओर तो पारिवारिक सम्बन्धों से जुड़े हैं और दूसरी ओर सामाजिक सम्बन्धों के भी प्रतीक बन कर आये हैं यह राम अपनी इस भूमिका से किसी भी स्तर पर छूट नहीं पाता है और हर स्तर पर अपने संदर्भों राम के व्यक्तित्व का दावा पेश करते रहते हैं। यहाँ तक कि रावण से युद्ध न करने का एक कारण-शायद महत्वपूर्ण भी यह देता है कि सीता की समस्या उसकी व्यक्तिगत समस्या है यही उसकी पारिवारिक संबंध भावना है पारिवारिक राम का वार्तालाप कवि मेहता दशरथ की आत्मा से भी करवाते हैं इस स्थल पर पिता पुत्र की संबंध भावना का रूप दिखलाई देता है।

यह ऐतिहासिक राम अपनी पारिवारिक व्यथाओं से बेहद पीड़ित है वह एकांत में भी और लक्ष्मण के सामने भी जो कुछ सरयू से लेकर सागर तक घटा है न केवल उन दुर्घटनाओं से चिंतित और विषादयुक्त होता है बल्कि पिता की मौत, माताओं के वैधव्य, भरत के

आधिकारक च्युत, अयोध्या का सूनापन, सीता का हरण आदि सब के मूल में अपने आप को ही कारण मानता है और उस कारण की मुक्ति का उपाय भी युद्ध न करने के रूप में सोचता है ऐतिहासिक राम अपने पारिवारिक संबंधों से इस प्रकार जुड़ा है।

**पिता की मृत्यु
विधवाजननियां
कौन है इनका निमित्त ?
पत्नी का हरण
पिता के मित्र जटायू का मरण
मेरे लिए
उपेक्षित अंगद हुए,
देहदाही हुए हनुमान
किसके लिए ?
उर्मिला सी देवि
विरहणी किस प्रयोजन के लिए ?
व्यक्ति का वनवास
परिजन और पुरुजन के लिए
अभिशाप क्यों बन जाय ?
व्यक्तिगत मेरी समस्याएँ
क्यों ऐतिहासिक कारणों को जन्म दें ?
राम के कारण
भरत जैसा सौम्य
निर्वासित हो ?**

ऐतिहासिक राम जो सबसे महत्वपूर्ण स्वरूप रहा है उसे राम किसी भी कीमत पर खंडित होते हुए नहीं देखना चाहते। भले ही सीता का परित्याग हो और वह राम का सौम्य रुपराम के द्वन्दात्मक शब्दों में।

द्वन्द्व का वह स्वर

**अपरिचित लग रहा होगा,
लक्ष्मण!
विद्रोह मेरा नहीं गुण-धर्म है
सौम्य स्वीकारा गया हुआ आज तक।
केलफल सा सदा
विनयी ही रहा;**

अपनी इस ऐतिहासिक प्रतिमा में राम कहीं दाग-धब्बा नहीं देखना चाहते चाहे उन्हें कितना ही मूल्य चुकाना पड़े। **“युद्ध पर आती सीता भी नहीं चाहिए सीता भी नहीं”** इसलिये दूध का जला राम छछ को भी फूंक-फूंक कर पीता है अब उसे कुल और जन विनाश प्रिय नहीं है

**मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए,
बाणबिद्धपाखो सा विवश
साम्राज्य नहीं चाहिए,
मानव के रक्त पर पग धरती आती,
सीता भी नहीं चाहिए,
सीता भी नहीं।**

सामयिक युग चेतना के प्रतीक राम का चित्रण

कवि ने अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए और अपनी चेतना के युग संदर्भों प्रमाण राम के परम्परागत स्वरूप में सामयिक बोध के धरातल पर व्यापक परिवर्तन खड़ा किया है परिवर्तन की यह प्रक्रिया गुप्त जी के “साकेत” से प्राप्त होती है किंतु “साकेत” में राम के केवल सोच का ही बदला हुआ रूप नहीं मिलता व्यवहार भी मिलता है। “संशय की एक रात” के राम के दृष्टिबोध में गहरा परिवर्तन पेश किया गया है। आधुनिक बोध का चश्मा उनकी दृष्टि पर लगा है इसलिए मानव राम के सामने राजाराम पराजित हो जाता है चुकि मानव राम यह कह देता है “साम्राज्य नहीं चाहिए ऐसी जय नहीं चाहिए”। उसे मानव के रक्त पर पग धरकर आने वाली सीता की भी आकांक्षा नहीं है काश! राजाराम यहाँ शक्तिशाली होते तो निश्चय ही वे लंका जैसे नये उपनिवेश को जीतकर अपने साम्राज्य का विस्तार करते और अपनी सीता को भी प्राप्त कर लेते। मानव राम का चरित्र कवि की मानवीय भावना और मानव के प्रति अनुराग वृत्ति का प्रतीक है।

प्रज्ञा के प्रतीक रूप में राम का व्यक्तित्व

प्रज्ञा वैचारिक स्तर पर एक निर्णयात्मक निष्ठा और विवेकपूर्ण बुद्धि रूप है जिसका विस्तार सीमा अतीत और वर्तमान तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि दूर भविष्यत को भी वह आसन्न सा देख लेती है। और उस पर छाए हुए संकट के प्रश्नों के संबंध में क्या निर्णय लिया जा सकता है या लिया जाना चाहिए। यह भी उसके लिए एक तथ्युदा बात हो जाती है राम का व्यक्तित्व ऐसी ही प्रज्ञा का व्यक्तित्व है। सच है कि सीता पति राम विजन अवस्था में परिस्थितियों से आक्रांत होकर सागर के बालू-तट पर न जाने कितनी बार सीता मुख बनाते रहे हैं और उन्हें बार-बार फाल्गुनी संध्या भी याद आती है। आशय यह है कि प्रज्ञावान राम वर्तमान के संदर्भों में जी रहा है फिर भी वह इस सबसे असंग है इन्हें वह अपने लिए भटके साथ के टूटे हुए संदर्भ मानता है और अपने व्यक्तित्व के सीमित दायरे से छलांग लगाकर दाशरथीराम रामत्व के वृत्त में समाजाता है यही उसका शाश्वत नरत्व है

यह प्रज्ञा पुरुष प्रतीक राम जो दाशरथी राम में कहीं बैठा हुआ है वह विराट सत्य को पाने का आकांक्षी है तथा वह किसी भी छलावे में अपने को बांधना नहीं चाहता। जैसा कि उसके शब्द यह स्पष्ट करते हैं इस मिथ्यात्व को शास्त्र-सम्मत सत्य कहकर मत छलो।

इस प्रज्ञा पुरुष का विश्वास संकल्पित प्रज्ञा में है वर्चस्वी निष्ठा में है और वह जीवन के सत्य को मानव और मानवता से पाना चाहता है उसकी यह प्रज्ञात्मकता या चेतना सभी संदर्भों से अमोही है और यदि वह कहीं जुड़ी हुई है तो समयातीत होकर युग-युगांतकारी विश्व मानवता के साथ जुड़ी हुई है इसलिए ऐसी प्रज्ञा न तो सीता के लिए चिंतित रहती है न राज के लिए और न किसी आकर्षण के लिए बल्कि वह तो इस बात के लिए चिंतित है।

**मैं केवल युद्ध को बचाना चाहता रहा हूँ बन्धु!
मानव में श्रेष्ठ जो विराजा है
उसको ही**

**हाँ, उसको ही जगाना चाहता रहा हूँ बन्धु!
क्या यह सम्भव है ?
क्या यह नहीं है ?**

व्यष्टि और समष्टि के द्वन्द्व के बीच उभरते राम का व्यक्तित्व

इस कृति में नरेश मेहता ने राम के परम्परागत रूप को अधिक महत्व न देकर उसके समग्र व्यक्तित्व को दो स्तरों पर चित्रित किया है एक में वह दाशरथी राम है, सन्दर्भों से जुड़े हुए है। नरेश मेहता ने व्यष्टि और समष्टि की समस्या को इस काव्य नाटक में द्वन्द्व के माध्यम से उभारा है यद्यपि समष्टि का प्रतिनिधित्व करने वाली कोई भीड़ यहाँ नहीं है किन्तु राम के ही व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष उस समूह चेतना का प्रतिनिधित्व करता है और व्यष्टि चेतना का भी उन्हीं का एक पक्ष प्रतीक बन जाता है इस प्रकार राम दो स्तरों पर बंटे हुए है एक ऐतिहासिक राम है जो अपने सन्दर्भों से जुड़े है उनके लिए चिन्तित है उसकी निजी परिस्थितियाँ उसे अनुखन सालती है कभी वह बालू तट पर अंकित सीतामुख से बद्ध रहते हैं कभी वह जनक वाटिका की जानकी के लिए व्यग्र हैं तो कभी अन्य परिवारजनों के लिए।

किन्तु राम का यह निजी व्यक्तित्व समूहगत व्यक्तित्व के स्वरूप की तुलना में बौना पड़ जाता है हार जाता है और विजय होती है राम के उस व्यक्तित्व की जो जीवन के सत्य की शास्त्रसम्मत बातों को मिथ्या सिद्ध करते हुए केवल मानव से मानव का सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है और मानव में सोये हुए मानव को

जगाने की चेष्टा करता है जीवन की समग्रता से जुड़ा हुआ राम का व्यक्तित्व इस बात के लिए चिन्तित है कि निजी राम के स्वार्थ के लिए किसी भी प्रकार युद्ध न किया जाय। वह मानव एकता के लिए प्रयत्नशील है राम का यह रूप युद्ध-प्रिय नहीं। कुंठाग्रसित भी नहीं बल्कि इस बात से चिन्तित है

**ओ! अनास्थित सूर्यास्तवाली
भाद्रपद की सौँझ!
युद्ध के उपरान्त होगी शान्ति
उपलब्धियों की सिद्धि
इस मिथ्यात्व से
इस मरीचिका से मुक्ति दो!**

राम का यह व्यक्तित्व किसी भी स्थिति में न भय से न अनुनय से, और न परिषदों के दबाव से हार मानता है बल्कि परिषद के फैसले को राम के जिस रूप में स्वीकारा है वह दाशरथी राम है किन्तु युद्ध का यह निर्णय उसका अपना नहीं है तभी वह यह कहता है कि यह निर्णय मेरा अपना नहीं है बल्कि यह निर्णय उन सब का है और यही कहकर वो अपने विवेक को शांत करने की चेष्टा करता है किंतु उस का द्वन्द्व क्या हो, और क्या न हो के बीच बना ही रहता है।

युद्ध और शांति बनाम जीजिविषा और मृत्यु के संघर्ष का निरूपण

इस कृति में युद्ध और शांति के माध्यम से लेखक ने जीजिविषा और मृत्यु बोध के बीच वैचारिक द्वन्द्व को अंकित किया है ऐसी बात नहीं है कि राम जीना नहीं चाहते हैं किंतु वे शांति के मार्ग पर जीना चाहते हैं युद्ध और हिंसा के माध्यम से उन्हें जीवन व्यतीत करना प्रिय नहीं है और इस शर्त को वे स्वीकारते भी हैं और अपने को युद्ध प्रिय एवं युद्ध की कुंठा से ग्रसित नहीं मानते। युद्ध के लिए कृत संकल्प लक्ष्मण को भी समझाते हुए ये कहते हैं कि हे लक्ष्मण! प्रत्येक शिखर के नीचे अंधेरा होता है इसलिए बाण बनने से अधिक अच्छा तो ये होगा कि अंधेरों में यात्रा करते रहे। वो ऐसा ऐतिहासिक कारण नहीं बनना चाहते जिससे कि भावी संततियाँ राम को माफ न कर सकें। और जब लक्ष्मण बार-बार कर्म और पौरुष की चुनौती देता हुआ मात्र राम की आज्ञा पाकर विधाता के लेख को भी बदलने का संकल्प ठान लेता है तो राम उसे समझाकर शांति करना चाहते हैं किंतु युद्ध नहीं चाहते। दूसरी और सत्व वर्चस्व और अधिकार की लड़ाई के लिए हनुमान, सुग्रीव, जामवंत आदि हैं ये उनकी जिजीविशा का प्रश्न है इस जिजीविशा के ऊपर मौत के साये के रूप में रावण की दानवीर शक्ति है उसके अत्याचारी व्यूहों का

कठोर शिकंजा है जिसने की सम्पूर्ण लघु मानव जीवन को दासता की जिंदगी में (बिड़ियो में) इस सीमा तक जकड़ रखा है कि राक्षसों के वे भोज्य पदार्थ तक वे बन गये हैं इस लिए आपद्धारण सिद्धान्त के अनुसार यह जनशक्ति अपनी जिजीविशा के लिए सब कुछ सहन कर सकती है किंतु सत्व और अधिकार की लड़ाई के साथ कोई समझौता नहीं करती।

अतः इस जिजीविशा और मृत्युत्रास के बीच उभरते द्वन्द्व के अन्तर्गत लघु जीवन के प्रतिनिधि युद्ध का निर्णय लेकर जिजीविशा के विजय का शंखनाद करते हैं क्योंकि संघर्षों का वरण ही जीवन है।

संशय और द्वन्द्व ग्रस्तता की वैचारिकता

प्रस्तुत काव्य एक विचार प्रधान काव्य है जिसमें काव्य का वस्तुपक्ष और घटनात्मकता न के बराबर है क्या हो और क्या न हो ? का प्रश्न संशय के रूप में जो उठा है उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि में भावी युद्ध से होने वाले जनसंहार और राम के ऐतिहासिक स्वरूप पर तिरस्कार और लांछनों की बौछार एक युद्ध से अन्य दूसरे युद्ध का आमंत्रण अर्थात् स्थायी शांति की हत्या युद्ध के हाथों होगी यह सोच परिषद् के निर्णय के बाद भी राम के आधे मन में बना रहता है इसलिए सौम्य और शांतिप्रिय राम अपने लिए चिंतित न होकर अपने अस्तित्व को तुच्छ मानकर युग-युग की शांति के लिए जिस मार्ग पर चलना चाहते हैं सच है कि वह मार्ग रघुकुल के राजाओं का मार्ग नहीं है किन्तु यहाँ तो प्रज्ञा पुरुष राम अन्य प्रज्ञतों के समान चिरस्थायी शांति के लिए मानव में विराजे हुए उसके मानव को जगाना चाहता है और इसके लिए यह तर्क देता है कि क्या युद्ध से खंडित व्यक्तित्व को जिसकी व्याख्या उसने सब में बिंधे हुए दूटे हुए बाण के फलक से की है खंडित व्यक्तित्व को सिद्धि और शांति का स्थायी रूप प्राप्त हो सकेगा। चौथे अंक में तर्क वितर्क की ही प्रधानता अधिक है। निर्णय के बाद भी आशंका शांत नहीं होतौ मजे की बात यह है कि इस वैचारिक विवेचन में केवल जीवित पात्र ही जुटे हुए नहीं हैं बल्कि मृत आत्माएँ तक भी इस बौद्धिक मंथन में लिप्त हैं वैचारिक पक्ष की अधिकता और बोझिलता के कारण यह काव्य नीरसता सा हो गया है।

कथा तत्व का अभाव

रचना का नाम “संशय की एक रात” शीर्षक स्पष्ट करता है जिससे ये ध्वनित होता है कि प्रत्यक्ष रूप से इसमें घटना केवल एक रात की है। और वह भी प्रभावोत्पादक ढंग से चित्रित नहीं की गई है सच्चे अर्थों में हम तो इसको घटना का नाम भी नहीं दे सकते।

केवल पात्रों का आना-जाना दिखलाया गया है। कोई घटित होता हुआ कार्य व्यापार चित्रित नहीं किया है यहाँ जिन प्रेतात्माओं का उल्लेख किया गया है वह भी कोई संजीदा घटना का रूप नहीं ले पाई है उसमें भी विचार मंथन होता रहा है इतना अवश्य है कि इस सारे कथानक में एक नया प्रसंग उठाया गया है जो रोचक बन सकता था किंतु कवि का ध्येय ही कथा कहना नहीं है और न वह घटना का वर्णन करना चाहता है बल्कि घटना से पूर्व तक की वैचारिक स्थिति को चित्रित करना चाहता है। जानकी प्रसंग को भी उसने थोड़ी सा संकेत देकर चलता हुआ कर दिया है। इसलिए इस कथा विहीन काव्य में घटना के अभाव से नीरसता का एकाधिकार हो गया है।

खंडित व्यक्तित्व की समस्या और मनोवैज्ञानिकता

राम के चरित्र को नरेश मेहता ने एक खंडित व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया है जिस तरह से धर्मवीर भारती ने अंधायुग में अर्जुन को “रथ का दूत पहिया” कहकर उसके खंडित व्यक्तित्व का प्रकाशन किया है? इसी प्रकार नरेश मेहता ने भी राम के व्यक्तित्व को खंडित रूप में इस प्रकार चित्रित किया है।

लक्ष्मण!

शव चूभे बाण के टूटे फलक से

अधिक अपनी पात्रता

क्या है ?

यदि यह पात्रता है

बन्धु!

कवि ने युद्ध कोशव चूभे बाण के टूटे फलक से या रेत में गढ़े हुए तीर के समान माना है और ये सब भी है कि हम राम के व्यक्तित्व का परीक्षण करे तो सरयू से लेकर सागर तक के राम को क्या किसी भी बिन्दू पर सफलता मिली है उत्तर होगा नहीं! और जब व्यक्ति को हर जगह राम के शब्दों में अनखन असफलताओं के पश्चाताप को भोगना पड़ता है तो स्वाभाविक रूप से जीवन के प्रति अनास्था और वितृष्णा पैदा हो जाती है। इसलिए खंडित व्यक्तित्व और उसके मनोविज्ञान का भरपूर चित्रण यहाँ किया गया है

ओ! मेरे आधे व्यक्तित्व के अधूरे मन!

इन गूंगे संशयों

अधूरी शंकाओं

बहरे प्रश्नों का क्या होगा ?

मेरी अस्वीकृति का क्या होगा ?

क्या होगा ?

मैंने अपने अंधे को सर्वस्व समझकर सौप दिया

ज्वारों को।

राम अपने सभी सखा और मित्रों के एवं सहयोगियों के द्वारा समर्थन दिए जाने पर भी युद्ध के लिए जो तैयार नहीं होते हैं उसका एक मात्र कारण यह नहीं है कि वे कायर हैं शक्तिहीन हैं या कोई अन्य अभाव है किन्तु कठिनाई इस बात की है कि राम का मनोबल टूट चुका है। इसलिए राम सब कुछ के धनी होते हुए भी एक हारे हुए मनोबल से न तो युद्ध लड़ सकते हैं और न उसे जीत सकते हैं। इस खंडित व्यक्तित्व को सीता का प्रबल अनुराग भी उत्साहित नहीं कर सकता है सौम्यता की दुहाई देना ठीक किरातीजुनीयम के युधिष्ठिर के समान राम का आचरण है और भग्न मनोरथ चरित्र का मनोवैज्ञानिक धरातल पर ऐसा ही व्यवहार होता है।

लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना और मूल्य टकराहट

जो व्यक्तित्व भावनाओं और संकल्पों की दुनियाँ में टूट चुका होता है। उसका जीवन के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण हो जाता है। जीवन की जटिल परिस्थितियों से वह कन्नी काटकर अंतर्मुखी और कुछ सीमा तक पलायनवादी बन जाता है राम का चरित्र ऐसा ही है। वह अपने मन की प्रियकामनाओं को भी प्रेम नहीं कर सकता। यद्यपि उनकी तड़प उसे दुख अवश्य देती है। राम भी अपनी काँपती हुई अंगुलियों से बालू तट पर सीता मुख बनाते हैं।

सदा काँपी अंगुलियाँ,

पर हाय-

यह बालुवाली जानकी

प्रतिसाँझ

ज्वारजल में समर्पित होती रही;

खंडित व्यक्तित्व की जीवन यात्रा “झूके माथ” की यात्रा है। वह छोटे शंख सा बालू में ही कहीं खो गया। उसकी मुट्टियाँ तनी नहीं थकी हुई हैं। खंडित व्यक्तित्व वाले राम की यात्रा निराशा में डूबे राम की ही यात्रा है।

इतिहास के हाथों

बाण बनने से अधिक अच्छा है

स्वयं हम

अँधेरों में यात्रा करते हुए

खो जाए

किसी के हाथों सही

पर नियति खोना है।

मात्र

सच है कि राम निराशा और संशय के चक्रव्यूह में अपने को खो चुका हैं उसे अँधेरे की सर्वत्रव्यापि प्रतीत होती है। यह राम के मन का गहरा अंधेरा है जो बाहर भी फैला है।

व्यक्ति समस्या या समूह चिंता

इस रचना में व्यक्ति समस्या और समूह चिन्ता के बीच लोकतांत्रिक मूल्यों व्यक्ति मूल्यों के बीच एक टकराहट दिखालाई है। राम सीता को अपनी निजी समस्या मानते हैं। जबकि लक्ष्मण और हनुमान उनके विचार से सहमत नहीं। राम के सोच को लक्ष्मण इस प्रकार रेखांकित करते हैं।

**युद्ध नहीं होगा
क्यों कि सीता हरण
राम की व्यक्तिगत समस्या है।**

किन्तु विचार का विरोध करते हनुमान कहते हैं यदि यह राम की ही समस्या होती तो सब कुछ संभव था जैसा कि राम कहते हैं। किन्तु ये समस्त लाघव व्यक्तित्व के करोड़ों साधारण जन जो युद्ध रूपी महायज्ञ के “बौने होते” से दिखाते हैं। अपने छोटे-छोटे भेदभावों को भूलकर “भुलाकर अपने सारे जाति कुलों के राग द्वेष” किस कारण महासेतु का निर्माणकर मानव मात्र के विद्रोह भाव के प्रतीक है। केवल राम के लिए युद्ध करने नहीं आये। भले ही सीता माता राम की पत्नी हो। या अन्य किसी की बेटी हैं किन्तु करोड़ों लघुव्यक्तित्व की तो वह सीता माता है—रावण अशोक वन की सीता हम साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता है

**सीता माता
भले ही राम की पत्नी हों
किसी की वधू
किसी की दुहिता हों
पर
हम कोटि-कोटि जनों की तो केवल
प्रतीक है—**

**रावण अशोक वन की सीता
हम साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता है।**

इसलिए ये कोटि लघुजन अपने अधिकारों और सत्वरक्षा के खिलाफ रावण की ‘साम्राज्यवृत्ति’ के विरुद्ध कठोर बज्र बनकर अभियान के लिए तैयार हैं। क्योंकि अब ये गुलाम नर नहीं “वानर” कहलाये जाने वाले भोज्यपदार्थों से बिकने वाले को अब राम को भी इस प्रकार चेतावनी देते हैं।

**“क्षमा करें महाराज!
हम केवल घटना है।
इतिहास नहीं।
सम्भव है
हमारे कारण ही
अनागत युद्धों की नींव पड़े
पर,**

**इस डर से,
क्या हम न्याय और अधिकार छोड़ दे!
नहीं
नहीं महाराज
समय ही करेगा प्रतिकार
हर बार
अनुचित का।**

इसी प्रकार यह युद्ध होकर रहेगा यह लोक सत्व का युद्ध है अकेले सीता के सत्व का प्रश्न नहीं ऐसी ही बात कहकर विभीषण भी युद्ध का समर्थन करता है कि स्वत्व और अधिकार प्राप्त के लिए कभी-कभी युद्ध ही न्याय होता है सत्य भी होता है। यही लोकतंत्र और राष्ट्रवाद की भावना है। तभी लघु व्यक्तित्व चक्रवर्ती रावण से भी युद्ध करने को तैयार है। यही तो सुग्रीव भी कहता है।

**महाराज!
निश्चिन्त रहे
यह युद्ध न्याय का है
क्यों कि
रावण ने
दक्षिण प्रदेश
उसके सामन्तों का अधिकृत कर
बो दिये युद्ध के बीज बहुत पहले ही
हमारी जीत प्रथम होगी
जब किसी चक्रवर्ती को हरा सकेंगे।
सीता
जो कि हमारी माता है
उन्हें आपको सौंप
उत्त्राण होंगे दक्षिण के नर-नारी।**

चरित्रों के ऐतिहासिक और सामयिक व्यक्तित्व के समन्वय

आधुनिक हिन्दी कविता में अनेक रचनाकारों ने मिथिकीय प्रयोग किये हैं। पौराणिक चरित्रों की घटनाओं के द्वारा उन्होंने उन पौराणिक पात्रों के कार्य कलापों, चिन्तन और क्रिया व्यापारों में एक युग की चिन्ता और चाह पैदा की है जैसा कि उपर स्पष्ट किया है राम का एक व्यक्तित्व दशरथी राम का है सरयू से सागर तक के राम का यही पौराणिक राम है और उनके अनुज और सखा-सेवक भी पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्र हैं किन्तु इन चरित्रों का चिन्तन और क्रिया व्यापार आधुनिक प्रश्नों और उनके समाधानों में जुटे दिखाये गये हैं—राम वे सीता हरण से चिन्तित नहीं। वह युद्ध की विभीषिका से डरा है क्योंकि उसके मन में कहीं दो विश्व युद्धों का त्रासदायी भाव व्याप्त

हैं। इसलिए अंतिम सत्य को पाने के लिए वह युद्ध के स्थान पर संधि को पसंद करता है जैसे आज के युग में द्विपक्षीय और त्रिपक्षीय वार्ताओं के दौर दो राष्ट्रों की समस्याओं को लेकर चलते हैं। राम भी गांधी की तरह मानव में विराजे उसके देवता को जगाना चाहते हैं। जब कि दूसरी ओर अपने अधिकारों सत्व रक्षा और स्वतंत्रता प्राप्ति की लड़ाई लड़ने के लिए करोड़ों वानर तैयार हैं। यह अधिकार प्राप्ति और स्वतंत्रता की कामना का विचार सुग्रीव और हनुमान के ऐतिहासिक चरित्रों के विचार नहीं है वरन यह सामायिक माँग है जिसके उबलते प्रश्न ऐतिहासिक चरित्रों के मन में उठते रहते हैं। युद्ध परिषद में इन्हीं प्रश्नों पर विचार होता है। विभीषण एक ऐतिहासिक चरित्र 21 वीं शती का चरित्र बनकर राम को सलाह देता है।

**“जब जब उपनिवेशों ने किया,
विद्रोह
उनके लोग,
सास्कृतियों और इतिहास तक को
भस्म कर डाला
जब मैंने कहा, मुझे निष्कासित किया
न्याय की हर बात अस्वीकार की**

इस अन्याय की रक्षा के लिए विभीषण राम को जो मंत्रणा दे रहे हैं उसमें उनका आज का युगबोध बोल रहा है।

**बहुमत न्याय है सत्य है
ऐतिहासिक नियति है
हर व्यक्ति की।**

प्रकृति चित्रण

इस विचार प्रधान काव्य में प्रकृति के स्वतंत्र चित्रण के लिए शायद नरेश मेहता को अवसर ही कहाँ मिला है। फिर प्रत्यक्ष और परोक्ष स्मृति पटल पर उभरने वाले रूप में प्रकृति के कुछ भूले भटके चित्र यहाँ दिख जाते हैं इनमें सांध्यबेला सागर तट, ज्वार दृश्य, बालूविस्तार, भाद्रपद की साँझ और जनकवाटिका की यादें ताजा करने में प्रकृति का हल्का सा रूप उभरकर सामने आता है स्मृति जगत में खोये राम के मुख से हल्का सा उद्दीपन देती हुई फाल्गुन की मीठी प्रकृति का एक चित्र इस प्रकार है

**यह बालुवाली जानकी
उस फाल्गुनी आकाश को
पुनः लौटा दें,
जो कि
मिथिला आस्रकुंजों पर
झुका था**

एक नीले हंस सा मैथिल-हंसिनी!

प्रकृति का यही एक हल्का सा मनोरम चित्र है शेष तो सागर का उफान और ज्वार ही चित्रित है। या फिर प्रकृति का अलंकार रूप में प्रयोग किया गया है। राम प्रश्नों को ज्वार सा कहते हैं और अपने आप को ज्वार समर्पित धारा मानते हैं। या अपने को हंस और मैथिल को हंसिनी बालू मुख सीता को प्रतिसाँझ आकर बनाते भी हैं और वह सीता प्रतिसाँझ ज्वारजल को भेंट भी हो जाती है राम को एकाकी पन में भटकाव के ठहराव सी प्रकृति याद आती है।

**“ओ सिंधु
ओ आकाश, नारियल के वन
समुद्री खारी हवा
ओ अर्णिय की भाद्र पद की साँझ”**

विषण्ण और दुखी राम अपने दुख की दाहकता से निजात पाने के लिए मान लो प्रकृति की शीतल गोद में खोजना चाहते हैं।

**“बंधु! देखते हो ज्वारवाला सिंधु
भाद्रपद की साँझ
यह आकाश
हवा विनयी नारियल के गाछ
धुले तट का असंगी विस्तार।”**

राम भी असंगी बन कर जीवन जीने की कामना करता है शायद यही जीवन का सच उसे लगता है कहीं-कहीं प्रकृति प्रेरिका भी बनकर आई है किन्तु उसका ऐसा बिम्ब भी दुर्बल सा रहा है जैसे

**ओ भाद्रपदी वृष्टि
मुझे नारिकेलो से
अभिषेकित हो जाने दो,
आद्यन्तभोग उठने दो,
उस आत्मा तक जो खण्डित है।
ओ भाद्रपदी वृष्टि
आद्यन्त भीग उठने दो।
उस आत्मा तक जो खंडित है**

गीता दर्शन का प्रभाव

‘संशय की एक रात’ का संशय युद्ध पूर्व स्थिति में जैसा सेतु बंध पर राम के मन में उठा है वैसे ही संशय ग्रस्त अर्जुन के मन में भी महाभारत से पूर्व उत्पन्न हुआ था। किन्तु गीता में जिस स्थित प्रज्ञ की प्रज्ञा का जो उपदेश भगवान कृष्ण ने दिया है, जिस समता बोध नामक योग और कर्मयोग की शिक्षा प्रदान की है उसका प्रभाव प्रस्तुत रचना के अंतर्गत भी देखा जा

सकता है। कई स्थानों पर वासुदेव को याद भी किया है युद्ध का दर्शन भी गीता द्वारा व्याख्या कृत हुआ है। यहाँ गीता दर्शन के तीन प्रमुख व्याख्याता हैं। एक दशरथ की आत्मा, जटायु की छाया और अनुज लक्ष्मण।

लक्ष्मण संधि या युद्ध का दर्शन लेकर नहीं चलता। उसका निर्णय दो टूक है। वह कर्म को अपने जीवन का सत्व मानता है जो कर्म भाव उसकी जलती आँखों, बंधी मुट्ठी और यांत्रित पैरों की गति में समाया है। तभी उसकी प्रज्ञा अपने संकल्प पर अटल है। इस मार्ग की बाधा भी उसे रोक और टोक नहीं पाती। वह जीवन का हित युद्ध कर्म में देखता है। सच है कि क्षत्रिय के लिए युद्ध ही कर्म है। वह भाई राम से कहता है। संशय नहीं करना चाहिए **“या फिर, युद्ध में क्या होगा यदि इसकी ही चिन्ता है”** तो वह इस शंका का उत्तर यह कहकर देता है कर्म की चुनौती मुझे स्वीकार है। बंधु, यह असंभव है कर्म और वर्चस्व को छिन सके कोई भी जब तक हम जीवित है। कर्म के प्रति लक्ष्मण की अटल आस्था कृष्ण के इन शब्दों की याद ताजा करती है। **“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन”** और राम के संशय में गीता की यह ध्वनि है **“संशयात्मा विनश्यति”**

**मैं सत्य चाहता हूँ
युद्ध से नहीं
खड़ग से भी नहीं
मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ
क्या यह संभव है ?
क्या यह नहीं है ?**

राम के इस संशय को उसके पिता की आत्मा ‘मोह’ कहती है। गीता में संमोहत् स्मृति विभ्रम, कहा गया है और स्मृति के नाश से बुद्धि का नाश और बुद्धिनाश ही व्यक्ति नाश बन जाता है। राम को **‘नर संहार का व्यामोह है’** इसलिए अर्जुन की तरह वह भी युद्ध विमुख है।

**ऐसा युद्ध
ऐसी विजय,
ऐसी प्राप्ति-
सब मिथ्यात्व है।
“नर संहार के व्यामोह के प्रति
वितृष्ण से भर उठा हूँ”**

दशरथ की आत्मा भी राम की कामना की निंदा कृष्ण के समान करती है। **“कर्म के प्रति का पुरुषता नहीं है यह ?कर्म ही गति है”** ये वचन गीता से प्रेरित हैं! कर्म ही क्षत्रिय का धर्म मानकर दशरथ की आत्मा कहती है

कि हे राम! कीर्ति, यश, नारी, धरा, जय, लक्ष्मी, भिक्षा का अनुदान से नहीं वर्चस्व से प्राप्त हुए है तुम किससे प्रश्न कर रहे हो ?महा काल से वह भी नियम है क्षत्रिय के लिए कर्म का नियम यही धर्म है। और गीता में **“स्वधर्म निधनं श्रेय”** कहकर प्रकारान्तर से युद्ध की पुष्टि की गई है और राम को भी इसके लिए तैयार होना पड़ता है जैसा कि रचना के चतुर्थ अंक में स्पष्ट किया गया है। जटायु कहता है कि कर्म करता हुआ पुरुष **“दिक्काल पुरुष”** बन जाता है। हमें यहाँ जो जन्म लेता या मरता लगता है वह सत्य नहीं है

**कुछ जन्म लेता मरता लगता है।
अजन्म अविनश्वर क्षण या समय को नहीं**

ये शब्द गीता के इन शब्दों के भावानुवाद है। **“नायमा सीत् नेमा इयम् संजात”** इस प्रकार अर्जुन कृतनिश्चय होकर जो युद्ध के लिए तैयार हो जाता है वैसे ही राम के सहयोगी युद्ध का निश्चय ठान चुके है।

कल्पना का प्रयोग

काव्य में कल्पना के दो रूप प्रायः होते हैं कान्त और रौद्र। यहाँ इसके दोनों रूप मिलते हैं। व्यथित राम का हृदय अतीत के सुखद क्षणों की कल्पना करने लगता है। **“मानस”** का राम जनक वाटिका की सीता को देखकर प्रेम विभोर हो जाता है, सुखमय कल्पना के लोक में खो जाता है ठीक वैसे इस रचना का राम भी अनुपस्थित सीता का चित्र बनाकर सुख की कल्पना में डूब जाता है और उसे भी जनक वाटिका सीता का स्मरण हो आता है।

**यह बालुवाली जानकी
उस फाल्गुनी आकाश को
पुनः लौटा दें,
जो कि
मिथिला आस्रकुंजों पर
झुका था
एक नीले हंस सा
मैथिल-हंसिनी!**

जब जब राम अपने परिवार जनों के दुखद जीवन की याद करते हैं तो वह एक दुखद कल्पना के समुद्र में उतरने लगते हैं।

**हाय!
आज तक मैं निमित्त ही रहा
कुल के विनाश का
लेकिन
अब नहीं बनूंगा कारण
जन के विनाश का**

“नंदी ग्राम के एकान्तवाला
भरते का वह
सौम्यमुख,
उर्मिला की पति प्रतीक्षित दीठि,
मेरे तपते हुए आकाश में
मिहिर हीना दिशाओं सी
श्वेत मौन उदास माताएँ।

ये सभी कल्पना के कारुणिक दृश्य हैं किन्तु जब राम युद्ध की विभीषिका को कल्पना में साकार करता है वह कल्पना रोंगटे खड़े करने वाली हैं विभीषण की भी ऐसी ही कल्पना है जब वह युद्ध में भस्म लंका की कल्पना का चित्र देखता है।

मेरे राष्ट्र की टूटी हुई
अपमानित पताकाएँ
भग्न अंगों की शोभायात्रा सी जा रही है।
जले और खण्डित भवन
जिह्वाहीन भीखमंगे सरीखे
हाथ फैलाए खड़े है
राजपथ
बेहोश, ऐँठी देह से नंगे पड़े है
टूटे हुए रथचक्र में
अन्ये अश्व हंसते जा रहे है.....
तेरा राष्ट्र
इस युद्ध में
रौंध डाला जायगा कल राम ?

पराविद्या का प्रभाव और भारतीय संस्कृति का चित्रण

धर्म, आध्यात्म, दर्शन और व्यष्टि-समष्टि की चर्चा के साथ इसमें भारतीय संस्कृति और आस्था का रूप भी झलकता है। भारत की चेतना आस्थावादी और नियतिवादी है वह संस्कारों में विश्वास करती है स्वार्थ से अधिक महत्व परमार्थ को यहाँ दिया गया है। राम भी मानव और मानवता के कल्याण के लिए चिंतित है युद्ध करके वे कोई ऐसा ऐतिहासिक कारण नहीं बनना चाहते कि युग उन्हें कभी माफ ना करें इसलिए वे मानव से ही मानव का सत्य-जीवन की विराट सत्य पाना चाहते हैं-तलवार के जोर से नहीं

मैं सत्य चाहता हूँ
युद्ध से नहीं,
खड्ग से भी नहीं
मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ।
क्या यह सम्भव है? क्या यह नहीं है?

यही ही है भारतीय संस्कृति का मानववादी दृष्टिकोण! यही है उसकी विश्व बंधुत्व की कामना! यहाँ की संस्कृति युद्ध प्रिय नहीं सदा से शांति प्रिय ही रही है। राम इसी के प्रतीक है। वे अंत तक युद्ध नहीं चाहते।

कला पक्ष

भाषा का सहज स्वाभाविक प्रयोग

समकालीन रचनाओं में काव्य भाषा की तलाश एक गहरे बोध के रूप में रचनाकार के मानस को उग्र बनाती हैं पुरानी भाषा प्रवृत्ति से नयी रचनाओं का पूरा पड़ता न देख कवियों ने काव्यभाषा को सार्थक व्यंजना के लिए एक नया रूप दिया है इसमें कवि तत्सम शब्दावली का भी प्रयोग करता है तद्भव प्रयोगों को भी रचना में स्थान देता है और “गा” जैसे भाषा के पूर्वी आंचलिक प्रयोगों को भी निशंक स्थान देता है भाषा भाव और विचारों की वाहिका बन कर आती है यहीं सत्य –“संशय की एक रात” भाषा का है नरेश मेहता नें तत्सम शैली भाषा का भी अच्छा प्रयोग किया है जैसे:-“अनुत्तरित संशय का सर्पवृक्ष”

इस भाषा में तद्भव शब्दों का भी संगत सार्थक अर्थव्यंजना के उपयुक्त प्रयोग देखे जा सकते हैं जिसमें **पाखी, अनुखन, पितात्मा** इस प्रकार के तद्भव प्रयोग भाषा में उसकी तर्ज को सरल बनाते हैं और अर्थ की गंभीरता को बलिष्ठ करते हैं कहीं-कहीं कवि ने अंग्रेजी ध्वनि पर बने शब्दों का भी प्रयोग किया है जिसमें ‘त्रासदी’ एक अच्छा उदाहरण है जो अंग्रेजी की ट्रेजेडी का रूपान्तरण है कवि नरेश मेहता सामन्ती शैली की शब्दावली के प्रयोग करने में भी असफल नहीं है राम जब छाया से ये उत्तर पाते हैं कि वह उनके पिता की आत्मा है तो उस आत्मा को संबोधित करते हुए जो शब्दावली राम के मुख से निकली है उसमें सामन्ती संस्कृति का गौरव है जैसे:-**स्वर्गीय राज राजेश्वर दशरथ**

इस तरह यह कहा जा सकता है कि भाषा पर कवि का सफल अधिकार है नये प्रयोगों में भी वह दक्ष है विशेषता इस बात की है कि शब्दों के विरल प्रयोगों से भी वह विपुल अर्थ व्यंजना कर सकता है।

कवि ने दिशाओं को “मिहिरहीना” कहकर नये शब्द गढ़ने की अपनी सिद्धहस्ता का भी परिचय दिया है। “कवचित” शब्द प्रयोग भी इसी प्रकार का प्रयोग है, रचना में अन्य भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं “बालू के विस्तार” को असंग विस्तार कहकर कवि ने नयी अर्थ व्यंजना दी है। शब्द चयन और उसके सार्थक प्रयोग पर भी पूरा-पूरा ध्यान रखा है। लक्ष्मण जब बराबरी का रिश्ता कायम करता है। तो अपने को अनुज और राम को अग्रज कहता है किन्तु जब कोई बहुत बड़े उत्तरदायित्व से पीछे हटते राम को देखा जाता है तो उस समय राम के लिए जो संबोधन होता है वह या तो **दाशरथी** राम का होता है या प्रभु का या महाराज का। जो उनके शासकीय भाव के परिचायक है।

यह समस्त रचना भाव और विचार प्रधान है यद्यपि

इसमें आने वाले भाव विशाद् के अधिक हैं, राग और उत्साह के कम। फिर भी उनकी व्यंजना श्रेष्ठ शैली के द्वारा की है। पाठक भी इन स्थलों को पढ़कर तद्भाव लीन हो जाता है बालू तट वाली जानकी के मुख के बिम्ब को परितापित राम का मन भूल नहीं पाता। और अतीत के रागमय दृश्यों में खो जाता है पूर्वी श्वेत बुर्ज के उपर मंडराने वाली छाया को भाद्र पद की बरसती हुई काली रात में भी पौरुष के धनी राम ललकारते हैं, चुनौती देते हैं, यहाँ राम की निर्भीकता साहस, उत्साह और ओज का भाव व्यंजित किया गया है जिसकी व्यंजना में शैली का पूर्ण सहयोग मिला है कठुणिक और विभित्सा के भाव चित्रों की यहाँ कोई कमी नहीं है एक-एक शब्द चित्रमय जैसा लगता है जब सरयू से सागर तक दहकती हुई असफलताओं का ढेर राम अपने में समेटे हुए हैं तो उन्हें अपने अतीत की दुखद स्मृतियाँ निसविशाद् के वातावरण में डूबो देती हैं उनका कारुणिक दृश्य बड़ा मार्मिक है जैसे:-

नन्दीग्राम के एकान्तवास,
भरत का वो सौम्य मुख,
उर्मिला की पति प्रतिक्षित दीटि,
मेरे तपते हुए आकाश में मिहिर हीना,
दिशाओं सी
श्वेत मौन उदास माताएँ,
एक असफल सांझ रक्तितम,
ग्रीष्मावकाश में।

अलंकार प्रयोग

आधुनिक रचनाओं में अलंकार प्रयोग के प्रति एक आग्रही दृष्टिकोण नहीं है प्रस्तुत रचना में भी यही सत्य देखने को मिला है इसका एक कारण और भी है कि कविता गद्यात्मक अधिक है इसलिए उसकी प्रकृति अलंकारों के उपयुक्त नहीं है फिर भी इस रचना में अनुप्रास, पुनः रुक्ति प्रकाश, रूपक विरोधाभास के साथ-साथ बड़ी मौलिक और सार्थक उपमायें मिलती हैं इन अलंकारों का प्रयोग निरा सहज प्रयोग है

उपमा के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं।

दीपक की लौ सी
छोटे दीप से
नीले हंस सा
छोटे शंख सी
केलीफल सा

आदि अनेक सुंदर उपमा के उदाहरण मानवीकरण के भी सुंदर उदाहरण मिलते हैं जैसे “सोया अंधेरा है”। शास्त्र सम्मत में अनुप्रास अलंकार है “पांखी पंख” भी इसी का उदाहरण है।

पतिलक्ष्मण के लिए प्रतिक्षित उर्मिला की दृष्टि के लिए कवि ने बहुत ही सटीक और मौलिक उपमान की कल्पना की है जिसके लिए “मिहिरहीना दिशाओं सी” कहता है “आदिम अग्निचां सोयी पड़ी है” में अनुप्रास और मानवीकरण का संयुक्त प्रयोग देखने को मिलता है संशयाग्नि और सर्पवृक्ष में रूपक अलंकार का प्रयोग है।

शब्द शक्ति प्रयोग

कवि ने लक्षणा और व्यंजना शक्ति के चमत्कारिक प्रयोगों से अपनी अर्थ व्यंजना को समृद्ध किया है इस सम्बन्ध के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं “तुम मेरी इन्द्रिया हो” तथा “तुम नैनो के उत्सव हो,” “परिस्थितियों धेनु हो” इनमें लक्षणा शब्द शक्ति का चमत्कार दृष्टव्य है सरयू से सागर तक व्यंजना शक्ति का प्रयोग है यहाँ सरयू राम के प्रारम्भिक जीवन का और सागर राम के उत्तरकालीन जीवन का अर्थ प्रदान करता है इस तरह इसमें बिम्बात्मक प्रतीक का भी प्रयोग है।

बिम्ब और प्रतीक योजना

नयी काव्य भाषा का सबसे बड़ा धर्म और उसकी शक्ति प्रतीक और बिम्ब है प्रतीक के क्षेत्र में कवि कल्पना और प्रतिमा दोनों का सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है यहीं नहीं नरेश मेहता ने अपनी रचना में बिम्बात्मक प्रतीक, प्रतीकात्मक बिम्बों का भी प्रयोग किया है फाल्गुनी आकाश जीवन की खुशियों का प्रतीक है एक नीले हंस सा मैथिल हंसिनी क्रमशः राम और सीता के प्रतीक हैं, प्रतीक योजना में कवि का यह ध्यान रहा है कि वह अमूर्त भाव और विचार मूर्तित हो सके अपनी स्पष्ट अर्थ व्यंजना कर सके। राम के खंडित व्यक्तित्व को प्रकट करने के लिए भारती के रक्त टूटे पहिए के समान नरेश मेहता राम के लिए “शव चुभे बाण के टूटे फलक से” यह अकेला प्रतीक ही नहीं है बल्कि बिम्बात्मक प्रतीक है जो राम के खंडित और निस्सार व्यक्तित्व का परिचय देता है युद्ध के अन्तर्गत नष्ट-भ्रष्ट की गई लंका की स्थिती का विभीषण द्वारा किया गया वर्णन बिम्ब योजना का सुन्दर उदाहरण है।

मेरे राष्ट्र की टूटी हुई
अपमानित पताकाएँ
भग्न अंगों की शोभायात्रा सी जा रही है।
जले और खण्डित भवन
जिक्हाहीन भी खमंगे सरीखे
हाथ फैलाए खड़े है
राजपथ
बेहोश, ऐंठी देह से नंगे पड़े है
टूटे हुए रथचक्र में

अन्धे अश्व हंसते जा रहे है.....

तेरा राष्ट्र

इस युद्ध में

रौंध डाला जायगा कल राम ?

इसी प्रकार भाद्र पद में वृष्टि के बीच वासुदेव एक प्रतीक भी एक सफल प्रयोग है। वासुदेव का अर्थ यहां मात्र कृष्ण नहीं बल्कि संकटों के ऊपर विजय पाने वाले व्यक्तित्व का प्रतीक है।

कुछ विचित्र प्रयोग

‘उस वृद्ध, ठंडी शिला से’ में कवि ने अपनी रचना में कहीं कहीं विरोध मूलक शब्दावली का प्रयोग करके अर्थ की चारुता को बढ़ाया है। समापनी समारंभ एक ऐसी शुरुआत की शुरुआत के साथ ही उसका परिणाम और अंत भी लक्षित हो रहा है चूंकि यह कृति एक काव्यनाटक है इसलिए इसमें यथार्थ व्यवहार के बोध के लिए या तो अर्द्ध चर्चित शैली का प्रयोग किया गया है। या कहीं कहीं पर लेखन ने प्लुत ध्वनियों ‘‘वो SS अ’’ जामवंत के कथन में इसका प्रमाण देखा जा सकता है।

वो देखे प्रभु!

वो SS उन

मेघों के पीछे

वहाँ.....

कहीं कहीं कवि ने अव्याकरणिक प्रयोग भी किए हैं या ऐसे प्रयोग हैं जिन की अर्थ संगति स्पष्ट नहीं है जैसे ‘‘नख से शिख तक उज्ज्वलमय मंडित किन्तु अस्पष्ट’’ यहाँ उज्ज्वल शब्द का प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से सही प्रतीत नहीं होता है। ‘‘उज्ज्वलता’’ शब्द होना चाहिए था इसी प्रकार ‘‘वृद्ध ठंडी शिला से इतिहास के सम्मुख’’ में शिला का विशेषण ‘‘वृद्ध’’ अव्याकरणिक प्रयोग है ‘‘नितांति एकांत’’ प्रयोग में व्याकरण की दृष्टि से प्रयोग सही नहीं है। इसे नितांत होना चाहिए था।

खण्ड रचना शिल्प

प्रस्तुत काव्य एक खण्ड काव्य है और इसके अंतर्गत चुना कथानक ‘‘रावण से युद्ध’’ किया जाये या नहीं इस समस्या को लेकर प्रारंभ हुआ है एक संक्षिप्त कथा संध्या से लेकर प्रत्युष बेला तक घटना चक्र अर्थात् कुछ घंटों का ही घटना चक्र को सीधे-साधे शिल्प में वर्णित किया गया है जिसमें केवल एक आभ्यंतर कथा है जो आकाश से घटित होती है जिसमें दशरथ और जटायु की आत्माएँ राम से वार्ताएँ करती हैं।

नाटकीयता और नाट्य विधान

प्रस्तुत कृति एक काव्यनाटक है जिसमें काव्य के साथ साथ नाटकीयता को भी स्थान दिया गया है सच है कि नाटकीय विधान की दृष्टि से इसकी कथा को चार अंकों में बांटा गया है। अंक से पूर्व इसमें रंगमंचीय निर्देश भी दिए गए हैं और बीच-बीच में भी उनकी योजना की गई है स्पष्ट है कि कथानक न के बराबर है फिर भी संशय के उभरते हुए द्वन्द ने घटना के अभाव की कुछ अंशों में पूर्ति की हैं क्यों कि इसमें जिज्ञासा और रहस्य दोनों भरे हुए हैं और अंत में मंत्री परिषद के स्थल पर बड़ा ही रोचक तर्क-वितर्क होता है और लगता है कि राम युद्ध के लिए आज्ञा नहीं देंगे किन्तु उन्हें यह कहकर परिषद की इच्छा के द्वारा अस्वीकृत स्वीकृत प्रदान की है जिसकी सार्थकता कवि ने आधे मन से युद्ध न करने के निर्णय द्वारा की है हम इसे एक सफल नाटक तो नहीं मान सकते किन्तु नाटकीय त्वरा का प्रयोग दूसरे अंक में राम के द्वारा छाया को ललकारने में देखा जाता है। कहीं-कहीं संवाद भी रोचक हैं अगर नाटक नहीं तो इसे नाटक का भ्रम देने वाली एक रचना तो कहा जा सकता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कवि नरेश मेहता की गणना हिन्दी के ऐसे नवीन कवियों में की जाती है जिन्होंने जीवन और जगत से जुड़े हुए विभिन्न प्रश्नों पर नितांत नई दृष्टि से विचार किया है। युद्ध एवं शांति, व्यष्टि एवं समष्टि और इसी से जुड़ी हुई अनेक सांस्कृतिक और मानवीय समस्याओं को कवि ने आधुनिक संदर्भों में व्यक्त किया है उनकी कविताएँ प्रबुद्ध पाठक की समस्त चेतना शक्ति को उद्बुद्ध करने में सर्वथा समर्थ हैं।

मूल ग्रंथ: ‘संशय की एक रात’ (खण्ड काव्य) नरेश मेहता।

हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बंबई 4, (1962)

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नई कविता, नई आलोचना और काव्य कुमार विमल, भारती भवन, पटना (1963)।
2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में जीवन मूल्य - डॉ. भरत कुमार सिंह
3. नयी कविता सीमायें और संभावनायें - गिरिजा कुमार माथुर नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली (1972)
4. आधुनिक हिन्दी काव्य में जीवन मूल्य - हुकमचन्द राजपाल, भारतीय संस्कृतभवन जालंधर (1993)
5. स्वाधीनता कालीन हिन्दी साहित्य के जीवन मूल्य - रामगोपाल शर्मा ‘दिनेश’ रिसर्च पब्लिकेशन इन सोशल साइंसेस अंसारी रोड दरियागंज दिल्ली 6 (1973)

उनके कार्यों के लिए जागीरें भी दान में दी जाती थी, जो वापस नहीं लेते थे। इसीलिए राजस्थान में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध रही है—

“उदक उथापै ताही उदक लागे नाही।”⁶

मेवाड़ के शासक गौ, ब्राह्मण और चारणों की रक्षा करना अपना धर्म समझते थे।⁷ चारण जाति का प्रमुख कार्य गीत और कविताएँ लिखना था। ये अपने आश्रयदाता का राजाश्रय पाकर पद्यमय इतिहास लेखन का कार्य भी करते थे। उदाहरण स्वरूप में गिरधर आसिया ने अपने आश्रयदाता शक्तावत सामन्तों का पद्यमय इतिहास सगतरासो नाम से लिखा है।⁸ भील जाति का मेवाड़ के प्रशासन एवं सेना में गौरवशाली योगदान रहा है। अतः प्रताप ने उन्हें क्षत्रियों के समान ही सम्मान दिया, फलस्वरूप आगे चलकर मेवाड़ राज्य चिह्न में भी क्षत्रिय सरदार के साथ भील योद्धा को भी अंकित किया गया।⁹

अन्य जातियाँ

मेवाड़ में तत्कालीन समाज में राजपूत, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि के अतिरिक्त स्वर्णकार, जाड़िया, जौहरी और पटवा जाति का उल्लेख भी मिलता है, जो आभूषण बनाने संबंधी कार्य करती थी। लुहार, कुम्हार, धोबी, सुथार, नाई,¹⁰ तेली, तम्बोली आदि निम्नवर्गीय जाति के लोग अपने पैतृक कार्यों के साथ-साथ खेती-बाड़ी संबंधी कार्य भी करते थे। इसके अलावा छीपा, कंसारा, रेगर, सालवी, कसाई, चमार, सिकलीगर, गांछी, बोला-भंगी, पटेल, डांगी, कंजर, चतारा, मणिहार, मीनाकार, कालबेलिया, सांसी, बागरिया, गाडोलिया, लोहार आदि अपने पैतृक काम काज में लगे हुए थे। पशुपालक जातियों में गायरी, रेबारी, व गुर्जरों का महत्वपूर्ण स्थान था। गुर्जरों को तो राजपूत वीरता में अपने समान समझते थे। वीर धाय भाई गोपाल ने सामन्त नरहरि की सेना में रहकर महिनाल युद्ध में अपनी वीरता का प्रदर्शन करते हुए शत्रु सेना का संहार किया तथा उसके पिता जोधा धायभाई ने महाराणा की सेवा सुश्रुषा की थी।¹¹

मध्यकालीन मेवाड़ के समाज में मुस्लिम समाज भी निवास करता था। मुस्लिम समाज के लोग रंगरेज, सिकलीगर आदि वर्ग में रहते हुए सभी के साथ सुमधुर व सौहार्दपूर्ण तरीके से रहते थे। मुस्लिम समाज के लोग भी देश सेवा व युद्धों के साथ प्रशासनिक कार्यों में भी योगदान देते थे। सबसे प्रसिद्ध उदाहरण

हकीमखां सूर का था, जिन्होंने महाराणा-प्रताप के सहयोगी रहते हुए मुगल विरोधी संघर्ष में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

परिधान और शृंगार

मध्यकालीन मेवाड़ में पुरुष वर्ग में साधारण जन अधोवस्त्र एक धोती तथा एक उत्तीय वस्त्र जो कंधे के ऊपर से होकर दाहिने हाथ के नीचे से जाता था, को पहनता था। छोटे बच्चे प्रायः नग्न रहते थे। पुरुष सिर पर पगड़ी धारण करते थे। युद्धकाल में सामन्तों व बादशाही सैनिकों की वेशभूषा, अस्त्र-शस्त्र तथा हाथी-घोड़ों की सज्जा की जानकारी सगतरासो में अनेक स्थलों पर मिलती है। बादशाह के सैनिक सिर पर कलंगी धारण करते थे। तथा कच्छी पहनते थे। वे अपने साथ उत्तम धार की तलवारें, गुरज, गुप्तियाँ तथा कड़ियों से कसकर चौपड़ी कतियाँ भी रखते थे। हिन्दू सामन्त युद्ध के समय नीले रंग की पगड़ी शरीर पर कवच, सिर पर टोप धारण करते थे। उनकी कमर में तलवार, भाला और कटार बाँधी रहती थी।¹² महिलाओं के परिधान में मुख्यतः घाघरा, लहंगा, साड़ी, काँचली, कुर्ता आदि शामिल थे, जिनमें अलंकरण, छपाई एवं कसीदे का काम किया जाता था।¹³

मेवाड़ की स्त्रियाँ भी सौन्दर्य प्रेमी रही हैं जो सिर पर बोर, शीशफूल, रखड़ी व टीकड़ा (टीका), कानों में कर्णफूल, पीपलपत्रा, फूलझुमका, अंगोट्या, झेला, लटकन, हाथों में कड़ा, कंगन, कंकण, गजरा, चूड़ी, तथा अंगुलियों में बीटी, हथपान, वीँछियां तथा पैरों में कड़ा, लंगर, पायल, पायजेब, घूँघरू आदि आभूषण पहनती थी। निम्नवर्गीय तथा भील स्त्रियाँ सीपीयों, कोड़ियों और बबूल की कलियों के गहने पहनती थी।¹⁴ पुरुष भी आभूषणों को पहनने के शौकीन थे।¹⁵

स्नान-पान

मध्यकालीन मेवाड़ के समाज में शाकाहारी एवं मांसाहारी भोजन का प्रयोग किया जाता था। गेहूँ,¹⁶ यव (जौ) का प्रमुख खाद्यान्न के रूप में उपयोग होता था। मक्का, ज्वार, कांगणी, कोदरा, सामा भी खाद्यान्न में काम लिये जाते थे।¹⁷ राजपूतों में विशिष्ट अवसरों पर आयोजित भोजन में राजा या सामन्त का सबके साथ एक ही पंक्ति या पंगत में बैठकर भोजन करने की परम्परा रही थी। जिसे उनके प्रति आदर का प्रतीक माना जाता था।¹⁸ ऐसे ही एक विशिष्ट अवसर पर युद्ध पर जाने से पूर्व नरहरि द्वारा दिये भोज का

वर्णन कवि गिरधर आसिया ने सगतरासो में किया है। भोजन के उपरान्त रायता परोसने की प्रथा थी।¹⁹ सगतरासो में पाँच प्रकार के रायता परोसने का उल्लेख मिलता है।²⁰ भोजन पश्चात् पान-सुपारी कपूर खाने की प्रथा भी रही थी।²¹

संयुक्त परिवार प्रथा

मेवाड़ में सामान्यतः पितृसत्तात्मक पद्धति पर आधारित संयुक्त परिवार प्रणाली का प्रचलन रहा था। परिवार के सभी लोग अपने परिवार के मुखिया की छत्रछाया में एक साथ रहना गौरवपूर्ण समझते थे। भूमि पर परिवार का सामूहिक अधिकार होता था। घरेलू कुटीर उद्योगों में भी एक से अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता के कारण संयुक्त परिवार में रहना सभी के लिए लाभदायी था। आलोच्यकाल में हम देखते हैं कि महाराणा प्रताप भी अपनी सभी रानियों एवं पुत्रों के साथ मुगल प्रतिरोध से उत्पन्न विकट परिस्थितियों में जंगल प्रवास के समय अपने परिवार के साथ ही रहे।

शिक्षा

मेवाड़ में परम्परागत रूप से शिक्षा हिन्दू पद्धति पर आधारित थी। मेवाड़ में पाली, संस्कृत, प्राकृत के साथ राजस्थानी भाषा का प्रचलन था। प्राचीन कालीन आश्रम की भांति आश्रम एवं पाठशाला के रूप में संस्थागत शिक्षण प्रणाली का विकास हुआ। ये शिक्षण केन्द्र खुले में चलते थे। राजपरिवार के बालक भी इनमें शिक्षा प्राप्त करते थे।²² शिक्षण में मुख्यतः अक्षर ज्ञान के साथ-साथ गणित, पुराण, नीति, ज्योतिष, खगोल-विद्या, साहित्य व्याकरण, शेषज विज्ञान आदि विषय शामिल थे, जिनका ज्ञान सामान्य विद्यार्थियों को दिया जाता था।²³ राजकुमारों को तर्कशास्त्र, न्यायशास्त्र, धर्मशास्त्र, व्याकरण और राजनीति के साथ-साथ युद्ध-विद्या का कौशल भी सिखाया जाता था। निम्न वर्ग में शिक्षा का प्रचार नहीं था।

विवाह

तत्कालीन मेवाड़ के समाज में विवाह के लिए कोई निश्चित आयु नहीं होती थी। कभी भी लड़की व लड़के के माता-पिता या परिवार के वरिष्ठ सदस्य परस्पर मिलकर संबंध निश्चित करते थे, इसके पश्चात् शुभ मुहूर्त देखकर सगाई का दस्तुर 'टीका' किया जाता था।²⁴ समाज में 'दहेज' व 'नेग'²⁵ का भी प्रचलन था, जिससे विवाह अत्यधिक खर्चीले होने लगे फलस्वरूप 'कन्या-वध' जैसी कुप्रथा को प्रोत्साहन मिलने लगा।

बहुपत्नी विवाह भी प्रचलित था।²⁶ जो मुख्य रूप से उच्च वर्ग में प्रतिष्ठित था। पति की मृत्यु अथवा पति के अन्याचार से दुःखी स्त्री किसी अन्य पुरुष को अपना पति बना लेती थी, जो नाता प्रथा कहलाती थी। नाते से उत्पन्न सन्तान को समाज में वैध माना जाता था। विवाह की रस्में विधिपूर्वक सम्पन्न कराई जाती थी। जैसे राजपूतों में टीके की रस्म ब्राह्मण व भाटों द्वारा सम्पन्न कराई जाती थी।²⁷

समाज में स्त्रियों की स्थिति

मेवाड़ के मध्यकालीन समाज में स्त्रियों का बहुत सम्मान था। सभी धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों व मांगलिक अवसरों में महिलाओं की सहभागिता रहती थी।²⁸ मेवाड़ राज्य में पूर्व में पर्दा-प्रथा का प्रचलन नाममात्र ही था। कालान्तर में मुस्लिम प्रभाव के परिणाम स्वरूप यहाँ भी पर्दा-प्रथा का प्रचलन शुरु हुआ। मेवाड़ में सती प्रथा का प्रचलन था। राजपरिवार एवं कुलीन वर्ग में सती प्रथा होना उत्तम कार्य माना जाता था। महाराणाओं के अनेक पत्नियाँ व उपपत्नियाँ होती थी उनमें से अनेक पत्नियाँ व उपपत्नियाँ सती भी होती थी। शक्तिसिंह के साथ उसकी तीन रानियों के सती होने का उल्लेख मिलता है।²⁹ महाराणा अमरसिंह के साथ उसकी 10 रानियाँ, 9 खवासों और 9 सहेलियाँ सती हुई थी।³⁰ गिरधर आसिया भी सामन्त नरहरि के साथ उसकी रानियों के सती होने का उल्लेख करता है।³¹ समाज में विधवा-विवाह की अनुमति नहीं थी। इन सब कुप्रथाओं के बावजूद इस युग में सामान्यतः स्त्रियों का पारिवारिक जीवन स्नेहमय व सुखमय था। मेवाड़ में दासप्रथा थी, दासों को गोला-गोली, दास-दासी और चाकर आदि नामों से पुकारा जाता था। महाराणा अपने दैनिक राजकीय एवं घरेलू काम दासों के द्वारा पूरा करवाते थे।³² सामन्तों, सरदारों, धनी सेठों तथा उच्च अधिकारियों के वहाँ भी अनेक दास-दासियाँ काम करती थी। स्थानीय दास-दासियों को परिवार का अंग मानकर विभिन्न त्यौहारों, उत्सवों एवं मांगलिक अवसरों पर आभूषण, वस्त्रादि ईनाम के रूप में दिये जाते थे।³³

साधारण जन में अन्ध-विश्वास का बड़ा प्रचलन था। लोग जादू-टोनों, भूत-प्रेत, डायन/डाकन आदि में विश्वास करते थे।³⁴ महिलाओं में यह कि आचरण विशेष रूप से पाया जाता था। अधिकांश लोग अपने बच्चों के बीमारू होने पर उनका ईलाज नहीं कराकर

झाड़फूंक और जादू-टोना करवाते थे। समाज में ब्राह्मण व गौमाता को मारना महापाप समझा जाता था। लोग तरह-तरह के शकुन-अपशकुन में विश्वास करते थे और शकुन संबंधित साहित्य को तत्कालीन समय में काफी महत्व प्राप्त था।³⁵

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गिरधर आसिया-सगतरासो, सम्पा. हुकुमसिंह भाटी, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, 1987, पद्य-85, पृष्ठ 495-496।
2. श्यामलदास-वीर विनोद, भाग 2, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1986, पृ. 185।
3. गिरधरआसिया-सगतरासो, सम्पा. हुकुमसिंह भाटी, प्रतापशोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, 1987, पद्य-84, पृ. 496।
4. गोपीनाथ शर्मा-मेवाड़-मुगल सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 1976, पृ. 148।
5. गिरधरआसिया-सगतरासो, सम्पा. हुकुमसिंह भाटी प्रतापशोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, 1987, पद्य-83, पृ. 495।
6. आर.पी.व्यास-महाराणा प्रताप, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2018, पृ. 18।
7. गिरधरआसिया-सगतरासो, सम्पा. हुकुमसिंह भाटी प्रतापशोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, 1987, पद्य-83, पृ. 495।
8. गिरधरलाल शर्मा एवं पावलदास आसिया-प्राचीन राजस्थानी गीत, राज. विद्यापीठ, उदयपुर।
9. विजय कुमार-प्रताप एण्ड हिज टाइम्स, स्मारिका, पृ. 72।
10. गिरधरआसिया-सगतरासो, सम्पा. हुकुमसिंह भाटी, प्रतापशोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, 1987, पद्य-83, पृ. 495।
11. वही, पद्य-82, पृ. 494।
12. वही, पद्य-281-282, 466 (53.56) पृ. 493-494।
13. गोपीनाथ शर्मा-राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 1976, पृ. 85-86।
14. शिवचरण मेनारिया-उत्तर मुगलकालीन मेवाड़, संधिय प्रकाशन, दिल्ली, 1986, पृ. 136।
15. हजारी प्रसाद द्विवेदी-प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृ. 76।
16. रणछोड़ भट्ट कृत राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग-13, पद्य-25, पृ. 137।
17. गोपीनाथ शर्मा-राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 1976, पृ. 13।
18. जेम्स टॉड-एनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटिज ऑफ राजस्थान, भाग 1, 1971, पृ. 238।, गिरधरआसिया-सगतरासो, सम्पा. हुकुमसिंह भाटी प्रतापशोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, 1987, पद्य-670, पृ. 450-51।
19. वही, पद्य-670 (221), पृ. 450।
20. वही, पद्य-670 (228), पृ. 453।
21. वही, पद्य-670 (231), पृ. 455।
22. रणछोड़ भट्ट-एकलिंग महात्म्य, सर्ग-19, पद्य-8-11।
23. शिवचरण मेनारिया-उत्तर मुगलकालीन मेवाड़, संधिय प्रकाशन, दिल्ली, 1986।
24. गोपीनाथ शर्मा-राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 1976, पृ. 62।
25. विवाहादि विशेष अवसर पर दिया जाने वाला परम्परागत ईनाम नेग कहा जाता था।
26. गोपीनाथ शर्मा-राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 1976, पृ. 388।
27. गोपीनाथ शर्मा-राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1987, पृ. 422।
28. वही, पृ. 445।
29. बान्सी की तवारीख-प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर।
30. देवीदान-मेवाड़ के राजाओं की रानियों, कुंवरों एवं कुंवरीयों के हाल, राज. विद्यापीठ, उदयपुर, 1985।
31. गिरधर आसिया-सगतरासो, सम्पा. हुकुमसिंह भाटी, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, 1987, पद्य-85, पृष्ठ 495-496।
32. राजलोक रिकॉर्ड, उदयपुर, वि. 1781।
33. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास भाग 2, राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर, 1994।
34. वात संग्रह, एम.एस.पत्र-37।
35. शकुन विचार, ह.प्र.ग्रन्थ सं. 96।

भारतीय समाज में दलित स्त्री चिन्तन

दिनेश कुमार पाल

शोधार्थी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उत्तरप्रदेश)



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

वर्तमान समय में 'दलित स्त्री विमर्श' चिन्तन का विराट क्षेत्र बना हुआ है और यहाँ प्रश्न बराबर घूम रहा है कि क्यों हम वास्तविक रूप से हिन्दी साहित्य पढ़ रहे हैं? आज स्त्री को सामाजिक दृष्टि को निमित्त मात्र समझ लिया जाता है। दलित स्त्रियों के ऊपर दिन पे दिन अत्याचार बढ़ता जा रहा है। उनका हमारा पुरुषवादी स्त्री शोषण करने का अधिकार मान कर बैठे हैं। वह इसलिए किया जा रहा है क्योंकि दलित स्त्रियों को इतिहास में कहीं भी जगह नहीं दी गई। आज हमारे पुरुषवादी विचारधारा की सोच बदलनी होगी और दलित स्त्री के चिन्तन को मजबूती देना होगा। तभी सच्चे भारतीय समाज की संरचना हो सकती है।

संकेताक्षर : दलित स्त्री चिन्तन, इतिहास, औपनिवेशिक, सबाल्टर्न, खोखला, जायकर्म, खलनायिकी, खेती-बाड़ी, कोरोना-19, परिधान, सांस्कृतिक।

आज इतिहास संघर्ष का विराट क्षेत्र बना हुआ है। इतिहास का संबंध राजनीतिक और सामाजिक वास्तविकताओं से ही नहीं साहित्य और संस्कृति से भी होता है। हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की एक लंबी परंपरा रही है जो फ्रांसीसी विद्वान गार्सा दा तासी से शुरू होती है और जॉर्ज ग्रियर्सन, मिश्र बंधु, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी से होती हुई आजादी के बाद भी कई तरह से इतिहास लेखन के रूप में सामने आता रहा है। हिंदी साहित्य की परंपरा को इतिहास में शामिल करते हुए साम्राज्यवाद विरोध और सामंतवाद विरोध को तो ध्यान में रखा गया लेकिन स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय के मूल्यों को प्रायः भुला दिया गया है। ब्राह्मणवादी इतिहास लेखन और अंग्रेजों ने हमारे औपनिवेशिक इतिहास लिखे। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने स्वर्ण युग खोजा, मार्क्सवादियों ने वर्ग संघर्ष से इतिहास की व्याख्या की। सबाल्टर्न इतिहास की दृष्टि से जमीनी इतिहास लिखने की कोशिश की। अभी तक के सारे इतिहासकारों ने केवल खोखला साहित्य का इतिहास लिखा। इन सब के बावजूद दलित समुदाय का इतिहास रह गया। आदिवासी समुदाय का इतिहास उजागर नहीं हो पाया या फिर इतिहास में उन्हें केवल निमित्त मात्र समझ लिया गया। अभी तक सच्चे अर्थों में इतिहास लेखन बाकी है। जब तक स्त्री विमर्श और दलित साहित्य को एक साथ लेकर इतिहास नहीं लिखा जाएगा तब तक हिंदी साहित्य का इतिहास आधा अधूरा ही रहा है और रहेगा।

इतिहास की घटनाओं से वर्तमान की राजनीति को तय करना खतरनाक हो सकता है शायद इसलिए गांधी जी ने कहा था- "वह देश भाग्यशाली है जिसका कोई इतिहास नहीं है।" गांधी जी के इस कथन से लगता है कि देश में अंबेडकरवादी विचारधारा के लेखकों से उनको खतरा था क्योंकि सच्चाई का सामना करना सिर्फ दलित मजदूर वर्ग ही कर सकता है। साहित्य के अनुशीलन के लिए इतिहास की समझ होनी चाहिए पर समस्या तब पैदा होती है जब इतिहास को एक खास अर्थ में अमूल्य कर दिया जाता है। समस्या इतिहास से नहीं इतिहास वाद से है, वर्चस्व और अधीनता का केवल एक ही रूप नहीं होता है। इतिहास के किसी भी दौर में स्त्री के लिए पितृसत्ता, दलित के लिए सवर्ण, आदिवासी के लिए गैर- आदिवासी मुख्य वर्चस्वकारी सरकारी शक्ति रहे हैं। चिन्तन और चेतना का सम्बन्ध इतिहास से है तो विमर्शों का संबंध नव इतिहास वाद से है।

आधुनिक युग का मानव मंगल और चंद्रमा पर पहुंचने का प्रयास कर रहा है। पर्याप्त प्राकृतिक संपदाओं से संपन्न और विशाल जनसंख्या होने के बावजूद भारत उन्नति के दौर में यदि पिछड़ा है तो उसका प्रमुख कारण है- वर्ण, जाति, धर्म और लिंग पर आधारित हमारी सोच। स्त्रियों में भी दलित स्त्री एक तो स्त्री होने के कारण दूसरे दलित होने के कारण दोहरे शोषण की शिकार है। स्त्रियों का संघर्ष वहीं से शुरू होता है जहां से इनका शोषण शुरू होता है। इतिहास लेखन में खलनायिकी विचारधारा का शिकार सदैव स्त्री होती रही है।

तस्लीमा नसरीन का मानना है कि- “कई लोगों का सोचना है कि वैदिक युग में नारी को यथा युक्त सम्मान और मर्यादा दी जाती थी। इस्लाम के आविर्भाव के बाद वह मर्यादा अचानक मुक्त हो गई लेकिन मैं इसे मानने को तैयार नहीं। सहिता, ब्राह्मण, अरण्यक, उपनिषद् और सूत्र साहित्य ही मुख्य रूप से वैदिक साहित्य है। ईसा पूर्व 12 वीं से ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के बीच रचित साहित्य द्वारा समाज का जो चित्र उभर कर सामने आता है उसमें नारी को कहीं भी मनुष्य नहीं समझा गया। इसी तरह इस्लाम धर्म की पुस्तकें भी स्त्री मुक्ति के लिए बाधक मानते हुए कई उदाहरण पेश किए हैं।”

आज भारत में दलित स्त्री विमर्श कार की लगभग सभी महिलाएँ प्राचीन ग्रंथों को ही अपनी दुर्गति का जिम्मेदार मान रही हैं। भारतीय समाज में जब तक एक स्त्री को एक स्त्री के रूप में नहीं देखा जाएगा तब तक उसके साथ न्याय नहीं हो पाएगा क्योंकि वेद, पुराण, उपनिषद्, महाभारत, रमायण आदि में स्त्री को कहीं देवी तो कहीं राक्षसी आदि कहकर एक स्त्री के अस्तित्व को मिटाने का काम किया गया है। भारतीय समाज में पुरुषों के द्वारा स्त्री को दासी के रूप में देखा जाता है। पेरियार ई.वी.रामासामी का मानना है कि “मंगल सूत्र का निहितार्थ यह है कि जब लड़की के गले में बाँधता है, तभी से वह उसे अपनी दासी मान लेता है और लड़की भी उसकी दासी बनना स्वीकार कर लेती है।” जिनमें कौशल्या बैसंती, रजनी तिलक, अनीता भारती, डॉ. कुसुम मेघवाल, रजत रानी मीनू, माधुरी छेड़ा, सुशीला टाकमौरें, गीताबाई गायकवाड, तनु बाई काम्बले, लक्ष्मी नायक, सुलोचना डोंगरे, कीर्ति पाटिल, शांताबाई दांदी आदि सैकड़ों नाम हैं जिन्होंने स्त्री मुक्ति की कमान अपने हाथों में संभाला है।

भारत की तीन-चौथाई आबादी गाँवों में बसती है शायद इसलिए छायावादी प्रकृति के सुकुमार कवि ‘सुमित्रानंदन पंत’ ने भारत माता को ग्रामवासिनी कहा है। खेतों में निराई से लेकर गली की सफाई, गाय-भैंस के लिए चारा-पानी खासकर दलित महिलाएं काम करती देखी जाती हैं दूसरो के घरों में साफ-सफाई करना एवं खेती-बाड़ी के काम पर जाते समय महिलाएं हवस का शिकार भी बनती हैं। अनिता कुमारी लिखती हैं- “एक तरफ तो वह उस गांव के विकास में भी जी तोड़ मेहनत करती हैं दूसरी तरफ दो जून की रोटी के लिए अपनी अस्मिता तक को दांव पर लगाना होता है। ना मालूम उस वक्त देश में राष्ट्रीय समाचारपत्र दूसरे या तीसरे पन्नों पर इस बात की एक छोटी सी खबर देकर अपना पल्ला झाड़ लेते हैं जबकि मुख्य पृष्ठ पर इन खबरों को पेश करना चाहिए।”

आज जब पूरा विश्व वैश्विक महामारी कोरोना-19 से जूझ रहा है। तब भी हमारे देश के महिलाएँ कठिन समय में धैर्य के साथ काम करती नज़र आ रही हैं। परेशानी तब होती है जब उनको उस काम के बदले उनकी मेहनत को एक स्त्री के पैमाने पर तौल दिया जाता है। आज मनरेगा में पुरुषों की औसत में दलित महिलाओं की संख्या ज्यादा पाई जाती है। लेकिन महिलाओं को दस दिन के मजदूरी के बदले पाँच दिन की ही दिहाड़ी देकर हाथ साफ कर लिया जाता है। आमतौर पर रोजगारी के काम में भी पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को कम पैसे दिया जाता है। खेल के क्षेत्र में भी दलित स्त्रियों को शोषण का शिकार होना पड़ता है। पहले तो खेल समिति के द्वारा उनको पास नहीं किया जाता अगर पास भी किया जाता है उनके स्त्री होने पर शर्त रखी जाती है। वह एक शर्त के लिए हम-बिस्तर हो तो तुम्हारा नाम चयन किया जाएगा। ऐसी गन्दी मानसिकता के चलते कौन से देश की महिला आगे बढ़कर हिस्सा लेगी ? और कौन से देश की महिलाएँ सशक्त होगी ? आज के समय का बहुत ही बड़ा प्रश्न है हमारे समाज और हमारे देश के सामने।

हर जीवित प्राणी का अपना सपनों की दुनियाँ होती है। वह चाहे दलित, पुरुष हो, या दलित स्त्री हो। इसलिए स्त्रियों को भी अपने सपनों को साकार करने के लिए स्वतंत्र है। समकालीन सुप्रसिद्ध कथाकार पंकज सुबीर का कथन है कि “सपने तो लड़कियों की आँखों में हर युग मे बसते रहे हैं। ये अलग बात है कि पूरे किसी युग में नहीं हुए।”

आज भारत को आजाद हुए 73 साल बीत चुके हैं। फिर भी भारतीय महिलाओं में विशेषकर दलित महिलाओं की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। भारतीय समाज की यह विडम्बना रही है कि लड़का-लड़की पैदा होने में स्त्री को ही दोषी ठहराया जाता रहा है। अगर किसी स्त्री को लगातार तीन-चार लड़की होने पर स्त्री को पुरुष के द्वारा प्रताड़ित किया जाता रहा है। लेकिन लड़की और लड़के में भेद-भाव रखने वाले पुरुषों को मालूम होना चाहिए कि लड़की पैदा होने में पुरुष ही जिम्मेदार होता है न कि महिला। क्योंकि महिलाओं में गुणसूत्र एक्स-एक्स और पुरुष में गुणसूत्र एक्स-वाई। भारतीय संविधान में भी महिलाओं की सुरक्षा के लिए कई आयोगों की स्थापना हुई है। प्रोफेसर विमल थोरात के अनुसार, - “दलित स्त्री तिहरे शोषण का शिकार है, जाति के आधार पर, महिला होने का धार पर, गरीब होने के आधार पर। दलित महिलाएं तीन तरह का शोषण झेलती हैं। विमल थोरात का मानना है कि दलित महिलाओं को अंबेडकर के विचारों का प्रभाव ग्रहण करना होगा और दूसरा पितृसत्ता समाज में पुरुषों की अपनी सोच बदलनी होगी। अगर हम सही मायने में महिलाओं को उनकी समस्याओं से निजात दिलाना चाहते हैं तो उन्हें स्वतंत्र करना होगा।” डॉ. धर्मवीर ने मातृ सत्ता और पितृसत्ता के अलावा एक जारसत्ता की परिकल्पना भी भारतीय वर्ण व्यवस्था के संदर्भ में की है। मोटे तौर पर इसका मतलब सवर्ण पुरुषों द्वारा दलित स्त्रियों के साथ विवाहेतर संबंध कायम करना एवं शोषण करना उन्हें रखल बनाना और उन्हें गर्भवती कर अपनी संतान का बोझ दलित पुरुषों या दलित समुदाय पर लादना समझा जा सकता है। ये जार कर्म बलात्कार से अलग एक जाति की सामाजिक दुर्बलता का लाभ उठाते हुए उनकी स्त्रियों के यौन शोषण का एक रूप है। डॉ. धर्मवीर का मानना है कि दलितों ने अपने सन्त पैदा किए हैं सन्यासी नहीं आगे वह लिखते हैं ‘थेरीगाथा की स्त्रियाँ’ “मैंने जानबूझ कर गलत रखा है। लेकिन गलत शीर्षक रख कर मैं यह बताना चाहता हूँ कि बुद्ध ने मेरी स्त्रियाँ छीनी हैं। घर से बेघर करके और विवाह से छीन कर स्त्रियों को संन्यास वाली सामाजिक मृत्यु की भिक्षुणियाँ बनाना उन का धार्मिक अपहरण कहा जाना चाहिए। असल में, भारत में ब्राह्मण, बौद्ध और जैन दर्शन के संन्यास व्यक्तिगत स्तर के अपने-अपने मोक्ष, निर्वाण और कैवल्य के लिए अभी तक भी इस संसार में भ्रम में पड़े हुए हैं। आजीवक की दृष्टि इन

तीनों से भिन्न, लौकिक और सामूहिक है।” जहाँ तक कथ्य की बात है तो सामंती वर्ग व्यवस्था में जमीदारों द्वारा दलित स्त्रियों का भयानक यौन शोषण एक भयावह सच्चाई है। अनीता पवार अपने एक साक्षात्कार में कहती हैं कि-“दलित पुरुषों के भीतर मनुवाद दलित स्त्रियों के साथ वही व्यवहार करता है जैसा कि सवर्ण दलित के साथ।”

भारत देश अनेकता में एकता वाला देश है। जहाँ अनेक सांस्कृतिक एवं अनेक भाषी लोग रहते हैं। इसी कारण से कई फिल्मकारों ने भारत की विभिन्न जातियों एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को लेकर फिल्म बनाने का प्रयास किया। भारतीय सिनेमा जगत आज विश्व पटल पर अपनी पहचान बना रहा है। लेकिन हिन्दी साहित्य के समान भारतीय सिनेमा भी दलित महिलाओं को वह स्थान नहीं दिया जिसकी वह अधिकारी थी।

अगर बात हिंदी सिनेमा की जाए तो दलित एवं दलित स्त्रियों के अधिकार को लेकर सच्चे मायने में अभी तक कोई फिल्म नहीं आई है। आई है तो केवल सहानुभूति प्रकट करती है। दलित स्त्री की मूल चिन्तन और भोगे जाने वाले यथार्थ से हमारा हिंदी सिनेमा अभी तक अछूता ही समझा जा सकता है।

परिधान स्त्री चिंतन का गहरा विषय माना गया है। पुरुषवादी सत्ता में पुरुषों का बोलबाला होने के कारण स्त्रियों को यह नहीं पहनना चाहिए वह नहीं पहनना चाहिए। स्त्री पुरुष वादी दृष्टि की पसंद बनी हुई है। ‘पुरुष वादी सत्ता में पहने वही जो फबे आप पर’ यह वाक्य तो एक सिर से निरर्थक हो जाता है। किसी भी क्षेत्र में महिलाओं के आगे होने के आंकड़े बदलाव को दर्शाती हैं लेकिन परिवार नियोजन के मामले में महिलाओं का पुरुषों से आगे होना समाज और परिवार में उनके दायम दर्जे को ही यह बताते हैं। स्वास्थ्य परिवार सर्वेक्षण आकड़े के अनुसार परिवार नियोजन की जिम्मेदारी महिलाओं के कंधे पर है। सन् 2015-2016 के राष्ट्रीय परिवार सर्वेक्षण में परिवार नियोजन पुरुष नसबंदी की हिस्सेदारी 0.31 है। जबकि 75.31 प्रतिशत है, जबकि गर्भनिरोधक गोलियों का इस्तेमाल का प्रतिशत 8.58 किया जा रहा है। यहां भी महिलाओं को परिवार नियोजन के लिए मोहरा बनाया जा रहा है। यह विषय भी आज स्त्री चिंतन का गंभीर मुद्दा बना हुआ है। अभी हाल ही में मध्यप्रदेश में परिवार नियोजन नसबंदी कैम्प में महिलाओं की संख्या 75.00 प्रतिशत थी जबकि वहीं पुरुष केवल 5.00 प्रतिशत ही रहा।

कुल मिलाकर भारतीय समाज में दलित स्त्री चिंतन का प्रश्न बना रहेगा जब तक उसका जातीय शोषण का शिकार बन्द नहीं होगा। पुरुषों को अपनी स्त्रियों को बराबरी का अधिकार देना पड़ेगा और कथनी और करनी के भेद को मिटाना होगा। स्त्रियों की एक नई दुनिया बसाना होगा जहाँ सिर्फ प्रेम, समानता, समाजिक एकता, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक, आदि एकता स्थापित करना होगा। आज के दौर में कौशल्या बसंती, सुशीला टाकभौरें, उर्मिला पवार, विमल थोराट, रजत रानी मीनू, आदि लेखिकाएं अपना वर्तमान लिख रही हैं। साथ ही साथ इतिहास के गर्त में जा कर झलकारी बाई, ऊदा देवी पासी, पन्ना धाय, और सावित्रीबाई फुले जैसी वीरांगनाओं को प्रतिष्ठा का प्रतीक बना कर दलित स्त्री के चिन्तन में एक नई शक्ति का संचार कर रही हैं और समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जनसत्ता, 23 अक्टूबर 2016 रविवारी
2. तस्लीमा नसरीन- धर्म और औरत की गुलामी, हिंदुस्तानी त्रैमासिक, अक्टूबर-दिसंबर, 2016
3. जाति-व्यवस्था और पितृसत्ता,- पेरियार ई.वी. रामासामी, सम्पादक- प्रमोद रंजन, राधाकृष्ण पेपर बैक्स, दिल्ली पहला संस्करण: 2020
4. अनिता कुमारी- ग्रामीण विकास में दलित महिलाओं की भागीदारी का सवाल
5. चौपड़े की चुड़ैलें- पंकज सुबीर, शिवना प्रकाशन, सीहोर मध्य प्रदेश, पेपर बैक्स, प्रथम संस्करण 2017
6. दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर- विमल थोराट, अ.प. एंड डि.(प्रा.) लि., संस्करण: 2020
7. थेरीगाथा की स्त्रियाँ और डॉ. अम्बेडकर- डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण: 2005

‘रजतोपदेश महाकाव्यम्’ में वर्णित धर्म विषयक अवधारणा

ज्योति पालीवाल

शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

ज्ञान की सत्ता सदैव त्रिकालाबाधित होती है ये वेद ज्ञान पुंज ही है। वेदों में मनुष्य को जीवन की सार्थकता तथा सार तत्त्व से अवगत कराया गया है। मनुष्य को धर्म पक्ष का अनुसरण कर सदाचरण की ओर अग्रसर करते हैं। वेदों में देवताओं के वर्णन में ‘ऋतस्य गोपा’ (ऋत के परिरक्षक) ऋतायुः (ऋत का अभ्यास करने वाला) कहा गया है। ऋग्वेद में ऋत (धर्म या नियम) की कल्पना की गई है। प्रकृति एक नियम से चलती है वह ऋत है। उसी प्रकार संसार व समाज जिस नियम से चलता है वह धर्म या ऋत है। धर्म का अर्थ धारण करने योग्य अर्थात् जो अवश्य रूप से धारण किया जाए, जो जीवन का आधार है वही धर्म है। महाकवि शम्भुदयाल पाण्डेय प्रणीत रजतोपदेश वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गिरते जीवन मूल्यों तथा खोखले आदर्शों को आधार प्रदान कर धर्म, दया, मानवता का संदेश प्रदान करने वाला श्रेष्ठ ग्रन्थ है। प्रत्येक मनुष्य को उपदेशात्मक वाणी तथा धर्माचरण की महती आवश्यकता है। धर्म का वास्तविक स्वरूप अपनाकर, पाखण्डों तथा दिखावे से रहित होकर ही मनुष्य उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए ‘रजतजी’ के धर्मोपदेश भावी जीवन के लिए नींव का पत्थर है, जिसको अपने आचरण में लाने की महती आवश्यकता है।

संकेताक्षर : ऋत, संस्कृति, कीर्ति, धर्म, प्रजा, श्रुति, दर्शनम्, हिंसा, लोक, सनातन, दयां, मुक्ति।

भारतीय संस्कृति त्यागपूर्वक भोग की संस्कृति रही है। भोग तथा त्याग दोनों विरोधी प्रतीत होते हैं, किन्तु दोनों में समन्वय बनाए रखना ही हमारी संस्कृति की विशेषता है। जीवन तत्त्व की व्याख्या प्रस्तुत करने वाले चारों वेद-ऋक्, यजु, साम, अथर्ववेद हमारी संस्कृति के पोषक हैं। जो सदैव उच्च आदर्शों को उपस्थापित कर ‘सादा जीवन उच्च विचार’ की अवधारणा को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय संस्कृति विश्व की संस्कृति है, यह अतीत वर्तमान और भविष्य को समन्वित करती है। सभ्यता, ज्ञान, कर्म और उपासना के आधार स्तम्भों पर ही भारतीय संस्कृति का अस्तित्व है। भारतीय संस्कृति का स्वरूप निरन्तर प्रवाहमान रहा है। इसकी पावन धारा अजस्र रूप से बहती रही है। अपनी निजी विशेषताओं के कारण ही इसका अस्तित्व आज भी जीवन्त है।¹ अति प्राचीन होते हुए भी अपने गरिमामय स्वरूप को नित-नवीन बनाये रखने में सफल सिद्ध हुई है। समय-समय पर हुए परिवर्तनों को अपनाते हुए नवीन स्वरूप को धारण करते हुए अपने अस्तित्व को अमिट बनाए रखने में सफल हुई है। जो जड़ या कठोर होता है वह मिट जाता है जो लचीला है या जिसमें नम्रता है जो झुकना जानता है वह निरन्तर आगे बढ़ता रहता है। इस नियम को भी भारतीय संस्कृति ने सार्थक सिद्ध कर दिया है।

हमारी संस्कृति शाश्वत जीवन की वह प्रायोगिक पद्धति है जो सत्य, सनातन और अमर जीवन का आनन्दमय मार्ग है। इस संस्कृति की नींव सत्य, त्याग, तप, दान, सभ्यता, धर्ममूलक अर्थ, काम, मोक्ष तथा वर्णाश्रम की सुदृढ़ आधारशिला पर आधारित है।² धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-जीवन के ये चार पुरुषार्थ या लक्ष्य हमारी परम्परा में स्वीकार किये गये हैं। साहित्य या काव्य भी इन चारों पुरुषार्थों की परिपूर्ति के लिए हैं-आचार्य भामह कहते हैं-

धर्मादि साधनोपायः सुकुमार क्रमोदितः ।
काव्यबन्धोऽभिजातानां हृदयाह्लादकारकः ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधु काव्य निषेवणम् ॥^१

इसी सन्दर्भ में 'रजतमुनि जी' का यह वचन भी द्रष्टव्य है-

व्यपेतदोषैरनुभूतवृद्धैरातैर्यदुक्तंमुनिभिः स धर्मः
यस्मिन् कृते हृष्यति चान्तरात्मा मनः प्रसादः स
परो हि धर्मः ॥^१

अर्थात् दोषविहीन ज्ञान एवं अनुभाव वृद्ध यथार्थ कथन करने वाले मुनियों द्वारा जिसके सम्बन्ध में कथन किया गया है, वह धर्म है। जिसका आचरण करने पर अन्तरात्मा प्रसन्न होता है तथा मन पुलकित होता है वही श्रेष्ठ धर्म है।

धर्म वैशिष्ट्य- साहित्य और संस्कृति का सम्बन्ध सांख्य के सत्कार्यवाद का समर्थक है अर्थात् कारण के होने पर ही कार्यावस्था अव्यक्त कारण से व्यक्त होती है। कार्यकारण में अव्यक्तावस्था में रहता है। कारण के अभाव में कार्य की कल्पना सम्भव ही नहीं है। जैसा कारण होगा वैसा ही कार्य प्रकट होगा। भौतिकतावाद पर आश्रित संस्कृति का साहित्य कदापि आध्यात्मिक नहीं हो सकता है। हमारी संस्कृति धर्म पर आधारित आध्यात्मिकता को धारण किए हुए प्रेरणादायक संस्कृति रही है। भारतवर्ष आदिकाल से ही धर्मप्रधान देश रहा है। जन्म के साथ ही मनुष्य धर्म जुड़ जाता है। धर्म अर्थात् सत् मार्ग। जीवन का उचित मार्ग। जिस मार्ग पर चलकर मनुष्य अनुशासित जीवन जीता हुआ सत्य, ईश्वर, अध्यात्म से स्वयं को जोड़ता है। धर्म से विमुख मनुष्य अंधकारमय, क्लृप्त विचारों से न घिर जाये अतः हमारे वेद-पुराणों, स्मृतियों तथा उपनिषदों में धर्म की विशद चर्चा की गई है। धर्म शब्द का प्रयोग पुराकाल से हुआ है। ऋग्वेद में धर्म का प्रयोग नपुंसकलिंग तथा पुल्लिंग दोनों ही प्रकार से और विशेषण व संज्ञा दोनों ही रूपों में हुआ है। संज्ञा के रूप में धर्म शब्द का अर्थ 'धार्मिक विधि'। ऋग्वेद में भी ज्ञात है, 'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्' (ऋग् 10/90/16)

वस्तुतः ऋग्वेद में धर्म शब्द धार्मिक विधियों या क्रिया संस्कार अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऋत शब्द धर्म का पूर्वगामी माना जाता है। (ऋग्वेद 1.22.18)। ऋग्वेद में ऋत (धर्म या नियम) की कल्पना की गई है। प्रकृति एक नियम से चलती है। वह ऋत है। इसी प्रकार

संसार व समाज जिस नियम पर चलता है वह ऋत है। बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार-"धर्म तथा सत्य मूलतः एक ही है।"^१ इसी संदर्भ में इस धर्म विषयक गूढ़ और अतिविस्तृत तथा सूक्ष्म विषय को कवि शम्भुदयाल पाण्डेय जी ने 'रजतोपदेश महाकाव्यम्' के चतुर्थ सर्ग में काव्यमयी शैली में वर्णित किया है। भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान संस्कृति है धर्म मानव मात्र के अभ्युदय का एक मार्ग है। प्राणीमात्र को मन, वचन तथा कर्म द्वारा कष्ट न पहुँचाना मानव का सर्वप्रमुख धर्म है।

धत्ते जनौधान् पततोऽप्यधस्तात् प्रोच्येः
पदं यो नयते सः धर्मः ॥^१

जो मानवमात्र को अधोगति से बचाकर उत्कृष्टता की ओर ले जाती है वही धर्म है। कवि की यह पंक्ति महर्षि कणाद कथित 'यतोऽभ्युदयानि निःश्रेयससिद्धि सः धर्मः' का समर्थन करती हुई प्रतीत हो रही है। निःसन्देह धर्म ही अभ्युदय का मार्ग है क्योंकि धर्म का आचरण करने वाला मनुष्य सत् पथ गामी तथा दोष रहित होकर मन, वचन तथा कर्म द्वारा सदाचरण को करता हुआ पवित्र अन्तःकरण वाला श्रेष्ठ पुरुष ही अभ्युदय तथा उन्नति को प्राप्त करने में समर्थ है। दोष रहित तथा अनुभव सिद्ध यथार्थ वक्ता ऋषिओं महर्षियों सद्गुरुओं की वाणी द्वारा जिस आचरण के व्यवहार की शिक्षा दी गई है वही धर्म है धर्म की श्रेष्ठता इसी में निहित है कि जिस कार्य द्वारा अन्य को प्रसन्नता तथा स्वयं भी जिसका निर्वाह करके आत्म सुख तथा शान्ति का अनुभव हो तथा मन पुलकित हो जाये यही धर्म की श्रेष्ठता सिद्धि है।

वर्तमान समय में मनुष्य ढोंग, पाखण्ड तथा बाह्य आडम्बरों को ही धर्म मानकर स्वार्थ वशीभूत होकर जिस कर्म को करता हुआ लोभ तथा वासना का शिकार हो रहा है उसी को वह धर्म मानता है। तथा जिसको करके अन्ततः दुःख का ही अनुभव करता है परन्तु वास्तविक रूप में यह धर्म नहीं है कवि कहता है कि लोभ, लालच तथा ऐषणाओं से रहित होकर जो सतत् सदाचरण करता हुआ लौकिक प्रपचों से दूर रहता है वही धर्म है।

व्यास जी कहते हैं "नमो धर्माय महते धर्मो धारयते प्रजा"। अर्थात् धर्म को नमस्कार है क्योंकि धर्म प्रजाओं को धारण करने वाला है। जीवन में सुख-दुःख की स्थिति एक जैसी नहीं रहती है लेकिन जो हर परिस्थिति में समान रहता है अमीर, गरीब, छोटे-बड़े

सभी के लिए एक समान व्यवहार की प्रेरणा देता है वह धर्म है। जो सभी प्रजाओं को धारण करता है धर्म से ही अर्थ तथा काम सिद्ध होते हैं। चारों पुरुषार्थों में सर्वप्रमुख पुरुषार्थ धर्म ही है।

आजकल धर्म का स्थान कर्मकाण्डपरक आडम्बरों ने ले लिया है। धर्म के नाम पर धनार्जन का करोबार खड़ा हो गया है। इस प्रकार का दोष युक्त आचरण धर्म का रूप ले रहा है जो सर्वथा अनुचित है रजतजी कहते हैं कि दोषों का उन्मूलन कर आत्मा को शुद्ध करने वाला ही धर्म है। जिसका आचरण करने से आत्मा दोष रहित होकर ज्ञानमय विचारों को धारण करता है। धर्म कहा गया है। विद्वानों तथा श्रेष्ठजनों के वचनों को निर्मल अन्तःकरण द्वारा श्रवण करके उन पर विचार, मनन करके अपने जीवन में उतारना उन श्रेष्ठ वचनों का अनुसरण करना भी धर्म का एक स्वरूप है। जिस प्रकार मैल युक्त गंदे वस्त्र से पानी आसानी से छाना नहीं जा सकता है। स्वच्छ कपड़े से जल आसानी से छाना जा सकता है। उसी प्रकार अन्तःकरण भी स्वच्छ निर्मल होना आवश्यक है ताकि श्रेष्ठ विचारों का शीघ्रता से आधान किया जा सके अतः गुरु श्रेष्ठ ने अन्तःकरण शुद्धता को सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण माना है।

श्रुतियों, स्मृतियों के वचनों में विरोध दिखाई पड़ने पर किस प्रकार के वचनों को प्रामाणिक मानकर कार्य निष्पादित किया जाए ऐसी किंकर्तव्यमूढ़ता का परिस्थिति में सन्त-महात्माओं के कथनों को ही प्रामाणिक मानकर उनका आचरण करना ही धर्म है। क्योंकि महात्माओं के वचन प्रत्येक परिस्थिति में निरपेक्ष भाव से देश, काल को ध्यान में रखकर मानवमात्र के कल्याण की भावना से युक्त होकर कहे गये हैं। कवि ने धर्म के 5 मुख्य प्रकार बतलाए हैं—सत्य, दान, दया, इन्द्रिय-निग्रह, तपश्चरण। धर्म के विभिन्न प्रकार तथा भेद-प्रभेदों का समावेश इनमें उसी प्रकार हो जाता है जिस प्रकार सतत् प्रवाहिनी नदियाँ अलग-अलग दिशाओं से आकार समुद्र में विधीन होकर तत् रूप हो जाती है। इन पाँच प्रकारों का सेवन करने पर धर्म के अन्य सभी स्वरूपों का सम्पादन स्वतः ही हो जाता है।

जिस प्रकार वृक्ष की जड़/मूल का भली प्रकार से सेंचन करने पर उसकी शाखायें प्रशाखायें स्वयं ही सिंचित होकर प्रफुल्लित होती हैं। उसी प्रकार धर्म के मूल कहे गये सत्य, दान, दया, तपश्चरण आदि का भली-भाँति आचरण में लाने पर अन्य धर्मों से सम्बन्धित आचरण स्वतः सिद्ध हो जाता है।

तरोर्हिमूलं पयसा सुसिक्तं शाखा प्रशाखाश्च भवन्ति चिन्तनः।

तथोक्त धर्मेषु कृतेषु साधो परे च ते स्युः स्वयमेव साध्याः।।⁷

रूपमुनि जी कहते हैं कि केवल धर्म-विषयक-चर्चाओं तथा धर्म के स्वरूप का श्रवण अथवा ध्यान मात्र से किसी भी प्रकार का लाभ नहीं होता है अपितु धर्म का आचरण करने से ही फल प्राप्त होता है यथा-दीपक का बार-बार नाम मात्र लेने पर प्रकाश नहीं होता अपितु हस्त संचालन द्वारा बाती तथा तेल का संमिश्रण होने पर उसे प्रदीप्त करने पर ही प्रकाश होता है क्रियाशीलता के अभाव में किसी भी प्रकार के ऐश्वर्य सम्पदा की वृद्धि नहीं होती उद्यमरत व्यक्ति को ही सफलता प्राप्त होती है। कहा भी गया है—इद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि।।

श्रीराम लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं हे लक्ष्मण ! संसार में धर्म ही सर्वोत्तम है। सत्य की प्रतिष्ठा भी धर्म में ही निहित है। पिताजी का यह वचन भी धर्माश्रित होने से अत्युत्तम है क्योंकि माता-पिता की आज्ञा मानना परम धर्म है। धर्मात्मा पुरुष को माता-पिता अथवा ब्राह्मण के वचनों के पालन की प्रतिज्ञा करके प्रमाद छोड़ देना चाहिए। धर्म का आश्रय सर्वश्रेष्ठ है अतः उसका ही अनुसरण करना चाहिए। रजतोपदेश महाकाव्य में धर्म को सर्वप्रधान तथा सर्वप्रमुख माना है। धर्म के 5 प्रमुख भेद-प्रभेद बताए हैं।

गौ प्रवाहा इव धर्म भेदा यद्यप्यनन्ता मुनिभिः प्रगीताः

चत्वार एतेषु पुनः प्रधानं दानं दया सत्ययमौ तपश्च।।⁸

दान- दानशीलता उदार हृदय का उत्कृष्ट लक्षण है दान आत्मा में सत् विचारों का प्रसार कर कुटिलता तथा स्वार्थ भावना का परित्याग करता है। जो हृदय की सरलता तथा विशालता का सूचक है।

दया- दया को धर्म का मूल कहा गया है। रजतोपदेश महाकाव्य में दया को उत्तम कार्यों का मूल कहा है। स्वयं के प्रति जिस प्रकार का व्यवहार आप चाहते हैं वैसी ही दया भावना प्राणीमात्र के प्रति रखनी चाहिए।

दयाप्रधानं सुकृतं कवीन्द्रा वदन्ति नन्दन्ति तथाचरन्ति।।

यथा दयन्ते स्वशरीरमात्रे तथैव सर्वत्र जनेषु सन्तः।।⁹

सत्य- हमारे धर्म में सत्य को नारायण रूप मानकर सत्य नारायण नामक देव की प्रतिष्ठा की गई है। सत्य धर्म का प्रमुख लक्षण है। आचार्य मनु ने सत्य के सम्बन्ध में कहा है-

**सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान् ब्रूयात् सत्यमप्रियम्
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेश धर्मः सनातनः।।⁹**

सत्य को सनातन धर्म कहा गया है जिस प्रकार धर्म सदा से सनातन काल से चला आ रहा है उसी प्रकार सत्य की सत्ता ही सदा विद्यमान रहती है अतः कहा गया है-सत्य वचन बोलो प्रिय वचन बोलो किन्तु सत्य वचन ऐसा न हो जो अप्रिय हो, प्रिय हो तो असत्य भी बोल देना चाहिए यही धर्म है। अप्रिय सत्य वचन कुठार के समान तीव्र घात करने वाले हो सकते हैं। अतः सत्य के साथ प्रियता पर बल दिया गया है और रजतजी ने कहा भी है कि जिसका आचरण करने से आत्मा प्रसन्न तथा मन प्रफुल्लित हो वही धर्म है।

दम- इन्द्रियों का निग्रह-सारे कार्य जीवन में मनोवृत्तियों से ही सम्भव है। अतः मन पर तथा अन्य इन्द्रियों का दमन अत्यन्त आवश्यक है। विषयों के वशीभूत होने पर मनुष्य तद्-तद् भोगों विषयों में फंसता जाता है। भोग-विलासिता में उलझकर मनुष्य दुराचरण भी करने लग जाता है। जो कि उसे अधर्म के मार्ग का पथिक बना देते हैं। अतः धर्म के आचरण के लिए इन्द्रिय निग्रह आवश्यक लक्षण है।

तप-तप को धर्म का प्रमुख भेद स्वीकार किया गया है। तप के प्रभाव से ही मनुष्य शारीरिक तथा मानसिक पवित्रता को प्राप्त कर सकता है। तपस्या के द्वारा कर्म क्षय तथा इच्छाओं का निरोध होता है।

धर्म के विभिन्न स्वरूपों तथा भेद प्रभेदों का अनुसरण कर उसके श्रेष्ठ फल को प्राप्त किया जा सकता है जिस प्रकार वृक्ष की मूल का सेंचन भली प्रकार से करने पर पत्तियों, शाखाओं, पुष्प इत्यादि को अलग-अलग सिंचने की आवश्यकता नहीं है उसी प्रकार धर्म के मूल दया का सम्यक् रूप से आधार करने पर विभिन्न प्रकारों का अनुसरण करने की आवश्यकता नहीं होती है। दया रूपी नदी को छोड़ देने पर धर्म भी प्राणिमात्र को प्रसन्न करने वाला नहीं हो सकता है। धर्म के अन्य स्वरूपों का परित्याग करके उत्तम कोटि के जो मनुष्य एक दया रूपी धर्म का पालन करते हैं वे प्रभूत ऐश्वर्य सम्पदा, उत्तम कुल तथा सुन्दर शरीर को प्राप्त करते

हैं। दया रूपी धर्म का सम्यक् रूप से परिपालन करने वालों के लिए स्वर्ग का प्रतिष्ठित पद तनिक भी दुर्लभ नहीं होता है ऐसे दयाशील मनुष्य को मोक्ष अवश्य प्राप्त हो जाता है।

**अन्यं धर्मपास्य ये नरवरा एकां दयां कुर्वते।
लभ्यन्ते विपुलं धनं वस्तरं गोत्रं वपुः सौभगम्
स्वामित्वं पदमुन्नतं सुरवरैः सेव्य त्वमल्पेतरं,
तेषां स्वर्गपदं न दुर्लभतरं मुक्तिः सदा रागिणी।।¹⁰**

दया रूपी धर्म का निस्वार्थ भावना से पालन करने वाले सज्जनों का स्मरण आज भी कई वर्षों से होता आ रहा है। मृत्यु के पश्चात् भी अपने श्रेष्ठ कर्मों के कारण आज भी वे इतिहास के पन्नों में चिरायु है।

दानवीर राजा शिवि- महर्षि दधीचि, राजा नहुष तथा मोरध्वज आदि धर्मपालक श्रेष्ठ राजाओं ने परहित के लिए अपने प्राणों को तृणवत् तुच्छ मानकर उनकी आहुति दे दी थी। धर्मपालक, दानवीर, शरणागत रक्षक राजा शिवि ने अपनी शरण में आये हुए कबूतर की रक्षा के लिए अपने शरीर का दान दे दिया था। ऐसे महान् धर्मनिष्ठ व्यक्ति जो अन्य प्राणी की रक्षा के लिए अपना जीवन त्यागने से भी नहीं घबराए। महर्षि दधीचि का त्याग तथा दानशीलता अविस्मरणीय है-इन्द्र द्वारा वृत्रासुर वध के लिए वज्र बनाने हेतु जब महर्षि से उनकी हड्डियों की याचना की गई तो महर्षि ने बिना कोई प्रतिप्रश्न किए परोपकार के लिए अपने शरीर का दान कर दिया जिससे वज्र बनाकर इन्द्र ने वृत्रासुर से युद्ध किया तथा उसे मार दिया। इस प्रकार दानवीरों में श्रेष्ठ दधीचि का स्मरण युग जाने पर भी किया जाता रहा है। इस प्रकार के श्रेष्ठ धर्मवीर राजाओं ने महर्षियों ने भारत भूमि पर जन्म लेकर इस धरा को अपने श्रेष्ठ कर्मों से पावनभूत किया है।

कवि पाण्डेय जी ने कहा है कि महापुरुषों के श्रेष्ठ वचनों द्वारा धर्म का निर्मल स्वरूप वर्णित किया गया है। वस्तुतः जिन्होंने धर्म के मार्ग पर चलकर हमारा मार्गदर्शन किया है उन महारूपों के द्वारा जिस मार्ग का आचरण किया गया उसी का अनुसरण कर आचरण में लाना धर्म है।

**इत्थं महदिभर्महनीय बौधैर्धर्मस्वरूपं कथितं पवित्रम्
न सन्ति ते यैरुदितो हि धर्मो महाजनो येन गतः
स धर्मः।।¹²**

व्यासजी कहते हैं -

धर्म एव हतोहन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

तस्माद्धर्मो न हन्त्वव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥¹³

जो पुरुष धर्म को नष्ट करता है अर्थात् धर्म विरुद्ध आचरण करता है, पापाचार करता है, अधर्म को अपनाना है धर्म उसको नष्ट कर देता है। जो धर्म की रक्षा करता है अर्थात् धर्मानुकूल आचरण करता है तथा अन्य को भी प्रेरित करता है तो धर्म भी ऐसे मनुष्य की रक्षा करता है सम्मान तथा प्रभूत ऐश्वर्य प्रदान करता है। अतः धर्म का कदापि परित्याग नहीं करना चाहिए। धर्म का अर्थ किसी समुदाय या जाति धर्म का समर्थन करना नहीं है। अपितु श्रेष्ठ वेद वर्णित मार्ग का अनुसरण करते हुए श्रेष्ठ कर्मों का अनुसरण करना है तथा वेद निषिद्ध कर्मों का परित्याग करना तथा सद्पुरुषों द्वारा कहे मार्ग का अनुसरण कर अपने जीवन को सार्थकता प्रदान करना है। धर्म आज समुदाय, जाति तथा पंथ विशेष की बेड़ियों में पढ़कर अपने यथार्थ स्वरूप को खोता जा रहा है धर्म के नाम पर कर्मकाण्ड तथा आडम्बरों का बोल-बोला होता जा रहा है। धर्म जाति विशेष का समर्थक बनकर रह गया है। धर्म के नाम पर मनुष्य-मनुष्य का दुश्मन बन गया है। जबकि धर्म ऐसी निकृष्ट सोच या किसी सम्प्रदाय का समर्थक नहीं है। धर्म सदैव समता तथा साहचर्य के भाव को बढ़ावा देता है। धर्म कभी भी भेदभाव नहीं सिखाता है धर्म तो दान, दया, अहिंसा जैसे श्रेष्ठ गुणों का आधान कर 'परहित सुखाय' की मधुर वाणी का संचार करता है।

सम्पूर्ण विश्व को एकसूत्र में जो पिरोए हुए हैं वही धर्म है जिसे मनुष्य प्राणी मात्र के कल्याण हेतु धारण करता है। जिसको ग्रहण अथवा जिसका अनुसरण करके

आत्मा प्रसन्न होती है। मन प्रफुल्लित होता है वही धर्म है। धर्म रहित मनुष्य स्वेच्छाचारी खुले पशु के समान होता है जिसे किसी प्रकार की नैतिकता, सभ्यता, सदाचरण का मान नहीं रहता है। धर्म च्युत मनुष्य कहीं भी आदर प्राप्त नहीं कर पाता। धर्म मनुष्य में सहिष्णुता, सम्मान, प्रेम तथा दया सत्य आदि सदाचरण की भावनाएँ मनुष्य में धर्म के फलस्वरूप ही पनपती है। अतः मानवमात्र को धर्म की सत्ता स्वीकार कर धर्म की रक्षा, मानवमात्र का कल्याणार्थ धर्म पथ पर अग्रसर होना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. गुरुगोविन्द सिंह के काव्यों में जीवन-मूल्य
2. आचार्य चन्द्रहास शर्मा - भारतीय संस्कृति के विविध आयाम।
3. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी - संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास
4. रजतोपदेश - 2/4
5. बृहदारण्यकोपनिषद् 1.4.14
6. रजतोपदेश - 4/1
7. रजतोपदेश - 4/9
8. रजतोपदेश - 4/7
9. रजतोपदेश - 4/4
10. मनुस्मृति - 4/138
11. रजतोपदेश - 4/20
12. रजतोपदेश - 4/5
13. स.प्र. षष्ठ समु.

धार्मिक संदर्भ में कबीर की क्रांतिकारी दृष्टि



shodhshree@gmail.com

चंदन साव

सहायक आचार्य, बाम विवेकानन्द प्राइमरी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज,
गंगपुर (पश्चिम बंगाल)

शोध सारांश

कबीर धर्म के समीक्षक थे। स्वयं धार्मिक होकर भी उन्होंने धार्मिक क्षेत्र के पाखण्डों पर कठोर प्रहार किया है। उनकी आस्था उस धर्म एवं साधना पर नहीं है, जो महज दिखावा है। उनकी आस्था मानवता पर है, मनुष्य और मनुष्यता के बीच सामंजस्य बैठाने पर है। एक तरह से कबीर की कविता धर्म में आ गई विकृति की औषधि है, कबीर उसके वैद्य हैं। लगभग साढ़े छः सौ साल बाद, आज जो धार्मिक व्यापार का इतना व्यापक बाजार खड़ा हुआ है यह कबीर की बातों को अनसुना करने का परिणाम है।

संकेताक्षर : कबीर, धर्म, पाखण्ड, आस्था, क्रांतिकारी दृष्टि, साधना।

डॉ.

पुरुषोत्तम अग्रवाल ने लिखा है कि “कबीर ने स्वयं को न कभी धर्मगुरु कहा, न अवतार।” जब हम धार्मिक संदर्भ में कबीर की क्रांतिकारी दृष्टि पर बात करते हैं तब पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी की वह बात याद आती है कि “कबीर धर्मगुरु थे।” धार्मिक होकर भी, भक्त होकर भी, और यह भी दावा करके कि मुझे ईश्वर प्राप्त हो चुका है, तो भी उन्होंने धर्म का हर पग पर विरोध किया है। ऐसे गुरु को धर्मगुरु न कहकर धर्म का समीक्षक कहना ज्यादा समीचीन होगा। कबीर की दृष्टि सभी धर्म-मतों में निहित व्यापक मानवीय मूल्यों के स्वीकार पर प्रतिष्ठित है। इस दृष्टि से उन्होंने तमाम धर्म-मतों के आचारों तथा कर्मकाण्डों का खण्डन किया है।

कबीर ने धर्म के नाम पर भेदभाव तथा ईश्वर के नाम पर लड़ाई का तार्किक खण्डन करते हुए ईश्वरीय एकता की बात कही-

“कहै कबीर एक राम जपहु रे, हिंदू तुस्क न कोई।”³

कबीर ‘राम’ के निराकार रूप के कायल थे। उन्होंने राम को सबका प्रभु बताकर मानवधर्म की प्रतिष्ठा की।

वैदिककाल से चली आ रही भारतीय वर्ण-व्यवस्था सामाजिक कार्योंन्वति का एक आधार है। चार वर्णों को उनके कर्म में श्रेष्ठ माना गया है। शिक्षा संबंधी कार्य हेतु ‘ब्राह्मण’ श्रेष्ठ, शत्रु से रक्षा हेतु ‘क्षत्रिय’ श्रेष्ठ, वाणिज्य हेतु ‘वैश्य’ श्रेष्ठ, उद्योग व कला (कारीगर) हेतु ‘शुद्र’ श्रेष्ठ। प्रयत्न और विकास से व्यक्ति अन्य वर्ण अवस्थाओं में पहुँचता है। कबीर के समय में धर्म के नाम पर घृणा, द्वेष और उन्माद का प्रचार-प्रसार हो रहा था। यही कारण है कि भारतीय वर्ण-व्यवस्था ने मानव-जाति के साथ न्याय नहीं किया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अर्थात् छोटे-बड़े के नाम पर तरह-तरह के जो सिद्धांत बना दिए गए, वह सवर्ण और अवर्ण लोगों के बीच की सामाजिक तथा धार्मिक खाई को गहरा बनाने में सहायक है। हिंदुओं में महज सवर्णों के लिए ही ईश्वर पूजनीय था और शूद्रों के लिए सवर्ण पूजनीय थे। इन सिद्धांतों के कारण न जाने कितने दंगे-फसाद हुए! फिर भी इन सिद्धांतों का पालन निरंतर जारी है। जिसको निम्न जाति का मान लिया गया उसके साथ बहुत अन्याय हुआ। बहुतेरे लोग आज भी मंदिर जाने के पात्र नहीं समझे जाते हैं, उनको मंदिर में प्रवेश करना वर्जित है। कबीर ने आज से लगभग साढ़े छः सौ वर्ष पूर्व ‘न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी’ के तर्ज पर उस मंदिर का घोर विरोध किया जिसमें सबको प्रवेश की अनुमति नहीं मिल पाती है।

इसके बरअक्स कबीर ने एक ऐसे मंदिर की बात कही जो सबके लिए है, जिसमें सबको प्रवेश की अनुमति है। वह मंदिर है- मनमंदिर, हृदय मंदिर। उन्होंने यह बताया कि ईश्वर हमारे भीतर ही हैं, न कि किसी मंदिर-मस्जिद-काबा में-

**“मो को कहाँ ढूँढे बंदे मैं तो तेरे पास में।
न मैं देवल, ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास
में।”**

क्रांतिकारी प्रवक्ता कबीर ने अवतारवाद, मूर्तिपूजा एवं कर्मकाण्डों का घोर विरोध किया तथा ईश्वर और व्यक्ति के बीच किसी भी मध्यस्थ को अस्वीकार कर दिया। इस तरह उन्होंने धर्म के नाम पर मानव-मानव में भेद कराने वाली हर रूढ़ि को खारिज किया।

कबीर को ऊँच-नीच का भेदभाव पसंद नहीं था। वे इस भेदभाव को दूर करके मानवीय एकता कायम करना चाहते थे। उन्होंने कहा भी है-

**“एक बूँद एक मलमूतर एक चाम एक गूदा।
एक जाति वै सब उपजा कौन ब्राह्मण कौन सूदा।”**

और,

**“हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध।
तुम्ह कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद।।”**

कबीर की दृष्टि मानवतावादी है जो सभी को धार्मिक व सामाजिक समानता का दर्जा देने की बात करती है। वे धर्म को किसी भी प्रकार के भेदभाव से परे एकमात्र सत्य-सत्ता मानते थे। जाति प्रथा की बुराइयों को पहचान कर कबीर ने कर्म को महत्व दिया और सबकी भलाई में किया जाने वाला कर्म को वास्तविक धर्म बताया। कबीर की भक्ति जिस निर्गुण-निराकार ब्रह्म के प्रति है वह उन तमाम निम्न जातियों और समाज से बेदखल लोगों का बहुत बड़ा धार्मिक विकल्प था जिन्हें धार्मिक रूप से बेदखल कर के मंदिरों से दूर रहने की हिदायतें दी गई थी। उनके लिए एक बेहतर रास्ता निकल आया। कबीर ने एक ऐसे राह की बात कही जिस पर चलकर ईश्वर तक बिना किसी बाह्याडंबर, बाह्यविधान, ढोंगढकोसले, तीर्थ-स्नान, मूर्तिपूजा, उपवास, मालाजाप, नमाज, रोजा-सुन्नत, हज, ताजिएदारी, कुर्बानी के पहुँचा जा सकता है।

कबीर ने सच्चे मन से निराकार ब्रह्म की भक्ति द्वारा उन लोगों को नई राह दिखाई जो हाशिए पर फेंक दिए गए थे। ताउम्र आर्थिक दरिद्रता, गरीबी का सामना

करते-करते, कपड़ा बुनते-बुनते कबीर उस फटीचर कुरीतियों, बाह्यविधानों, आडंबरों और रूढ़ियों से क्षीण समाज की भी सिलाई-बुनाई करते रहें।

व्यक्ति जाति से नहीं बल्कि अच्छे कर्मों से महान होता है। कबीर की जाति से बड़ा उनका कविता-कर्म और जीवन-कर्म रहा है। कबीर का जीवन दर्शन ऐसा रहा है जिससे फ़कत भक्ति और ज्ञान की आँधी ही नहीं आई बल्कि निरक्षरों, श्रमिकों, गरीबों को सम्मान पूर्वक जीने की राह भी बताई और भारतीय समाज तथा संस्कृति के बेडौल अंश का विरेचन भी किया। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान दोनों धार्मिक पंडितों की जी भरकर धूल उड़ाई है, चुभती भाषा में हर पाखण्ड का विरोध किया है-

**“हिंदुंअन आपन करै बड़ाई, गागर छुअन न देई।
वेश्या के पायन तर सोवैं, यह देखी हिंदुंआई।।
मुसलमान के पीर औलिया, मुरगा-मुरगी खाई।
खाला के ही बेटी ब्याहैं, घरहैं में करै सगाई।।”**

इस प्रकार कबीर ने दोनों संप्रदायों की विषमता का विरोध कर के भारतीय जनता की एकता का रास्ता साफ किया। उन्होंने सच्चे मानव धर्म के लिए हिंदू-मुस्लिम दोनों को फटकारा क्योंकि वे यह जान गए थे कि ये हिंदू-मुस्लिम दोनों के धार्मिक ठेकेदार खुद ही भटके हुए हैं। वे क्या लोगों को सही राह दिखाएंगे जो स्वयं ही भटके हो -

“अरे इन दोउन राह न पाई।

हिंदुवन की हिंदुवाई देखी, तुरकन की तुरकाई।”

ऐसा कहकर कबीर महज इनका मखौल ही नहीं उड़ाते हैं बल्कि इनके ढोंग-पाखण्डों की धजियाँ उड़ाकर रख देते हैं। मानवता को भूलकर खोखले रीतिरिवाजों की वकालत करने वाले ढोंगी मुल्ला-पंडितों पर अंदर तक तिलमिला देने वाली फब्तियाँ कसते हैं-

**“दिन भर रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय।
ये तो खून से बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।।”**

और,

**“पाहन पूजै हरि मिले, तो मैं पूजूं पहाड़।
ताते यह चाकी भली, पीस खाए संसार।।”**

कबीर की इस पंक्ति का जवाब आज भी किसी मौलवी या पंडित के पास नहीं है-

**“ना जाने तेरा साहब कैसा है।
मसजिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहब तेरा**

बहिरा है।...

पंडित होय के आसन मारै, लंबी माला जपता
है।।”

कबीर ने एक अल्लाह निरंजन निर्लेप के प्रति लगन को ही अपना लक्ष्य घोषित करके पूजा और नमाज दोनों को नकार दिया-

“पूजा करूँ न नमाज गुजारूँ,
एक निराकार हिरदै नमसकारूँ।”¹⁰

कबीर की वाणी कटु अवश्य लगती है लेकिन उसमें मधुरता भी कम नहीं है। उनकी बाहरी कठोरता का सबब वह सुविधाभोगी और स्वार्थी समाज था जो कबीर की चिंता और रुदन को अनसुना कर दिया था। जब सारा संसार सुख-ऐश्वर्य में मग्न था तब कबीर दुखों की भट्टी में सुलग रहे थे। युग की पीड़ा से मुख्रातिब होकर आँखों से नीर बहा रहे थे। कारण कि जागने पर जो कुछ सामने दिखाई देता है वह उन्हें सुख नहीं पहुँचाता है। तभी तो विवश होकर कबीर ने विद्रोही स्वर में कहा-

“सुखिया सब संसार है, खावे और सोवे।
दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे।।”¹¹

कबीर का यह रोना कोई सामान्य रोना नहीं है। उनके जागने और रोने में बहुत दर्द छुपा है। जगत का दीदार उन्हें बेहद निराश कर देता था। यह रुलाई तमाम तरह के झूठों, भ्रमों, मिथ्यात्व को चुनौती देती हुई रुलाई है। जागने वाले इंसान के लिए मानवता ही ईमान होता है। उनके लिए मानवता से बढ़कर संसार में कोई धर्म नहीं।

अपनी प्रतिभा के कारण धर्म के नाम पर हो रहे तमाशे को कबीर ने बखूबी पहचान लिया था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि “वे पढ़े लिखे न थे लेकिन उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी। कबीर की प्रखर प्रतिभा ने गंदगी की सफाई की शुरुआत भी वहीं से की जहाँ से महामारी फैली थी। इसके लिए इन्होंने भक्ति का सहारा लिया। किंतु इनकी भक्ति में धार्मिक, सामाजिक संकीर्णताओं के लिए कोई जगह न थी। तभी तो इनके लिए सामान्य स्थानों और तीर्थ स्थानों में कोई भेद नहीं था। इनके लिए तो सच्चा तीर्थ-स्थान वह दिल है जो प्रेम की वाणी बोलता है और वहीं प्रभु का वास भी है- “ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं।।”

कबीर ने परमेश्वर की प्राप्ति के लिए सतगुरु को सर्वोच्च स्थान दिया है। सतगुरु के प्रति न सिर्फ कबीर

ने बल्कि सभी भक्त कवियों ने श्रद्धा भाव प्रकट किया है। सभी ने यह माना है कि सतगुरु के बगैर परमेश्वर से मिलन संभव नहीं है। कबीर ने तो सतगुरु के लिए अपना शीश उतार कर रख देना भी सस्ता सौदा माना है क्योंकि सतगुरु की कृपा से ही व्यक्ति ढोंग-पाखण्ड के बोझ से मुक्ति पाता है-

“हम भी पाहन पूजते होते बन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भई सिर तैं उतरख्या बोझ।”¹²

कबीर बेशक अनपढ़ थे लेकिन अनुभव द्वारा प्राप्त इनका ज्ञान और भक्ति उन पंडितों से कहीं ज्यादा सच्ची और पवित्र था जो दिन-रात गंगा में डुबकियाँ लगाते और मंदिर की घण्टियाँ बजाते रहते थे। कबीर आंतरिक साधना पर बल देते हैं-

“कर का मन का डारि के मन का मनका फेर।”
और,
“मन न रंगाए, रंगाए जोगी कपड़ा।”

इस कदर कबीर धार्मिक क्षेत्र के पाखण्डों पर कठोर प्रहार करते हैं। उनकी आस्था उस धर्म एवं साधना पर नहीं है, जो महज दिखावा है। उनकी आस्था मानवता की पूजा पर है। कबीर की कविता अपने समय के समाज और धर्म के ठेकेदारों द्वारा फैलाई गई कुरीतियों और बाह्याडम्बरों को प्रशिनत करती है। कबीर किसी सनद या पुरस्कार के लालची न थे, इसीलिए उन्होंने जो भी कहा डंके की चोट पर कहा। उनकी कविता तिलमिला देने वाली होती है, लेकिन वह जीवन को बेहतर बनाने का अनमोल खजाना है। समाज में समता का विकास चाहने वाले कबीर की बातों को पचा पाना तो दूर, उसे गले के नीचे उतार पाने तक का बूता धर्म के किसी ठेकेदार के पास न तब था और न आज है। कबीर ने धर्म, जाति, वर्ण, वर्ग, सम्प्रदाय के प्रति जो नकार का रवैया अपनाया था वह उनके साहस और ईमानदारी का परिचायक है। यह साहस बहुत ही कम लोगों में पाया जाता है।

कबीर की रग-रग में क्रांति की ज्वाला व्याप्त थी। यही कारण है कि वे अपना घर स्वाहा कर के अलख जगाने निकल गए और माया से घिरे बाजार में खड़े होकर पुकार उठे-

“कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ।
जो घर जारे आपना चले हमारे साथ।।”

कबीर बे-मिसाल हैं क्योंकि पहले उन्होंने अपना घर फूँका, फिर दूसरों से अपना घर फूँकने को कहा। आज

का दौर भी बाजार के चंगुल में हैं। आज लोग लुकाठी लेकर निकल जरूर रहे हैं लेकिन वह लुकाठियाँ बुझी हुई हैं। डॉ. शंभुनाथ ने ठीक ही लिखा है कि “लगभग 600 साल बाद, कबीर पर चर्चा वस्तुतः एक बाजार में ही हो रही है। फर्क सिर्फ यह है कि हमारे हाथों में अब बुझी हुई लुकाठियाँ हैं।”¹³

जिस कवि की कविता और जीवन में जितना ही कम दूरी होगा, वह कवि उतना ही सच्चा और विश्वसनीय लगता है। कबीर की कविता हमें सच्ची और विश्वसनीय लगती है। तभी तो वे बड़े आत्मविश्वास के साथ कह सके थे कि जिस चादर को सुर, नर, मुनियों ने ओढ़कर दाग से नहीं बचाया उसे कबीर बगैर किसी दाग के जतन से ओढ़कर रख सके –

**“सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ के मैली
किनी चदरिया।**

**दास कबीर जतन से ओढ़ि, ज्यों की त्यों धर दीनी
चदरिया।।”¹⁴**

कबीर ने ढोंगी पण्डितों को चादर के बहाने उन्हें नंगा कर दिया और सामान्य आदमी की सच्चाई को हमारे सामने प्रस्तुत किया। सामान्य आदमी अपनी चादर को कबीर की भाँति ही मैला किए बगैर रख देता है। वह सामान्य आदमी मुंशी प्रेमचंद के ‘सद्गति’ का ‘दुःखी चमार’ और ‘गोदान’ का ‘होरी’ हो सकता है।

कबीर का जन्म काशी में हुआ था। इन्होंने उस अंधविश्वास को भी दूर करने का प्रयास किया जिसमें यह माना जाता है कि काशी में मरने से मोक्ष प्राप्त होता है और मगहर में इसके नकारात्मक परिणाम होते हैं। इसीलिए कबीर जीवन के अंतिम समय में काशी छोड़कर मगहर चले गए। कबीर ने कहा भी है—

**“जौ काशी तन तजै कबीरा तौ रामहिं कहा
निहोरा रे।”¹⁵**

इस प्रकार अपनी कथनी और करनी को कबीर ने एक कर दिखाया। वे अपनी कविता में विवेक का जो प्रकाश फैलाते हैं और रुढ़ियों, कुसंस्कारों, बाह्याडम्बरों पर जिस तरह से प्रहार करते हैं, मंदिरों-मस्जिदों को जिस तरह से प्रश्नों के घेरे में लेते हैं, कर्मकांडों की जिस प्रकार से खूब निंदा करते हैं, इससे कबीर के आधुनिक विचार, विवेक, अदम्य साहस और मनुष्य जाति के प्रति प्रेम का पता चलता है। ऐसा लगता है कि कबीर किसी जाति, धर्म, वर्ण, सम्प्रदाय के नहीं बल्कि मानवता के पक्षधर हैं। उनकी आवाज एक ऐसी आवाज है जो प्रेम,

सच्चाई, ईमानदारी के सहारे ईश्वर तक पहुँचना चाहती है। कबीर ईश्वर तक जिस राह से होकर पहुँचना चाहते थे उस पर चलने वाला मनुष्य ईश्वर तो नहीं पर बहुत सुंदर दिखने लगता है, नारियल की तरह अंदर से कोमल हो जाता है।

कबीर के सारे शब्दों का एक ही सार है— मानवता, जिसमें मनुष्य की मनुष्यता ही सर्वोपरि है। उनके देखें सपने में न ब्राह्मण हैं, न क्षत्रिय। न शुद्र हैं, न वैश्य। न सैयद हैं, न शेख। इनके सपने में भेदभाव मुक्त समाज है। ऐसा समाज जहाँ किसी भी आधार पर मानव को मानव से दूर करने वाली लकीरें न हों। इन्होंने इंसान और इंसानियत के टूटे हुए पुल को बाँधने का कार्य किया। कबीर के दोहों ने इंसानियत का पैगाम दिया है। हिंदू-मुस्लिमों के बीच बढ़ रहे भेद-भावों की निंदा करते हुए वास्तविक धर्म के विकास की भावना पर बल दिया है, जिससे ईश्वर की सत्ता का आभास हो और पारस्परिक भ्रातृत्व और साम्य भावना की स्थापना हो, इसके बिना सभी वह कर रहे थे जो वास्तव में अधर्म है। कबीर ने जितनी ख़बर मुस्लिमों की ली है उतनी ही ख़बर पण्डितों की भी ली है। उन्होंने किसी भी जाति या समुदाय में कोई भेद नहीं माना। उनके लिए मुसलमान भी उतने ही प्रिय थे जितने कि हिंदू। अगर उन्हें कुछ अप्रिय था तो बस धर्म के नाम पर होने वाला वह पाखण्ड जो मानव धर्म के खिलाफ था। एक तरह से कबीर ने साम्प्रदायिक सद्भावना की मिसाल कायम की है। उन्होंने तत्कालीन क्षतिग्रस्त समाज को एक ऐसी नई राह दिखाई जिसकी छाप आज तक विद्यमान है।

कबीर हमारे समय और समाज के ऐसे नायक हैं, जिनकी आवश्यकता हमें तब-तब महसूस होती है जब-जब हम और हमारा समाज धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संक्रमण से गुजरता है। मानव-धर्म का जो सपना कबीर ने देखा था और जिसे अपनी विरासत के रूप में उन्होंने युग को दिया। सवाल यह है कि युग उसे साकार करने में कितना सक्षम हुआ? अगर सक्षम हुआ तो फिर आज का मानव विषमता से पीड़ित क्यों है? क्या सचमुच वह बाहरी धर्माचारों को अस्वीकार करने का साहस जुटा पाया है?

कबीर की कविता हमारे जीवन में बहुत से प्रश्न पैदा करती है। उनकी कविता जीवन जीना सिखाती है। मानव-धर्म से जुड़कर कबीर अपनी कविता का जो वितान खड़ा करते हैं वह आज भी प्रासंगिक, अर्थगर्भी,

सार्थक और जीवनदायी है। वे अपने काल में सुने ही गए, काल के परे उनकी आवाज अब भी साफ, स्पष्ट सुनाई देती है। कहना ना होगा कि वे कालजयी तो हैं ही और कालजीवी तो थे ही बल्कि वे कालजयी और कालजीवी दोनों हैं। कबीर ने समाज में तो विरोध किया ही, धर्म के क्षेत्र में भी वे पीछे नहीं रहें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, पुरुषोत्तम - 'अकथ कहानी प्रेम की कबीर की कविता और उनका समय', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहली आवृत्ति : 2013, पृष्ठ संख्या - 311
2. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद - 'कबीर', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सोलहवीं आवृत्ति : 2010, पृष्ठ संख्या - 170
3. दास, श्यामसुंदर (संपा.) - 'कबीर ग्रंथावली', रवि प्रकाशन, संस्करण : 2009, पृष्ठ संख्या - 45
4. वही, पृष्ठ संख्या - 58
5. वही, पृष्ठ संख्या - 45
6. वही, पृष्ठ संख्या - 51
7. अग्रवाल, हरिशचंद्र (संपा.) - 'कबीर का महत्व', सुमित प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2001, पृष्ठ संख्या - 82
8. मिश्र, शिवकुमार - 'भक्ति-आंदोलन और भक्ति-काव्य', लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्तमान संस्करण : 2012, पृष्ठ संख्या - 78
9. तिवारी, डॉ. श्रीमती नयनतारा - 'भक्त कवियों का लोक मानस, साहित्य वाणी, प्रथम संस्करण : 1991, पृष्ठ संख्या - 230
10. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद - 'कबीर', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सोलहवीं आवृत्ति : 2010, पृष्ठ संख्या - 145
11. अग्रवाल, हरिशचंद्र (संपा.) - 'कबीर का महत्व', सुमित प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2001, पृष्ठ संख्या - 21
12. दास, श्यामसुंदर (संपा.) - 'कबीर ग्रंथावली', रवि प्रकाशन, संस्करण : 2009, पृष्ठ संख्या - 31
13. अग्रवाल, हरिशचंद्र (संपा.) - 'कबीर का महत्व', सुमित प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2001, पृष्ठ संख्या - 104
14. दास, श्यामसुंदर (संपा.) - 'कबीर ग्रंथावली', रवि प्रकाशन, संस्करण : 2009, पृष्ठ संख्या - 52
15. वही, पृष्ठ संख्या - 36

याज्ञवल्क्य स्मृति में प्रतिपादित राजधर्म : एक अध्ययन

डॉ. मूल चन्द

सह आचार्य, राजकीय लोहिया महाविद्यालय, चरू



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्राचीनकाल (स्मृतिकाल) में राजा अपने देश का निर्वहन कैसे करता था तथा देश संचालन हेतु जो भी नियम, कानून, कर्तव्य इत्यादि थे वो सब राजधर्म के अन्तर्गत समाहित थे। याज्ञवल्क्य की स्मृति में राजधर्म के सम्बन्धित प्रसंग उपलब्ध हैं। राजधर्म के अन्तर्गत कहा गया है कि नियमानुसार राजा बनने हेतु क्या-क्या गुण होने चाहिए, राजा की शिक्षा-दीक्षा कैसी रहती थी, राजा की दिनचर्या कैसी होती थी, प्रजा का किस प्रकार से पालन करता था तथा प्रजा संरक्षण कैसे करता था, प्रजा के प्रति राजा के क्या-क्या उत्तरदायित्व होते थे, यदि कोई अपराधी कोई अपराध करता था तो किस प्रकार का दण्ड दिया जाता था, इसका विधान भी राजा ही करता था। मन्त्री की योग्यताएं, कर लगाना, बल (सेना) का संचालन, युद्ध करना, सीमा सम्बन्धी ज्ञान इत्यादि महत्वपूर्ण बिन्दु इस पत्र में समाहित हैं।

संकेताक्षर : राजधर्म, धर्मशास्त्र, याज्ञवल्क्य, धर्म संहिता, अमात्य, ऋग्वेद, इन्द्र, अग्नि, आत्मा, धर्म, तर्कशास्त्र, आन्विकिकी, आत्मविद्या इत्यादि।

स्मृतियों का स्थान वैदिक धर्म सूत्रों के पश्चात् आता है। इनको धर्म संहिता भी कहा गया है। स्मृति शब्द (स्त्री) स्मृ+वितन् प्रत्यय से सम्पन्न हुआ है, जिसका सामान्य अर्थ स्मरणशक्ति, यादास्त, संस्कारमात्रजन्य ज्ञान स्मृति: (तर्क) चिन्तन करना, मन में ध्यान करना, मानव धर्मशास्त्र, परम्परागत धर्मशास्त्र, स्मृति ग्रन्थ व अनुभूत विषय जन्य ज्ञान इत्यादि है। स्मृति तथा धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही है जैसा कि मनुस्मृति में कहा “श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः”¹

पो. पी. वी. काणे के अनुसार स्मृतियों की संख्या लगभग 100 है।²

स्मृतियों का आशय धर्मशास्त्र की उन रचनाओं से है जो प्रायः श्लोकों में वर्णित है तथा ये उन्हीं विषयों का विवेचन करती हैं, जिनका उल्लेख (प्रतिपादन) धर्मसूत्रों में किया गया है। कुछ प्रमुख स्मृतियाँ भी हैं यथा मनु, बृहस्पति, दक्ष, गौतम, यम, अंगिरा, योगीश्वर, प्रचेता, पाराशर, संवर्त, उशनस्, शंख लिखित, अत्रि, विष्णु, आपस्तम्ब और हारीत इत्यादि मुख्य हैं। मनु व याज्ञवल्क्य स्मृतियां सर्व प्रमुख मानी गई हैं। मनुस्मृति की तुलना में याज्ञवल्क्य स्मृति सुगठित है परन्तु याज्ञवल्क्य स्मृति तुलनात्मक दृष्टि से छोटी है।

याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रथम आचार अध्याय में 13 प्रकरण हैं। इसके 13वें प्रकरण का नाम राजधर्म है, जिसके अन्तर्गत अभिषिक्त राजा का धर्म (राजा के गुण) मन्त्री, पुरोहित, राज्यानुशासन, रक्षार्थ, राजा के कर्तव्य, न्याय शासन, कर एवं व्यय, दूसरे राजा की विजय का फल, पराजित देश की मर्यादा का पालन, मन्त्रणा का गोपन, पड़ोसी राज्यों से सतर्कता, साम, दान आदि उपाय, सन्धि और विग्रह, आक्रमण करने का समय, मण्डल रचना, राज्य के अंग, दण्ड और धर्म, दण्ड अवधारणा की योग्यता, अनुचित दण्ड प्रयोग का अधर्म उचित दण्ड का प्रयोग, अर्थ दण्ड की श्रेणियों इत्यादि द्वितीय अध्याय में 25 प्रकरण हैं, - इस अध्याय में न्याय भवन के सदस्य, न्यायाधीश, व्यवहार, पद की परिभाषा, कार्यविधि, अभियोग, जमानत, साक्षी, धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र का परस्पर विरोध, न्यायालयों के प्रकार इत्यादि का वर्णन है। तीसरे अध्याय का नाम प्रायश्चित्ताध्याय है, जिसमें 5 प्रकरण हैं।

स्मृति ग्रन्थों ने वेदों का समर्थन किया है। स्मृति ग्रन्थों में प्रायः राज्य व राजा को एक ही स्वीकार किया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में सप्तांग सिद्धान्त को मानते हुए राजा, अमात्य, पुर, देश, कोष, दण्ड और सुहृत् को राज्य के सप्तांग के रूप में स्वीकार किया है।³

ऋग्वेद में भी राजा की उत्पत्ति के विषय में वर्णन प्राप्त होता है। वैसे ऋग्वेद में इन्द्र, प्रजापति, अग्नि, वरुण, विष्णु इत्यादि बहुत से राजाओं का वर्णन किया गया है। यद्यपि वेद में उन राजाओं को कई स्थानों पर देवताओं के नाम से उल्लेखित किया है— जैसे संज्ञान, अग्नि, उषा, सूर्य, पुरुष इत्यादि में इन सबको देवता के रूप में स्वीकार कर रहा हूँ। फिर भी कुछ देवताओं को राजा के रूप में भी कहा है जैसे इन्द्र, प्रजापति आदि हैं। स्मृति ग्रन्थों में कहा कि राजा के अन्दर उपर्युक्त देवताओं का अंश होता है। ईश्वर आत्मा, भगवान व राजा इन सभी के नामोल्लेख में विभिन्नता है तथापि इनके कार्यों में प्रायः समानता दिखाई देती है। वेद में राजा की उत्पत्ति व गुणों के सन्दर्भ में कहा—

**‘त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नृन्पालसुर
त्वमस्मान्। त्वं सत्पतिमर्धवा नस्तरुत्रम्
त्वं सत्यो वसानः सहोदाः।’⁴**

अर्थात् जो राजा होना चाहिए वह धार्मिक सत्पुरुष, विद्वान्, मन्त्रीजनों को अच्छे प्रकार रखकर उनसे प्रजाजनों की पालना करावें। जो भी सत्याचारी, बलवान, सज्जनों का संग करने वाला है वह राज्य को प्राप्त होता है।

राजा के गुण

याज्ञवल्क्य स्मृति में राजा के महान् उत्साही, अत्यन्त धन देने वाला, विनीत, सम्पत्ति और विपत्ति में एक सा आचरण करने वाला अर्थात् सत्त्वसम्पन्न, कुलीन, सत्य बोलने वाला, पवित्र, आलस्य रहित, सद्गुणी, दूसरे का दोष न कहने वाला, धार्मिक, व्यसन न रखने वाला, बुद्धिमान्, वीर, रहस्य को छुपाने में चतुर, अपने राज्य के प्रवेश द्वारों को गुप्त रखने वाला तथा आन्वीक्षिकी दण्ड नीति विद्या एवं वार्ता (कृषि, वाणिज्य) इन तीनों में प्रवीण होना चाहिए।⁵

जो राजा अन्यायपूर्वक अपनी प्रजा से धन लेकर अपने कोष की वृद्धि करता है वह शीघ्र ही लक्ष्मीहीन होकर अपने बान्धवों सहित नष्ट हो जाता है। प्रजा को पीड़ा पहुंचाने पर प्रजा के सन्तान से राजा के कुल, शोभा और प्राणों को नष्ट किए बिना शान्त नहीं होती।

राजा के दुर्गुण

स्मृति ग्रन्थों में राजा के काम से उत्पन्न दस व्यसनों और क्रोध से उत्पन्न आठ दोषों से दूर रहने का परामर्श दिया गया है। मनु ने काम से उत्पन्न व्यसनों को राजा

के लिए कष्टदायक माना है ये दस व्यसन हैं— मृगया, जुआ खेलना, दिन में सोना, पराया दोष कहना, स्त्रियों में आसक्ति, मद्यपान, नाचना, गाना, बजाना तथा व्यर्थ में घूमना और शिकार खेलना इत्यादि राजा के लिए अधिक कष्टदायक हैं।⁶

याज्ञवल्क्य मनु से भिन्न दुर्गुणों का राजा में दर्शन करते हैं, उनके अनुसार राजा का सबसे बड़ा दुर्गुण है अन्यायपूर्वक प्रजा से धन लेकर कोष वृद्धि करना और प्रजा को पीड़ा पहुंचाना, जो राजा अन्यायपूर्वक अपनी प्रजा से धन लेकर अपने कोष की वृद्धि करता है वह शीघ्र ही श्रीहीन होकर अपने बान्धवों सहित नष्ट हो जाता है प्रजापीड़न के सन्ताप की अग्नि राजा के कुल, शोभा और प्राणों को नष्ट किए बिना शान्त नहीं होती।⁷

राजपद की आनुवंशिकता

याज्ञवल्क्य स्मृति में भी श्रेष्ठ भाग पर ज्येष्ठ पुत्र के अधिकार को मान्यता दी गई है। इसी श्लोक की मिताक्षरा में विज्ञानेश्वर ने नारद व गौतम के मतों को उद्धृत करते हुए ज्येष्ठ पुत्र के श्रेष्ठ भाग पर अधिकार को मान्यता प्रदान की है।

राजा की शिक्षा-दीक्षा

प्रायः सभी प्राचीन ग्रन्थों ने स्वीकार किया है कि राजपद को ग्रहण करने से पूर्व राजकुमारों को विभिन्न विषयों में शिक्षित होने के पश्चात् दक्षता प्राप्त करना आवश्यक है। मनु ने कहा है कि राजा को चाहिए कि वह तीनों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों से तीन वेद, सनातन दण्डनीति, तर्कशास्त्र और ब्रह्म विद्या सीखे और अन्य विद्वानों एवं दक्ष पुरुषों से वार्ता (कृषि, वाणिज्य आदि) का ज्ञान ग्रहण करें।

याज्ञवल्क्य ने भी राजा को आन्वीक्षिकी (आत्म विद्या), दण्ड नीति (भोग क्षेमोपयोगी विद्या) एवं वार्ता (कृषि, वाणिज्य) आदि का ज्ञान प्राप्त करने का परामर्श दिया है।⁸

राजा की दिनचर्या

स्मृति ग्रन्थों में राजा की दिनचर्या का विभाजन इस प्रकार किया है कि राजा को चाहिए कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल (पुर और अपनी) रक्षा करके स्वयं आय और व्यय का लेखा देखें। इसके पश्चात् ही व्यवहार (वाद-मुकदमों देखें) और तब स्नान करके समय से भोजन करें।⁹

इसके उपरान्त (स्वर्णादि लाने के लिए) नियुक्त व्यक्तियों द्वारा लाए गए स्वर्ण को देखकर भण्डार में रखे तब गुप्तचरों से बात करे और फिर मन्त्री के साथ

बैठकर दूतों को निर्दिष्ट कार्य करने के लिए भेजे।¹⁰

याज्ञवल्क्य तथा मनु दोनों ही अपराहकाल में राजा को रनवास में विश्राम करने का परामर्श देते हैं। अपराहकाल के विश्रामोपरान्त राजा को अपनी सेना के योद्धाओं, वाहनों, अस्त्र-शस्त्रों और आभरणों आदि का निरीक्षण करना चाहिए। सायंकाल में राजा को सन्ध्योपासना के उपरान्त गुप्तचरों से (अकेले में) बातचीत करनी चाहिए। इसके पश्चात् गीत और नृत्य का आनन्द लेकर भोजन करना चाहिए और रात्रि शयन से पूर्व स्वाध्याय करना चाहिए। विशेष बात यह है कि याज्ञवल्क्य के अनुसार राजा दूसरे दिन प्रातः अपनी बुद्धि से शास्त्रों का और दिन में किए जाने वाले सभी कार्यों का चिन्तन करें।

शत्रुओं से युद्ध करना

यद्यपि स्मृतिकारों ने राजा को यही परामर्श दिया है कि यथासम्भव वह पहले युद्ध का सहारा न ले। क्योंकि बल से दूसरे राष्ट्रों को ग्रहण करने वाला कभी शूरवीर नहीं कहा जा सकता।¹¹

लेकिन इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि क्षत्रिय होकर भी वह युद्ध न करे। युद्ध के सन्दर्भ में याज्ञवल्क्य ने कहा कि जो भूमि के लिए युद्ध में सम्मुख लड़ते हुए अकूट (विष से बुझे हुए) हथियारों से मारे जाते हैं वे योद्धा योगियों के समान (मृत्यु के उपरान्त) स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।

यथा-

पदानि क्रतुतुल्यानि भग्नेष्विनिवर्तिनाम्।

राजा सुकृतमादते हतानां विपलायिनाम्।¹²

युद्ध के सन्दर्भ में ही याज्ञवल्क्य ने कहा कि युद्ध को यज्ञों के तुल्य मानते हुए अपनी सेना के नष्ट हो जाने पर भी सेना की ओर से लड़ते हुए राजा के प्रत्येक पग (कदम) यज्ञों के समान होते हैं। अर्थात् सब कुछ नष्ट होने पर भी जो राजा शत्रु का मुकाबला करते हुए जितने पग आगे बढ़ता जाता है उसे उतने ही यज्ञों का फल प्राप्त होता है।¹³

प्रजा रक्षण

प्रजा रक्षण के सन्दर्भ में गौतम स्मृति में कहा कि अपने राज्य में बसने वाली समस्त राजा प्रजा की रक्षा करना राजा का धर्म है। याज्ञवल्क्य ने प्रजा रक्षण हेतु कहा कि केवल बाह्य विपत्तियों से प्रजा की रक्षा करना ही राजा का दायित्व नहीं है वरन् अपने राष्ट्र में रहने वाले दुष्ट लोगों से भी उनका रक्षण आवश्यक है। राजा को चाहिए कि वह लुटेरों, चोरों, ऐन्द्रजालिक आदि धूर्तों

एवं दुःसाहसी डाकुओं आदि से पीड़ित प्रजा की रक्षा करे और विशेषकर कायस्थों (लखकों एवं गणकों) से पीड़ित व्यक्तियों की रक्षा करें।

चाटस्कर दूर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः।

पीड्यमाना प्रजा रक्षेत्कायस्थैश्च विशेषतः।¹⁴

ऋषि के अनुसार राजा प्रजा की रक्षा करता था और इस रक्षण कार्य के बदले में प्रजा उसे कर प्रदान करती थी। कर प्राप्त कर लेने के पश्चात् यदि राज्य में कोई पाप कार्य होता था तो न केवल राजा उसके लिए उत्तरदायी था अपितु प्रजा द्वारा किए गए पापों का आधा पाप उसे वहन करना पड़ता था।¹⁵

पाराशर स्मृति में कहा कि जो भागती हुई सेना का संरक्षण करता है वह यज्ञ फल को प्राप्त करता है।

यस्तु भग्नेषु सैन्येषु बिद्रवस्तु समन्ततः।

परित्राता यदा यच्छेत् स च क्रतुफलं लभेत।¹⁶

प्रजा पालन

प्रजा पालन के सन्दर्भ में याज्ञवल्क्य ने कहा है- यथा

पुण्यात्पद्भागमादते न्यायेन परिपालनम्।।

सर्वदानाधिकं यस्मात्प्रजानां परिपालनम्।¹⁷

अर्थात् न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने पर राजा प्रजाओं के पुण्य का छठवां भाग प्राप्त करता है। अत एव भूमि आदि सब प्रकार के दान से उत्पन्न पुण्यफल से प्रजापालन का फल अधिक होता है।

दण्ड व्यवस्था

मनु ने कहा कि राजा के हित के लिए ईश्वर ने पहले से ही प्राणियों का रक्षक, धर्मरूप और ब्रह्मतेज रूप अपने पुत्र दण्ड को उत्पन्न किया है।¹⁸

याज्ञवल्क्य ने भी दण्ड व्यवस्था के सन्दर्भ में कहा है यथा -

धर्मो हि दण्डरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा।।¹⁹

अर्थात् आदिकाल में ब्रह्मा ने दण्ड के रूप में धर्म की ही सृष्टि की है।

राज्य की सीमा का विस्तार

स्मृति ग्रन्थ इस बात को पूर्णतः स्वीकार करती है तथा सहमत भी है कि राजा अपने साम्राज्य की वृद्धि के लिए दूसरे राजाओं से युद्ध करते हुए सीमा का विस्तार करें। याज्ञवल्क्य व मनु ने कहा कि पराजित राजा के वंश के एक व्यक्ति को राज्याभिषिक्त करें तथा राज्य (देश) की परमपराओं और मान्यताओं को सम्मान दे।

न्याय प्रदान करना

पीड़ित प्रजा को न्याय प्रदान करना वैदिककाल से ही राजा का सर्वोत्तम कर्तव्य माना गया है। प्राचीन काल में राजा तथा न्यायाधिकारियों की अदालतों में विभिन्न मुकदमों का निपटारा होता था। याज्ञवल्क्य स्मृति में उल्लेख मिलता है कि राजा क्रोधी होने पर न्याय न करे। क्रोध तथा लोभ का परित्याग करके योग्य विद्वानों से परामर्श करते हुए धर्मशास्त्र के अनुसार व्यवहारों (मुकदमों, वादों) पर विचार करना चाहिए। राजा व्यक्ति के अपराध के अनुसार ही दण्ड प्रदान करता था।

मन्त्री (अमात्य) की योग्यता

याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि मन्त्री ज्ञानी (विवेकशील) वंश पराम्परा से चले आने वाले, धैर्यवान एवं पवित्र पुरुष को ही मन्त्री बनाना चाहिए।

मन्त्री के विषय

पर राष्ट्रनीति (साङ्गुण्य) सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय इत्यादि विषयों पर अपने मन्त्रियों से परामर्श करें।

गोपनीयता

मन्त्रिपरिषद् में लिए गए निर्णय गोपनीय ही बने रहने चाहिए। समय से पूर्व उनका किसी को पता चल जाना या प्रकाशित हो जाना राष्ट्रहित में नहीं होता। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि राजकार्य का मुख्य आधार मन्त्र (मन्त्रणा, गुप्त परामर्श) है। इसलिए मन्त्र को इस प्रकार गुप्त रखा जाना चाहिए कि राजा के कर्मों (सन्धि विग्रह आदि) के फलीभूत होने के पूर्व उसकी जानकारी किसी को न हो सके। यथा—

मन्त्रमूलंयतो राज्यं तस्मान्मन्त्रं सुरक्षितम्।

कुर्याद्यथाऽस्य न विदुः कर्मणामा फलोदयात्।¹⁰

मन्त्रणा समय

याज्ञवल्क्य ने परामर्श देते हुए कहा कि अपराह में राजा को अपने मन्त्रियों के साथ बैठकर गुप्त विचार-विमर्श करना चाहिए। पुर (दुर्ग, किला अथवा राजधानी)–

याज्ञवल्क्य ने पुर अथवा दुर्ग को राज्य के सात अंगों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

राजा के निवास के सन्दर्भ में कहा है कि

रम्यं रमणीयं अशोक चम्पकादिभिः। पशव्यं पशुभ्योहितंपशुवृद्धिकरम्। आजीव्यमुपजीव्यं कन्दमूल-पुष्प-फलादिभिः। जांगलं यद्यप्यल्पोदकरूपर्वतो देशो जांगस्थताप्यत्र सजलतरूपर्वतो देशो 'जांगल' शब्देनाभिधीयते। तं देशमावसेद-धिवसेत्। विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा²¹

अर्थात् याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा में विज्ञानेश्वर ने कहा है कि राजा को ऐसे जांगल प्रदेश में वास करना चाहिए जो अशोक और चम्पक आदि पुष्पों के द्वारा अत्यन्त रमणीय हो जो पशुओं के लिए हितकर और पशुओं की वृद्धि करने वाला हो। कन्दमूल आदि फलों के द्वारा जहाँ जीवन निर्वाह हितकर हो और जहाँ जल जमा न रहता हो वहाँ निवास करना चाहिए।

देश (राष्ट्र जनपद)

स्मृतियों में जनपद के लिए प्रायः देश शब्द का प्रयोग किया है। स्मृतिकारों ने देश, राष्ट्र अथवा जनपद को अनेक छोटी-छोटी प्रशासनिक इकाइयों में विभक्त किया है। जिससे राष्ट्र का संचालन ठीक तरह से हो सके। इसी सन्दर्भ में याज्ञवल्क्य ने कहा

धातितेऽपह्ने दोषो ग्राम भर्तुरनिर्गते।

विवीत भर्तुस्तु पथि चौरौद्धर्तुर्वीत के॥

स्वसीग्नि दद्यात् ग्रामस्तु पदं वा यत्र गच्छति।

पंचग्रामी बहिः क्रोशाद्दशग्राम्यथव पुनः॥²²

अर्थात् छोटी इकाई के सन्दर्भ में कहा कि यदि गांव में किसी की हत्या हो जाए या किसी के यहां चोरी हो जाए और हत्यारे या चोर के पांवों के निशान यदि ग्राम के बाहर जाते नहीं दिखाई दें तो इसका दोष 'ग्रामपाल' पर होगा। इसके अतिरिक्त गांव की सीमा के भीतर हुई चोरी का दण्ड चोरी हुए सामान की कीमत की भरपाई ग्रामवासियों को करनी पड़ती थी। कई गांवों के बीच एक कोस (क्रोश) की दूरी पर चोरी आदि की घटना होने पर पांच या इस गांव मिलकर चोरी के सामान के मूल्य की क्षतिपूर्ति करते थे। चोरों को पकड़ने वाले अधिकारी को चौरौद्धर्ता कहा जाता था।

कोष / खजाना

राज्य के सात अंगों में कोष का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। कोष के विषय में कहा गया है कि इसके बिना न तो राज्य की रक्षा हो सकती और न ही शत्रु से युद्ध करने के लिए अच्छे सैनिक प्राप्त किया जा सकते।

कर लगाने का उद्देश्य

प्रजा की रक्षा करना राजा का प्रमुख कर्तव्य था। इसी के सन्दर्भ में कहा कि—

अरक्ष्यमाणाः कुर्वन्ति यत्किंचित्किंचित्प्रजाः।

तस्मात् नृपरेरुद्धं यस्माद् ग्रहणात्यसौ करान्॥²³

अर्थात् राजा रक्षा करने के लिए ही प्रजाओं से कर लेता है। कर देने के बाद भी प्रजा यदि असुरिक्षित होकर चौर्य आदि कर्म करती है तो उसका आधा पाप राजा को लगता है।

**क्रयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम्।
योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्कान्।²⁴**

अर्थात् राजा को व्यापारियों पर कर लगाते समय यह अवश्य देख लेना चाहिए कि उन्होंने कितने मूल्य में वस्तुएँ खरीदी, मार्ग में भोजन आदि पर कितना व्यय हुआ, व्यापारिक सामग्री को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाते व ले जाते समय उसकी रक्षा पर कितना व्यय हुआ और जो सामान वह बेचेगा उस पर कितना धन (लाभ) प्राप्त होगा। इस प्रकार राजा को कर लगाते समय जोंक, बछड़े, भंवरे और मालाकार को ध्यान में रखते हुए ही कर लगाना चाहिए। अपिच -

शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्रणिनां यथा।

तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात्।²⁵

अर्थात् राजा को चाहिए कि वह प्रजा पर अन्यायपूर्ण कर न लगाए- क्योंकि प्रजा ही राजा का प्राण होती है। प्रजा नहीं होगी तो राजा राज किस पर करेगा ? जिस प्रकार शरीर क्षीण होने से प्राणों का नाश हो जाता है उसी प्रकार यदि राजा अपनी प्रजा पर अत्यधिक करों का बोझ लादने का प्रयास करेगा तो वह अपने राज्य सहित स्वयं ही नष्ट हो जाएगा।

बल सेना

राजा अपने राष्ट्र की रक्षा तभी कर सकता है जब उसके पास पर्याप्त मात्रा में सेना हो। तत्कालीन भारतीय राजतन्त्रीय शासन के अन्तर्गत राजा ही सेना का प्रधान अधिकारी हुआ करता था। याज्ञवल्क्य ने इस सन्दर्भ में कहा -

बलानां दर्शनं कृत्वा सेनान्या सह चिन्तयेत्।²⁶

अर्थात् राजा को प्रतिदिन अपनी सेना का निरीक्षण करते हुए सेनापतियों के साथ (समय-समय पर) विचार-विमर्श करते रहना चाहिए।

शत्रु आक्रमण का समय -याज्ञवल्क्य ऋषि कहते हैं कि-

यदा सस्यगुणोपेतं पर राष्ट्रं तदा व्रजेत्।

परश्च हीन आत्मा च हृष्ट्वाहन पुरुषः।²⁷

अर्थात् जब शत्रु का राज्य अन्न आदि से भुरा पूरा न हो, शत्रु की सेना दुर्बल हो, अपनी सेना के अश्ववाहिन एवं सैनिक प्रसन्न और उत्साहपूर्ण हो तब राजा को आक्रमण करना चाहिए।

युद्ध के नियम

युद्ध करते समय किन-किन नियमों का ध्यान (रखा जाय) अर्थात् किस पर आक्रमण करें व किस पर आक्रमण नहीं करें, इसके विषय में कहा यथा -

**तवांहवादिनं वलीबं निर्हेतं परसंगतम्।
न हन्याद्विनिवृतं च युद्धं प्रेक्षणकारिकम्।²⁸**

अर्थात् मैं तुम्हारा ही हूँ, ऐसा कहने वाले, नपुंसक, शस्त्रहीन, दूसरे के साथ युद्ध में संलग्न, (युद्ध से) निवृत्त और युद्ध देखने के लिए आए हुए व्यक्ति को नहीं मारना चाहिए।

**न पानीयं पिबन्तं न भुंजानं नौपानहौ मुंचन्तं
नावर्माणं सवर्मा न स्त्रियं न करेणु न वाजिनं न
सारथिन
न सुतं न दूतं न ब्राह्मणं न राजानमराजा
हन्यात्।²⁹**

अर्थात् पानी पीते हुए, भोजन करते हुए, जूते उतारते हुए, कवच रहित, हाथी, घोड़े, सारथी, स्त्रियों और पुत्र शोक में दुःखी दूत, ब्राह्मण और राजा को नहीं मारना चाहिए।

सुहृद् मित्र

स्मृतिकार मानते हैं कि प्राचीन भारत में छोटे-छोटे राज्य प्रायः आपस में लड़ते रहा करते थे। दूसरे राज्य की भूमि, सुवर्ण आदि प्राप्त करने की लालसा युद्ध के कारण बनते थे। इसको बहुत ही सरल शब्दों में कहते शत्रु को हराने के लिए मित्र का होना अतिआवश्यक हो जाता है। अर्थात् अपने से शक्तिशाली राजा से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना। इस हेतु मण्डल सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया, जिसके अन्तर्गत अपने राज्य के आसपास और दूरस्थ राज्यों से राजनीतिक सम्बन्धों को कायम करने की प्रेरणा मिली। इस प्रकार राजाओं के समुदाय को जो कि कमल के आकार वाला हो उसे राजमण्डल कहते हैं।

हिरण्यभूमिलाभेभ्यो मित्रलब्धिर्वरा यतः।

अतो यतेत तत्प्राप्ये रक्षेत्सत्यं समहितः।³⁰

अर्थात् भूमि, सुवर्ण के लाभ से मित्र की प्राप्ति उत्कृष्ट है। अत एव मित्र की प्राप्ति के लिए यत्न करना चाहिए।

निष्कर्ष

स्मृतिग्रन्थों में राजधर्म के प्रसंग बहुत है इस पत्र में राजा के गुण, दुर्गुण, दिनचर्या, शत्रुओं से युद्ध करना, प्रजा रक्षण, प्रजापालन, दण्ड व्यवस्था, राज्य सीमा विस्तार, न्याय, मन्त्री, मन्त्रणा, देश, सेना इत्यादि बिन्दुओं के विषय में लिखा गया है। एक पत्र की कसौटी पर यह पूरा उतरेगा ऐसी आशा है। मैने स्थान व समय की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए बहुत ही संक्षिप्त में राजधर्म का उल्लेख किया है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मनुस्मृति 2/10
2. उ. प्र. हिन्दी संस्थान - 1992
3. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/35 चौ. सं. सं. वाराणसी
4. ऋग्वेद 1.174.1
5. याज्ञवल्क्य स्मृति - 1/13/309-311
6. मुन - 7/30-33
7. याज्ञवल्क्य 1/13/340-341
8. याज्ञवल्क्य 1-13/309-311
9. याज्ञवल्क्य 1/1/327
10. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/328
11. दक्ष स्मृति 7/18 (20 स्मृतियों, खण्ड द्वितीय, सम्पादन पं. श्री राम शर्मा आचार्य संस्कृति संस्थान, बरेली)
12. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/325
13. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/324
14. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/336
15. याज्ञवल्क्य 1/13/337
16. पाराशर स्मृति 3/35
17. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/335
18. मनुस्मृति 7/14
19. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/354
20. याज्ञवल्क्य 1/13/344
21. याज्ञवल्क्य 1/13/321
22. याज्ञवल्क्य स्मृति स्तेम प्रकरण 2/23/271-272
23. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/337
24. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/20/253
25. याज्ञवल्क्य स्मृति 2/20/253
26. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/329
27. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/348
28. याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/326
29. विज्ञानेश्वर की याज्ञवल्क्य स्मृति 1/13/326 पर मिताक्षरा।
30. याज्ञवल्क्य 1/13/352

डॉ. सत्यनारायण की कहानियों में यथार्थ के विविध रूप

नाथू राम हिंगोनिया

शोद्यार्थी, महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

साहित्यकार के साहित्य में विधा का उतना महत्त्व नहीं होता, जितना कि उसके भीतर से प्रस्फुटित होने वाली चिंतन दृष्टि का। डॉ. सत्यनारायण में यह उनकी चिंतन दृष्टि ही है, जो पाठक को पग-पग पर केवल बाँधती ही नहीं आचरण करने की दिशा में प्रवृत्त भी करती है। 'सत्यनारायण' मात्र साहित्य सृष्टि ही नहीं, वरन् जीवन-दृष्टा भी हैं, उन्होंने जीवन का आदर्श ग्रंथों में नहीं वरन् जीवन में ढूँढ़ा है और उसे कभी अभिशाप नहीं माना है। जीवन को जिस समग्रता के साथ उन्होंने जिया, देखा और परखा, उसी समग्रता के साथ उन्होंने अपने साहित्य में अभिव्यक्ति दी है। इनकी कहानियों में इनका भोगा हुआ जीवन यथार्थ उजागर होता है। इनकी प्रमुख कहानी संग्रहों में 'सितम्बर में रात', 'फटी जेब में एक दिन', 'रेत की कोख में' आदि कहानियों में बेरोजगारी, भूख, गरीबी, प्रेम का उन्मुक्त चित्रण, प्रकृति का चित्रण, मरती मानवीय संवेदनाएं तथा अकाल की पीड़ा ही उजागर होती है।

संकेताक्षर : उन्मुक्ता, प्रेम, शोषण, संवेदना, छटपटाहट, बैचेनी, पीड़ा, यथार्थ, भूख, बेरोजगारी, असंतोष, आशा, भटकाव, मौत, आँसू, अतीत, यादें, समर्पण, संघर्ष।

साहित्यकार दूरदृष्टा होता है अतः उसकी दृष्टि सूक्ष्म होती है। उसका चिंतन जितना गहरा, यथार्थ और मानव मूल्यों की उन्नति का प्रेरक होता है, उतना ही टिकाऊ और लोकप्रिय होता है। वह अपने साहित्यकार का स्वर बनकर साहित्य के माध्यम से जन-जन तक पहुँचता रहता है। यथार्थवादी आलोचक बोरिससुखोव ने यथार्थवाद को कुछ इस तरह से परिभाषित किया है कि—“यथार्थवाद सामाजिक परिवेश तथा कार्यकारण संबंधों के विश्लेषण की अपनायी गयी वह रचनात्मक भूमि है जिसके आधार पर वास्तविकता का वस्तुपरक चित्रण होता है। यथार्थवादी लेखक की अपनी वैयक्तिक दृष्टि होती है। घटनाओं के प्रति उसकी दृष्टि और जीवन तथा इतिहास के प्रति उसकी समसामयिक समझ, सामाजिक संघर्ष जिसमें वह आवश्यक रूप से भाग लेता है, के प्रति उसकी प्रवृत्ति को प्रतिबिंबित करती है।” यथार्थ में चिंतन होना चाहिए, जीवन की सच्चाइयाँ भी होनी चाहिए, साथ ही वह जीवन के प्रति प्रेरणास्पद भी होना चाहिए। हिन्दी जगत में राजस्थान के ख्याति प्राप्त डॉ. सत्यनारायण बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार हैं। वे जीवन-संग्राम के जीवन्त योद्धा, उदार अलमस्त मानव, प्रगतिशील विचारक, बहुश्रुत, बहुपठित प्राध्यापक हैं। इन्होंने हिन्दी जगत में कविता, कहानी, संस्मरण, रिपोर्ताज, डायरी, आलोचना आदि विभिन्न विधाओं में साहित्य का सृजन किया है। इनका जीवन कर्म और 'जिजीविषा' का पर्याय है। इनका समग्र लेखन इनके जीवन्तता को स्पष्ट करता है। गहन आस्था एवं भोगे हुए यथार्थ से मिलकर इनका कृतित्व चेतन हो उठा है। इनका हृदय संवेदनशील, भावुक व संवेदना से युक्त रहा है। डॉ. सत्यनारायण सच्चे यथार्थवादी कथाकार हैं।

साहित्य की विधाओं में कहानी अधिक कलात्मक होती है, इसलिए कहानी पाठक को अपनी ओर आकर्षित करती है। डॉ. सत्यनारायण की कहानियों में उन्मुक्त प्रेम, प्रकृति चित्रण, अकाल की त्रासदी, शोषण, भूख, गरीबी, बेरोजगारी आदि का चित्रण बड़े मार्मिक रूप से किया गया है। डॉ. सत्यनारायण के अब तक तीन महत्त्वपूर्ण कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं 'रेत की कोख में', 'फटी जेब से एक दिन' तथा 'सितम्बर में रात' आदि प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

डॉ. सत्यनारायण की कहानियों में वे अपने जीवन संघर्ष को उजागर करते हैं। कहानीकार ने जो स्वयं कड़वी सच्चाई जानी है, वो कड़वा घूट पीकर कहानियों के लिए कसम उठाई है। इनकी कहानियाँ कथानक की दृष्टि से नवीन भावबोध से युक्त हैं। आपकी कहानियाँ नई जमीन की तलाश करती नजर आती हैं।

‘सितम्बर में रात’ कहानी संग्रह के बारे में कथा साहित्य के प्रमुख आलोचक मधुरेश ने ठीक ही कहा है कि-“विमर्शों के इस दौर में सत्यनारायण की कहानियाँ पूरी तरह से विमर्श-मुक्त कहानियाँ हैं। इनमें स्त्रियाँ हैं और समाज में प्रायः सब कहीं दलित जैसी नियति भोगने वाले उपेक्षित और वंचित हाशिए के लोग भी।”² डॉ. सत्यनारायण की ऊर्जा और रचनात्मक स्रोत के प्रति आश्वस्त हुआ जा सकता है। अधिकतर कहानीकारों पर जो विषय वैविध्य का आरोप लगाया जाता है और कहा जाता है कि कहानीकार के अनुभव इतने सीमित है कि वह जीवन की बारीकियों तक पहुँच ही नहीं पाता लेकिन डॉ. सत्यनारायण अपने पहले कहानी संग्रह के माध्यम से इस आरोप का खंडन करते हैं। उनकी पूरी कहानियों के बाद सतही ढंग पर यह धारणा बनी है कि सत्यनारायण के पास एक एक युवक है जो बेरोजगार है, भूखा है। उसके पास कुछ भी नहीं है।

अब हम डॉ. सत्यनारायण की कहानियों में चित्रित यथार्थ के विविध रूपों पर प्रकाश डालते हैं-

बेरोजगारी, भूख एवं गरीबी

आर्थिक संकट में जीवन जीने का संघर्ष प्रबल हो गया। आर्थिक अभाव के कारण समाज जर्जर और खोखला बन रहा है। बेरोजगारी, भूखमरी व गरीबी आर्थिक विषमता का ही परिणाम है। आर्थिक विषमता के परिणाम स्वरूप देश की अर्थ नीति बिगड़ती जा रही है। दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति न होने के कारण समाज में मोह भंग स्थिति उत्पन्न हुई। युवक अपने बेरोजगारी से परेशान होकर अपनी जीविका चलाने के काम की तलाश में भटक रहा है। डिग्रियाँ प्राप्त करके भी जब रोजगार नहीं मिलता तो व्यक्ति के सपने बिखर जाते हैं व गहरी खाई में गिरा हुआ महसूस करता है व्यक्ति स्वयं को। बढ़ती हुई आबादी भी गरीबी का कारण मानी जाती है। लोगों के पास जहाँ बहुत ज्यादा पैसा है। वहीं आधे से अधिक आबादी विकट हालात में जीवन जी रही है।

‘मुड़े-तुड़े’ कहानी में कहानीकार डॉ. सत्यनारायण ने वर्णित किया है कि एक बेरोजगार युवक गाँव से आता है, वह संघर्ष करता हुआ बहुत हिम्मत करता है। लेकिन उस दरम्यान उसकी प्रेमिका भी उसे छोड़कर चली जाती है। इस प्रकार वह शहरीपन के माहौल में अपने दायित्वों व कर्तव्यों को भूल जाता है। कहानीकार के शब्दों में कथ्य मार्मिक बन पड़ा है-“खत का मजबूत चुनते ही मेरे कान सतर्क हो गये, क्योंकि बस में कल मेरी ही जेब कटी थी। बापू और सुमि के खत से अतिरिक्त चार-पाँच रुपये भी थे, जिनके निकल जाने के कारण मुझे पाँच-छह किलोमीटर पैदल चलना पड़ा था और शाम को कहीं जुगाड़ न होने से भूखे पेट सोना पड़े।”³ इस कथाकार ने आसपास ये परिवेश देखा व भोगा है। इसी को कहानी का कथ्य बनाया है।

‘रेगिस्तान के इस तरफ’ कहानी में लेखक ने भूख व गरीबी को कथ्य बनाया है। कथानायक की भूख, गरीबी व बेरोजगारी में रहने से उसकी प्रेमिका उसे छोड़कर चली जाती है। इसलिए वह बेरोजगार नवयुवक प्रेम में भी सफल नहीं होता है। उसके चेहरे पर भूख, गरीबी व बेरोजगारी की काली छाया साफ मंडरा रही थी। कहानीकार ने इस समस्या को यहाँ पर बखूबी चित्रित किया है। वह प्रेमी नायक भूखा अकेला हाँफता हुआ शहर के चारों तरफ भटकता रहता है उस प्रेमी नायिका के मिलने की आशा में वह खोया-सा रहता है-“मैं भूखा था, पेट में सिर्फ हवा भरी हुई थी, पानी भी नहीं। पिछले वर्षों में कई इंटरव्यू देने के बाद भी कहीं कोई काम नहीं मिला था। लेकिन हर रोज लगता कल जरूर काम मिल जायेगा या कहीं से बहुत सारे पैसे आ जायेंगे, यह सोच कर थोड़ी देर के लिए खुश हो लेता और इस तरह एक दिन और कट जाता।”⁴ यहाँ पर कहानीकार ने शहरी जीवन में रहने वाले शिक्षित बेरोजगार युवकों की समस्या को भी उठाया गया है।

‘फटी जेब से एक दिन’ कहानी भी गहरे कथ्य को पूर्णतः स्पष्ट करती है। यह कहानी भी बहुत मर्मस्पर्शी कहानी है। इसमें कथाकार ने खुद के माध्यम से बेरोजगारी पर करारी थप्पड़ मारी है। इसमें स्वयं लेखक कथानायक व असित दोनों मित्र हैं। दोनों ही पढ़े-लिखे बेरोजगार हैं। कथानायक ने एम.ए. कर लिया है और उसका मित्र अभी फाइनेल में है। उनके हालात सही नहीं हैं कि वे किराया भी चुका सके। मगर किराया दूर खाना खाने के भी पैसे नहीं हैं। यहाँ पर

कथाकार ने कथानक को मर्मस्पर्शी बना दिया है। जैसे-“यार मैंने तो सुबह से कुछ खाया ही नहीं, तुमने तो यूनिवर्सिटी में कुछ खा पी लिया होगा।”⁵ कहानीकार ने बेरोजगारी की मनः स्थिति को यहाँ पर उजागर किया है। इसलिए कथ्य प्रभावशाली व मार्मिक बन पड़े हैं।

मरती मानवीय संवेदनाएं

वर्तमान समय में व्यक्ति की संवेदनाएँ दम तोड़ रही हैं। किसी के अंदर दूसरे के लिए दुःख केवल दिखावटी मात्र रह गए हैं। यहाँ तक भौतिकतावाद ने व्यक्ति को इतना व्यस्त कर दिया है कि उसके पास अपने लिए फुर्सत नहीं है। कहानीकार ने ‘आग से पहले’ कहानी में आज के सच को बखूबी चित्रित किया है। कथाकार ने गहरे रहस्यात्मक कथ्य को यहाँ पर उद्घाटित किया है। कथाकार ने यहाँ पर श्मशान घाट और गणेशी नामक पात्र की व्यथा को उजागर किया है। एक व्यक्ति की लाश को चंद लोग श्मशान घाट लेकर आए थे। वहाँ पर लकड़ी का भाव ज्यादा था तो वे लोग लाश को लावारिस की भाँति श्मशान घाट में गणेशी के भरोसे छोड़कर चले गए। अंत में लाला उस लाश को पैसों के लालच में मेडिकल वालों को बेच देता है। गणेशी का अन्तःसः काँप गया। इस प्रकार मेरी भी लाश की दुर्गति होगी। यहाँ पर कहानीकार के शब्द कथ्य के रूप में मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं-“विचार आया कि वह भी एक दिन इसी तरह मर जायेगा। उसके गले में गोला सा अटक गया.....वह हाँपने लगा था। आँखों के कोयों में पानी की दो चार बूँदे आकर ढहर गयीं।”⁶ यहाँ पर कहानीकार ने आज के युग में मरती मानवीय संवेदना को बखूबी चित्रित किया है।

प्रेम एवं प्रकृति का चित्रण

‘रामी’ कहानी में बंजारा समाज की रामी के प्रेम, प्रकृति संरक्षण व पर्यावरण रक्षा को वर्णित किया गया है। कथानायक रामे व रामी का अटूट प्रेम है लेकिन रामे के पिताजी का तबादला हो गया है इसलिए रामे को अपनी प्रेमिका रामी के वियोग का दर्द भी है। कथाकार ने यहाँ इसी कथ्य को आधार बनाते हुए कहानी को गति प्रदान की है। कथाकार का कथ्य लाजवाब बन पड़ा है-“रामी, अब हम यहाँ से जा रहे हैं.....आगे गले ने मेरा साथ नहीं दिया.....रामी ने कुछ नहीं कहा देर तक वह चुप खड़ी रही और फिर एकाएक अपने दाएं हाथ के अंगूठे को दाँतों के बीच जोर से दबा लिया। देखो भूलोगे तो नहीं कभी ?

भायलाचारा मत तोड़ना नहीं तो पाप लगेगा। तुमने उस दिन पाणी में आण उठाई थी। अच्छा लो, मैं अपने ऊपर ले लेती हूँ। भूलोगे तो भी सारा पाप मुझे लगेगा।”⁷ यहाँ पर कथाकार ने इन प्रेममय, प्रकृति के विषयों को भी कहानी का कथ्य बनाया है।

प्रेम को लेकर ‘फटी जेब से एक दिन’ कहानी में कथानायक अपनी प्रेमिका की यादों में खोया रहता है-“मुझे लगता है, तुम अभी आओगी जैसे अक्सर आती थी। अबोले एकटक मैं तुम्हें देखता रहूँगा। कोई बोल नहीं, कोई आवाज नहीं। सिर्फ आँखों को हिलती पुतलियाँ।”⁸ यहाँ पर कहानीकार प्रेमिका की यादों में खो जाता है। आँखों की पुतलियाँ हिलते ही उस प्रेमिका की यादें सताती हैं। जब मानवीय प्रेम होता है मानवीय रिश्ते अपने आप ही गहराई से जुड़ जाते हैं।

अकाल की पीड़ा

‘कहीं कुछ गड़बड़’ कहानी में अकाल की पीड़ा को उजागर किया गया है। गाँवों में अकाल की मार है, समय पर बरसात नहीं हुई है। प्रकृति भी लोगों की आशा पर खरी नहीं उतरी। कथानायक रामप्रसाद कहता है-“कैसी उमस हो रही है आखा साढ़ सूखा निकाल गया और अभी तक मेह नहीं बरसा। भगवान भी मरे को मारता है। शहर में कैसी धूमधाम मची है। रंग-बिरंगे लत्तों में लोग उछलकूद कर रहे हैं और गाँव में साली पाणी की किल्लत।”⁹ कहानीकार ने इस कहानी के माध्यम से प्रकृति वर्णन के साथ ही अकाल की छाया पर भी अच्छा प्रकाश डाला है।

‘रेत की कोख में’ कहानी में भी अकाल का चित्रण किया गया है। कथानायक किसान परिवार से संबंध रखता है। वह शहर आने के बाद भूल गया कि पारिवारिक जिम्मेदारियों का कौन निर्वहन करेगा। उनके घर, परिवार को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। जब कथानायक अपनी माँ की मृत्यु के समय अपने पैतृक गाँव पहुँचता है तो वह वह गाँव की कड़वी सच्चाई अकाल की समस्या को उजागर करता है। अकाल कथानायक को हिला डालता है-“पिछले पाँच बरसों से यहाँ लगातार अकाल पड़ रहा था। चेहरे एक-एक कर लोप होते जा रहे थे पानी और पानी रोटी और रोटी। चौतरफ एक ही हूक कि किसी तरह जिन्दा रह सके। पर लोग अब सिर्फ अपनी आँखों में जीवित थे। एक-दूसरे की टोह लेते हुए।”¹⁰ सभी लोग बारिश की बाट जोहते कब ठंडी हवा चले, कब बारिश हो और किसान की फसले लहलाये।

वस्तुतः हम उपर्युक्त विवेचन के बाद निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि संवेदनशील व गंभीर तथा गाँव की सनी मिट्टी के चितेरे रचनाकार डॉ. सत्यनारायण की कहानियों में प्रेम का उन्मुक्त चित्रण, प्रकृति का सौन्दर्य, भूख, गरीबी, बेरोजगारी, मानवीय प्रेम, मानवीय रिश्ते, अकाल की पीड़ा इत्यादि बिन्दुओं के माध्यम से उनका भोगा हुआ यथार्थ उनकी कहानियों में उभकर आता है, जो पाठकों को बरबस ही कथाकार की जीवन गाथा को पढ़ने के लिए मजबूर करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. यथार्थवाद का एक इतिहास : बोरिस सुखोव, पृ. 22
2. डॉ. सत्यनारायण : राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, 2014, पृ. 21-22
3. 'मुड़े-तुड़े', फटी जेब से एक दिन : डॉ. सत्यनारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ. 4
4. 'रेगिस्तान की इस तरफ', फटी जेब से एक दिन : डॉ. सत्यनारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ. 37
5. फटी जेब से एक दिन : डॉ. सत्यनारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ. 19
6. 'आग से पहले', रेत की कोख में : डॉ. सत्यनारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, 1994, पृ. 19
7. 'रामी', सितम्बर में रात : डॉ. सत्यनारायण, शिल्पायन, दिल्ली, 2006, पृ. 84
8. फटी जेब से एक दिन : डॉ. सत्यनारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ. 42
9. 'कहीं कुछ गड़बड़', फटी जेब से एक दिन : डॉ. सत्यनारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ. 70
10. रेत की कोख में : डॉ. सत्यनारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर, 1994, पृ. 33

वागड़ में भील जनजाति का संघर्ष एवं स्वतन्त्रता आन्दोलन

प्रकाश चन्द्र यादव

शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्राचीन वागड़ क्षेत्र में वर्तमान इंगरपुर और बांसवाड़ा के राज्यों तथा मेवाड़ राज्य का कुछ दक्षिणी भाग अर्थात् छप्पन नामक प्रदेश का समावेश होता था। यह इतिहास की बहुत बड़ी विड़म्बना है कि जो आदिवासी इस देश के इस क्षेत्र के मूल निवासी थे, वे ही अपने बाद में आने वाली जातियों द्वारा प्रताड़ना के शिकार बने। राजपूतों ने भीलों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध कायम करने के प्रयास किये क्योंकि राजपूत शासक यह बात समझ चुके थे कि यदि उन्हें इन क्षेत्रों में बने रहना है तो आदिवासियों का समर्थन व सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। देशी रियासतों व ब्रिटिश सरकार की क्रूरता, तानाशाही व अत्याचार के कारण उनमें राजनैतिक चेतना जागृत हुई।

संकेताक्षर : आदिवासी, भीलों, वागड़, विद्रोह, गोविन्द गिरी, जनजातीय संघर्ष।

दक्षिणी राजस्थान के वागड़ क्षेत्र में भील, मीणा, गरसिया और डामोर जनजातियाँ निवास करती हैं। भील बहुसंख्यक बांसवाड़ा-इंगरपुर जिले जनजाति उपयोजना क्षेत्र (Tribal Sub Plan) घोषित है। लगभग 80 प्रतिशत आदिवासी आबादी वाला वागड़ का विशाल क्षेत्र 23.1 से 24.1 उत्तरी अक्षांश एवं 73.01 से 74.1 पूर्वी देशान्तरों के मध्य स्थित है। इसके उत्तर में उदयपुर, पूर्व में मध्यप्रदेश तथा दक्षिण पश्चिम में गुजरात राज्य की सीमाएँ लगी हुई हैं। इसका क्षेत्रफल लगभग 4000 वर्ग मील है।¹ राजस्थान की कुल 9238534 जनजाति जनसंख्या में से वागड़ की जनजाति जनसंख्या 4100264 है। जहाँ जनजातियाँ की 27.59 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है।² इस प्रदेश का वागड़ नाम करीब एक सहस्राब्दी से प्रचलित पाया जाता है। पुराने शिलालेखों, ताम्रपत्रों, जीवन चरित्रों तथा अन्य प्रशस्तियों आदि में इसका उल्लेख प्राप्य है। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के विद्वानों ने इसे वागट, वग्गड, वैयागड़ एवं वाग्वर आदि शब्दों से संबोधित किया है प्राचीन वागड़ क्षेत्र में वर्तमान इंगरपुर और बांसवाड़ा के राज्यों तथा मेवाड़ राज्य का कुछ दक्षिणी भाग अर्थात् छप्पन नामक प्रदेश का समावेश होता था। रामायण के रचयिता वाल्मिकी निषाद ही थे। निषादराज ने राम, लक्ष्मण और सीता को गंगापार करने में सहायता दी थी। निषादराज हिरण्यधनु के पुत्र एकलव्य की गुरु भक्ति व धनुर्विद्या सुप्रसिद्ध है। भगवान श्रीराम को, प्रेम विभोर होकर जुटे बैर खिलाने वाली भी शबरी आदिवासी भीलनी थी।⁴

भील शब्द की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों के परस्पर विरोधी मत हैं। इस शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उदयपुर राज्य के गजेटियर में उल्लेख किया गया है कि “भील नाम द्रविड़ों के शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ धनुष है जो भील जनजाति की पहचान बताने वाला हथियार है, ऐसा कुछ विद्वान मानते हैं। जबकि भील विद्वान इस शब्द की उत्पत्ति संस्कृति की क्रिया से मानते हैं, जो निशाना लगाने से सम्बन्धित है और कुशल धनुष संचालक का पर्यायवाची है”⁶ द्रविड़ भाषा के शब्द “पिल्लू” अथवा “बिल्लू” का अर्थ धनुष होता है। अनेक प्राचीन तमिल कवियों ने उत्तर भारत में रहने वाले आदिवासियों को “विल्लूवार” शब्द से सम्बोधित किया है, जिसका अर्थ धनुषधारी आदिवासी समुदाय से है।

शिमला में ई. 1969 में आदिवासियों के संदर्भ में एक बहुत बड़ी सेमीनार हुई थी। इस सेमीनार में आदिवासियों के अर्थ की विशद व्याख्या की गई और कहा गया कि- जो अनपढ़ है, गरीब है, पिछड़े है, जंगलों और पहाड़ों में रहते हैं वह आदिवासी है। बम्बई विश्वविद्यालय के गोविन्द सदाशिव घूरिये (G.S. Ghurye) ने कहा कि आदिवासी पिछड़े हुए हिन्दु है। बेरियर एल्विन का मत है कि आदिवासी ऐबोरिजिनल (Aboriginal) अर्थात् मूल निवासी है।

कर्नल जेम्स टॉड भीलों को “वनपुत्र” मानते हुए कहते हैं कि जहाँ ये पैदा हुए, वहीं पर अभी तक स्थिर है। ऐथोववेन के अनुसार भीलों का मूल निवास स्थान आबू व असीरगढ़ के मध्य का पहाड़ी प्रदेश है जहाँ से वे पश्चिम व दक्षिण की ओर गुजरात में तथा दक्षिण भारत के उत्तरी क्षेत्र के मैदानों में फैल गये।⁷

यह इतिहास की बहुत बड़ी विडम्बना है कि जो आदिवासी इस देश के इस क्षेत्र के मूल निवासी थे, वे ही अपने बाद में आने वाली जातियों के प्रताड़ना के शिकार बने। आजादी के पूर्व तक आदिवासी जंगलों और पहाड़ों के पिछवाड़े रहकर त्रासदी का जीवन बिताते रहे। आज आदिवासियों को संविधान के तहत जो आरक्षण, आर्थिक सुविधाएँ और अन्य सुरक्षाएँ मिली हैं।

टॉड के अनुसार गुहिल ईंडर के भीलों के साथ रहते थे। उस समय ईंडर पर मंडलीक नामक भील सरदार का राज्य था।⁸ कुशलगढ़ क्षेत्र में भी रावैड़ राजपूतों ने कुशला भील को मारकर कुशलगढ़ 14 वीं सदी के प्रारम्भ में रावल वीरसिंह ने भील मुखिया इंगरिया अथवा इंगर को मारकर इंगरपुर पर अधिकार कर लिया। नामक राज्य बसाया। बांसवाड़ा में वांसिया भील को पराजित किया। इसी प्रकार इंगरिया भील का शासन इंगरपुर में था कोटा राज्य नाम भी एक भील जाति कोटिया पर आधारित है। पूर्वी राजस्थान में बून्दी को राजपूतों ने मीणों से जीता। 16वीं सदी में महाराणा प्रताप को मुगल शासक अकबर के विरुद्ध हल्दीघाटी युद्ध में भीलों ने पूर्ण सहयोग दिया। इसी कारण से मेवाड़ के राज्य चिन्ह में भीलों को स्थान मिला। कुशलगढ़ के राज्य चिन्ह में भी एक तरफ भील सरदार व दूसरी तरफ राजपूतों का होना लक्षित होता है।

13वीं शताब्दी में गुहिल-भील पारस्परिक सम्बन्धों का संकेत एकलिंगजी मन्दिर के 1282 ई. का एक अभिलेख मिलता है। यह अभिलेख दर्शाता है कि उस समय मेवाड़ क्षेत्र में भील व गुहिल शासकों के बीच मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रहे होंगे।

राजस्थान के वागड़ क्षेत्र में राजपूत आधिपत्य से पूर्व भीलों का वर्चस्व था। इस तरह भील व राजपूतों में सहयोग व संघर्ष, मित्रता व शत्रुता की स्थितियों निरन्तर बनी रही। राजपूतों ने भीलों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध कायम करने के प्रयास किये क्योंकि राजपूत शासक यह बात समझ चुके थे कि यदि उन्हें इन क्षेत्रों में बने रहना है तो आदिवासियों का समर्थन व सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है। भील

बहुल क्षेत्रों में राजपूत शासकों ने भीलों को टीका अथवा राजतिलक का विशेष अधिकार प्रदान किया। मुख्यतः उदयपुर, इंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ राज्यों में राजगद्दी पर नये उत्तराधिकारी के बैठने के समय उसके राजतिलक का अधिकार भीलों को दिया गया। राजतिलक करने वाला भील अपने अंगूठे के रक्त से इस औपचारिकता को पूरी करता था। यह इस बात का प्रतीक था कि भील उस क्षेत्र के असली वासिन्दे हैं। एक प्रकार से भीलों का औपचारिक स्वामित्व स्वीकार किया गया था।⁹

इस प्रकार इतिहास के इन विभिन्न तथ्यों के अध्ययन से स्पष्ट है कि भील दक्षिणी राजस्थान के मूल निवासी थे। राजपूतों ने उन्हें पराजित कर अपने राज्य स्थापित किये। लम्बे समय तक इन दोनों जातियों में सहयोग व संघर्ष की स्थिति बनी रही। समय-समय पर राजपूतों ने भीलों के वफादारी व साहस के गुणों को पहचानते हुए उनकी सेवाओं का उपयोग किया। भीलों को मान-सम्मान देते हुए उनकी सेवाओं का उपयोग किया तब तक वे उनके राज्य के रक्षा-स्तम्भ बने रहे।

भीलों का संघर्ष एवं विद्रोह

- 1724 में मराठों ने मेवाड़ पर प्रथम बार चढ़ाई की। उसके पश्चात् 1728-29 के दौरान इंगरपुर एवं बांसवाड़ा मराठा आक्रमण के शिकार हुये। 1736 के बाद यह मराठों की एक नियमित गतिविधि बन गयी जब दक्षिणी राजस्थान के राज्यों से चौथ वसूली हेतु प्रतिवर्ष अभियान चलने लगे। भीलों को इन राज्यों में मालवा व गुजरात की ओर से सीमा पर आक्रमणकारी मराठों की घुसपैठ को रोकने का कार्य सौंपा जिससे भील व मराठों में सीधा संघर्ष हुआ। मराठा, भील क्षेत्रों की भू-आकृति एवं गुरिल्ला युद्ध पद्धति से भली भाँति परिचित थे इसलिये उन्होंने भील क्षेत्रों में घुसने के प्रयास किये एवं उनकी पालों (बस्तियों) पर आक्रमण किये। मराठों ने भीलों पर अनेक अत्याचार किये एवं मराठों के दमनात्मक उपायों ने भीलों को लूट और अपराध अपनाने पर मजबूर कर दिया।¹⁰
- 13 जनवरी, 1818 के मेवाड़ राज्य ने अंग्रेजों के साथ सन्धि की, इसके अनुसार राज्य के सभी बाह्य मामले अंग्रेजों के हाथों सौंप दिए गए थे। कुछ मामलों में अंग्रेजों को

राज्य के आन्तरिक मामलों में भी हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त था। इसी प्रकार भील व गरासिया बाहुल्य राज्यों इंगूरपुर, बांसवाड़ा, प्रतागढ़ व सिरोही ने अंग्रेजों के साथ क्रमशः 11 दिसम्बर 1818, 25 दिसम्बर 1818, 5 अक्टूबर 1818 व 11 सितम्बर 1823 को सन्धियाँ की।¹¹ इन सन्धियों ने अंग्रेजों को राज्यों के मामले में हस्तक्षेप करने हेतु अधिकृत कर दिया था एवं भील व अन्य आदिवासी समुदाय ब्रिटिश नीतियों के सर्वाधिक शिकार हुए। इन सन्धियों व परवर्ती संशोधनों, समझौतों एवं कौलनामों में अनेक प्रावधान भील विरोधी थे। व्यवहारिक तौर पर अंग्रेज इन राज्यों के वास्तविक स्वामी बन गए थे क्योंकि इन राज्यों द्वारा दिए जाने वाले वार्षिक नजराने की राशि अधिकांश मामलों में निश्चित नहीं की गई थी तथा राजस्व का एक भाग अंग्रेजों द्वारा लिया जाना तय किया गया था। प्रथम भील विद्रोह उदयपुर राज्य में ही आरम्भ हुआ था।¹² उदयपुर राज्य के भील विद्रोह से प्रभावित होकर इंगूरपुर व बांसवाड़ा राज्यों के भीलों ने भी अल्प अशान्ति उत्पन्न की तथा 1825 में आदिवासी विद्रोहों की बिखरी हुई घटनाएँ घटी। इंगूरपुर राज्य में स्थिति अधिक गम्भीर थी। इसलिए भीलों के दमन हेतु अंग्रेजी सेना भेजी गई, किन्तु वास्तविक संघर्ष आरम्भ होने के पूर्व ही भील मुखियों ने मई, 1825 में समझौता कर लिया।¹³

- 12 मई, 1825 को इंगूरपुर राज्य में लीम्बराबारु के भीलों ने अंग्रेजों के साथ एक समझौता किया जो वास्तव में अंग्रेजी द्वारा भीलों पर थोपा गया था।¹⁴
- 1836 में बांसवाड़ा राज्य में भील उपद्रव हुए जिन्हें अंग्रेजी सेना की सहायता से बांसवाड़ा के महारावल ने तुरन्त नियंत्रित कर दिया था।¹⁵ अंग्रेज भीलों की सेना का गठन करना चाहते थे क्योंकि भीलों के द्वारा भीलों का दमन आसान था। इस हेतु 1841 में मेवाड़ भील कॉर्पस की स्थापना की गई।¹⁶
- 1844 में बांसवाड़ा राज्य में छुटपुट भील विद्रोह हुए। इसका कारण अंग्रेजों की

मनमानी थी। वहाँ भी रखवाली कर का मामला था, जो बांसवाड़ा के भील अपने पड़ोसी मालवा के क्षेत्रों से लम्बे समय से वसूल करते आए थे। किन्तु अंग्रेजों के साथ सन्धि के पश्चात् भीलों के इस अधिकार पर रोक लगा दी गई थी। रखवाली के मुद्दे पर बांसवाड़ा के भीलों ने मालवा में स्थित मोखेडी गांव पर धावा बोल दिया जिससे वहाँ का मुखिया मारा गया। इसी समय माही कांठ एजेन्सी के अन्तर्गत पोसीना (गुजरात) एवं सिरोही राज्य के भील व गरासिया विद्रोही थे।¹⁷ बांसवाड़ा राज्य के भील विद्रोह को गुजरात में 1846 के कुवार जिवे बसावो के नेतृत्व में गुजरात के भील विद्रोह से बढ़ावा मिला।¹⁸ बांसवाड़ा राज्य ने अपने वकील कोठारी केशरीसिंह को सहायता हेतु वेस्टर्न मालवा ब्रिटिश एजेन्ट के पास भेजा तथा अंग्रेजी सेना की सहायता से 1850 के अन्त तक भील विद्रोह को कुचल दिया गया था।¹⁹ 1857 के समय भी भील विद्रोह की सम्भावना थी किन्तु भील इस राष्ट्रीय क्रांति से अनभिज्ञ थे।

- 1867 में इंगूरपुर के महारावल क्षेत्र के दौरे पर थे जब भीलों ने विद्रोह किया तथा पाण्डव के भीलों ने उनके लश्कर का सामान लूट लिया तथा पोलिटिकल एजेंट के कैम्प पर आक्रमण किया। देवल की पाल के भीलों ने राज्य आज्ञा का उल्लंघन किया व विद्रोह करके इंगूरपुर से खेरवाड़ा जाने वाले मार्ग को रोक कर देवल के थानेदार को मार डाला।
- 1872-75 के दौरान बांसवाड़ा में भील विद्रोह की अनेक घटनाएँ घटी।²⁰ इन विद्रोहों के कारण इस प्रकार थे: प्रथम, 1868 में बांसवाड़ा राज्य व अंग्रेजों के मध्य एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार अंग्रेजों को भीलों को कुचलने की निरंकुश शक्तियाँ प्राप्त हो गई थी।²¹ दूसरा, अंग्रेजों ने भीलों द्वारा राज्य को सत्ता के प्रतीक के रूप में दिए जाने वाले बराड़ नामक कर राशि में वृद्धि कर दी थी।²² बराड़ के अतिरिक्त भीलों पर भू-राजस्व भी थोपा दिया गया था जो भील पूर्व में कभी नहीं देते थे। तीसरा, राज्य ने

भीलों के दमन हेतु मकरानी व विलायती नौकरों (अफगानिस्तान के मुस्लिम पठान) को नियुक्त किया था। वे भीलों का निर्दयता पूर्वक दमन व उत्पीड़न करते थे।²³ चौथा, 1868-75 के दौरान भयानक अकाल ने भीलों को बेचैन कर दिया था।²⁴ एवं पांचवा, गुजरात के पड़ोसी क्षेत्रों के भील व नायक 1868 में उपद्रव कर रहे थे।²⁵ जिनने बांसवाड़ा के भीलों के विद्रोह हेतु उत्साहित किया।

- 1872-73 में सोदलपुर के भील मुखिया दल्ला ने बराड़ मुद्दे पर बांसवाड़ा के महारावल के विरुद्ध बगावत कर दी थी। बाद में दल्ला ने अंग्रेज पॉलीटीकल ऑफिसर की मध्यस्ता में महारावल से साथ समझौता किया।²⁶ बांसवाड़ा राज्य में चिलकारी व शेरगढ़ गांवों के भील छापामार गतिविधियों द्वारा अशान्त रहे।²⁷ 1873-74 के दौरान इन गांवों के भीलों ने खुला विद्रोह कर दिया था। मेवाड़ के पॉलिटिकल एजेन्ट ने बांसवाड़ा राज्य को भीलों की गतिविधियों को रोकने के लिए दबाव डाला। जब बांसवाड़ा राज्य भीलों का दमन नहीं कर सका तो फरवरी, 1874 में वह स्वयं सेना लेकर बांसवाड़ा पहुंचा तथा कुछ सीमा तक इस मामले को निपटा दिया।²⁸ इसके तुरन्त पश्चात् जून, 1875 में भूरीखेड़ा के भील मुखिया देवा व औंकारया रावत पहाड़ों से नीचे आये एवं उन्होंने विद्रोह कर दिया।²⁹ दिसम्बर, 1875 में भूरीखेड़ा एवं पीपलखूंट गांवों के भीलों में आपसी झगड़ा उत्पन्न हो गया था, जिससे भील विद्रोह स्वतः ही समाप्त हो गया था।³⁰
- बाराहपाल का भील उपद्रव³¹ - ब्रिटिश सरकार द्वारा 1831 ई. में भीलों के सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में प्रारम्भ किये गये सुधारों को उन्होंने अपने अधिकारों का हनन समझा व राज्य अधिकारों की अवहेलना करते हुए 1881 ई. में विद्रोह कर दिया। उनकी मुख्य मांग थी कि यदि किसी स्त्री पर डाकन होने का संदेह हो तो उसे बिना जाँच-पड़ताल के तुरन्त मार देने की आज्ञा दी जाए। भील क्षेत्र में पुलिस चौकी की स्थापना नहीं की जाय।

भीलों के आपसी झगड़ों में महाराणा हस्तक्षेप नहीं करें। इस प्रकार 19 अप्रैल, 1881 को मेवाड़ महाराणा के हस्तक्षेप से दोनों के बीच समझौता हो गया।

- 1899-1900 का वर्ष भयानक अकाल एवं सूखे का वर्ष था। भील अकाल से अत्यधिक पीड़ित थे क्योंकि उन्हें राज्य से उचित राहत नहीं मिल रही थी। निराश आदिवासी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सभी जगह लूट पाट पर उतर आए थे।³² इस प्रकार 19वीं सदी में आदिवासी विद्रोह 1818 से आरम्भ होकर 1900 तक निरंतर रूप से होते रहे तथा 20वीं सदी के आदिवासी विद्रोहों में समाहित हो गए थे। उपरोक्त भील विद्रोह स्वस्फूर्त थे एवं अंग्रेजी राज्य के अन्तर्गत स्थापित नई व्यवस्था के प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुए थे।
- 1913 के बांसवाड़ा राज्य में भील विद्रोह का कारण उनके समाज व धर्म सुधार आंदोलनों के प्रति सत्ता पक्ष के व्यवहार को भी माना जा सकता है।

गोविन्द गिरी³³ और मानगढ़ काण्ड

20वीं शताब्दी के आरम्भ में भीलों में व्याप्त बुराईयों को दूर करने में अपने पूर्ववर्ती भगत आन्दोलन के धार्मिक नेताओं की अपेक्षा गोविन्द गिरी की भूमिका सर्वाधिक व महत्वपूर्ण रही है। गोविन्दगिरी के उपदेशों से आदिवासी भीलों में पुनरुत्थान की संभावनाएं दिखाई देने लगी। गोविन्दगिरी ने 1905 ई. में “सम्प सभा” की स्थापना की।³⁴ सम्प शब्द का तात्पर्य बागड़ भाषा में एक जुटता, संयुक्तता, प्रेम तथा बन्धुत्व से हैं। इस सभा का उद्देश्य भीलों में नैतिकता, समाज सुधार तथा जागृति फैलाना था। उनके अनुयायियों ने अनेक स्थानों पर “धूनियाँ” स्थापित की। उनका मानना था कि ऐसा करने से ईश्वर खुश होते हैं। उन्होंने पवित्र हिन्दू तिथियों पर व्रत उपवास करने, प्रतिदिन स्नान करने सूर्य दर्शन करने, गले में रुद्राक्ष माला धारण करने तथा राम नाम का जाप करने को कहा। इसके अतिरिक्त उन्होंने भीलों को जीव हिंसा नहीं करने तथा माँस-मंदिरा का सेवन नहीं करने का उपदेश दिया।³⁵

संतरामपुर, ईडर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर, कुशलगढ़ इन देशी रियासतों में राजस्व का मूल स्रोत शराब की

बिक्री द्वारा प्राप्त आबकारी कर था। राज्य में अवैध शराब बनाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। भील महुआ के फूलों से शराब बनाते थे, किन्तु अब राज्य ने उसे प्रतिबंधित कर दिया था, इससे भीलों में काफी रोष था, किन्तु गोविन्द गिरी के सुधार आन्दोलन के प्रभाव में आकर उन्होंने शराब पीना बन्द कर दिया इससे देशी रियासतों और शराब ठेकेदारों को भारी नुकसान हुआ।³⁶ उक्त कारणों से देशी रियासतें चिंतित हो उठी तथा उन्होंने भीलों की शक्ति को छिन्न-भिन्न करने की काफी कोशिश की, किन्तु असफल रहे। परेशान होकर देशी रियासतों, जागीरदारों तथा शराब के ठेकेदारों ने यह प्रचार करना आरम्भ कर दिया कि गोविन्द गिरी के अनुयायियों का उद्देश्य राजपूत शासकों को गद्दी से उतार कर भील शासकों को गद्दी पर बिठाने का है, तथा वे विद्रोह के लिए हैं। गोविन्द गिरी शासकों के व्यवहार से काफी क्षुब्ध थे। वे अपने शिष्यों के साथ मानगढ़ की पहाड़ी पर चले गये।³⁷ यह पहाड़ी बांसवाड़ा तथा संतरामपुर की सीमा पर स्थित हैं। 1903 ई. से प्रतिवर्ष इस पहाड़ी पर भीलों का वार्षिक धार्मिक सम्मेलन हुआ करता था। 1 नवम्बर, 1913 को गोविन्द गिरी और इनके शिष्यों ने सूथ के प्रतापगढ़ किले पर आक्रमण कर गुल मुहम्मद नामक सिपाई को मार दिया।³⁸ इससे देशी रियासतों में यह भय फैल गया कि गोविन्दगिरी भील राज्य स्थापित करना चाहते हैं। गोविन्दगिरी ने अक्टूबर, 1913 ई. भीलों का मानगढ़ में एकत्रित होने के लिए चारों ओर सन्देश भेजे।³⁹ नवम्बर, 1913 ई. को मानगढ़ पहाड़ी पर भीलों का वार्षिक धार्मिक सम्मेलन शुरू हुआ। हजारों की संख्या में यहाँ भील इकट्ठे हुए। 17 नवम्बर, 1913 ई. को गोविन्द गिरी तथा उनके हजारों अनुयायी पहाड़ी पर बने चबूतरे की धूनी में हवन कर रहे थे, अचानक अंग्रेजी फौज ने उन पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ बरसानी आरम्भ कर दी। 1500 के लगभग भील मारे गये। यह हत्याकांड जलियाँवाला बाग से भी वीभत्स था। गोविन्द गिरी को कैद कर लिया गया। प्रारम्भ में उन्हें फाँसी की सजा सुनाई गई, किन्तु बाद में उसे बदलकर 20 वर्ष की सजा का प्रावधान किया गया, अंत में इसे भी बदल कर 10 वर्ष के कठोर कारावास में परिवर्तित कर दिया गया। 1930 ई. में उन्हें इस शर्त पर रिहा किया गया कि वे संतरामपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, कुशलगढ़ तथा ईडर राज्य की सीमाओं में प्रवेश नहीं करेंगे। अक्टूबर, 1931 ई. को गुजरात के पंचमहल गांव में उनकी मृत्यु हो गई।⁴⁰

देशी रियासतों व ब्रिटिश सरकार की क्रूरता, तानाशाही व अत्याचार के कारण पूनावाडा कांड व रास्तापाल कांड जैसी अमानवीय व अशोभनीय घटनाएँ हुईं। भीलों में शिक्षा द्वारा जागृती उत्पन्न करने तथा बालकों को पढ़ाने और ग्राम वासियों को नया जीवन प्रदान करने में डूंगरपुर के अमर शहीद नानाभाई खांट और काली बाई ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिससे उनमें राजनैतिक चेतना जागृत हुई।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, बांसवाडा राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर, 1994 पृ. 1
2. मेजर के.डी. अर्साकिन, राजपूताना गजेटियर खण्ड द्वितीय-ए, द मेवाड़ रेजीडेन्सी टेक्स्ट, स्काटिश मिशन इण्डस्ट्रीज क. लिमिटेड अजमेर, 1908 पृ. 2281
3. सेन्सस ऑफ इण्डिया, 1921, वाल्युम पार्ट 1 पृ. 223
4. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड 50-35
5. द गजेटियर ऑफ द उदयपुर स्टेट अजमेर, 1908 पृ. 227
6. कर्नल जेम्स वॉड, एनाल्स एण्ड इन्टीविचटीज ऑफ राजस्थान वाल्युम 1
7. कर्नल जेम्स वॉड, एनाल्स एण्ड इन्टीविचटीज ऑफ राजस्थान वाल्युम 1
8. कविराज श्यामलदास: वीर विनोद, मेवाड़ का इतिहास, भाग दो पृ. 1005, प्रथम मुद्रण 1886, पुनर्मुद्रण, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली 1
9. द राजपूताना गजेटियर, वाल्युम 2 कलकत्ता 1879 पृ. 228
10. जे.सी ब्रुक, हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, लन्दन 1859, पृ. 72-86
11. एचीसन, सी.यू., एकलेक्शन ऑफ ट्रीट्रीज, एंग्गेजमेन्ट एण्ड सनद्स
12. बृज किशोर शर्मा, ट्राईबल रिवोल्ट्स, जयपुर 1997, पृ. 83-84
13. एचीसन, सी.यू., एकलेक्शन ऑफ ट्रीट्रीज, एंग्गेजमेन्ट एण्ड सनद्स जिल्द 3 पृष्ठ 440
14. एचीसन, सी.यू., एकलेक्शन ऑफ ट्रीट्रीज, एंग्गेजमेन्ट एण्ड सनद्स जिल्द 3 पृष्ठ 454-55
15. वही
16. वही

17. जी.एच.ओझा, पूर्वोक्त पं. 169
18. ए.आर. देसाई (सम्पा.) पीजेन्ट स्ट्रगल इन इण्डिया, नई दिल्ली 1979, पृ.25
19. मुन्शी ज्वाला सहाय, वाक्ये राजपूताना, जिल्द 1, पृ. 523
20. जी.एच.ओझा, पूर्वोक्त पृ. 188-192
21. एचीसन, सी. यू., एकलेक्शन ऑफ ट्रीट्रीज, एंग्गेजमेन्ट एण्ड सनदस जिल्द 3 पृष्ठ 454-55
22. जी.एच.ओझा, पूर्वोक्त पृ. 188
23. जी.एच.ओझा, पूर्वोक्त पृ. 185
24. जी.एच.ओझा, पूर्वोक्त पृ. 191
25. ए.आर.देसाई, पूर्वोक्त पृ. 27
26. जी.एच.ओझा, पूर्वोक्त पृ. 188-189 एवं मुंशी ज्वाला सहाय, पूर्वोक्त जिल्द एक पृ. 547
27. मुंशी ज्वाला सहाय, पूर्वोक्त जिल्द एक पृ. 546
28. जी.एच.ओझा, पूर्वोक्त पृ. 180-181
29. मुंशी ज्वाला सहाय, पूर्वोक्त जिल्द एक पृ. 549
30. जी.एच.ओझा, पूर्वोक्त पृ. 191-192
31. श्यामलदास वीर विनोद भाग 2 पृ. 2217, 2226-2228
32. राष्ट्रीय अभिलेशागार फॉरेन डिपार्टमेन्टल एण्ड पॉलिटिकल, इन्टरनल प्रोसेडिंग्स मार्च, 1900 नं. 190-2030
33. व्यास, एन.एन. राजस्थान में आदिम जाति संरचना वन्य जाति (त्रैमासिक पत्रिका) अप्रैल 1968, पृ. 127-130
34. फारेन पोलिटिकल इन्टरनल "ए" मार्च 1914, 46,47
35. एल.पी. माथुर-इन्टरएक्शन ऑफ मील्स विद अदर कम्युनिटीज पृ. 60-61
36. भगवतीलाल जैन - स्वतन्त्रता संग्राम मे भील आन्दोलन का योगदान पृ.10
37. फारेन पोलिटिकल इन्टरनल "ए" मार्च 1914,8-6
38. एल.पी. माथुर-प्रोटेस्ट मूवमेन्ट ऑफ भील अंडर द ब्रिटिश राज्य पृ. 38
39. फारेन पोलिटिकल इन्टरनल "ए" मार्च 1914, 8-62
40. फारेन पोलिटिकल इन्टरनल "ए" मार्च 1914,8-6

निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व टाटा मोटर्स लिमिटेड रिपोर्ट (2018-19 के संदर्भ में)



shodhshree@gmail.com

संजय कुमार

सहायक आचार्य, स्व. राजेश पायलट राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बांदीकुई

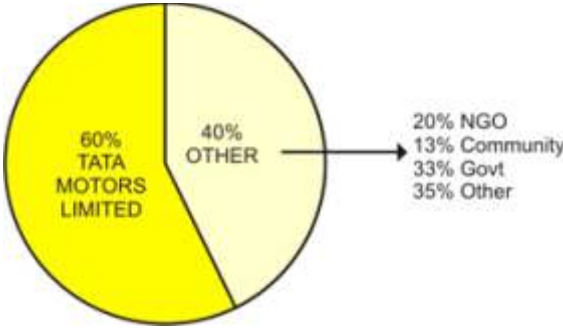
शोध सारांश

सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वहन के अंतर्गत विविध कम्पनियाँ सामाजिक उन्नयन की दिशा में अपने दायित्वों को निभाने में नैतिक और कानूनी रूप से अग्रणी भूमिका निभाती रही है। इसी क्रम में टाटा मोटर्स की भूमिका भी सराहनीय रही है। इनके माध्यम से टाटा मोटर्स ने समाज के प्रति जिम्मेदारी निभाते हुए अनेक सामुदायिक विकास के कार्य किये हैं। कंपनी के द्वारा न केवल रोजगार के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है बल्कि उसके साथ साथ पर्यावरण, स्वच्छ पेयजल, स्वास्थ्य, उत्तम भोजन की सुनिश्चितता, पुनर्वास, कुपोषण जांच केन्द्रों की स्थापना, शिक्षा की समुचित उपलब्धता, प्रशिक्षण और खेलकूद सुविधा उपलब्ध करवाई जाती है। कंपनी के प्रयासों से विश्वस्तरीय खेल स्पर्धा में स्थानीय प्रतिभा के माध्यम से भारतीय प्रतिनिधित्व किया गया है। कंपनी के सामाजिक सरोकारों से लक्षित समूह की जीवन प्रत्याशा में वृद्धि हुई है। कंपनी के द्वारा परम्परागत चूल्हों के स्थान पर दिवस्टेड की स्थापना ने पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। टाटा मोटर्स के इन सामाजिक सरोकार के कार्यों व उपलब्धियों को सरकार व अन्य संस्थाओं ने समय समय पर पुरस्कारों के माध्यम से रेखांकित और प्रोत्साहित भी किया है।

संकेताक्षर : सामाजिक उत्तरदायित्व, सामुदायिक विकास, औद्योगिक विकास, पुनर्वास, रिकल डवलपमेंट काउंसिल, नॉन ऑटो ट्रेडर्स, वोलुनटिरिंग प्रोग्राम, सीएसआर।

भारतीय कम्पनी अधिनियम 2013 की अनुसूची VII के अनुसार औद्योगिक जगत को लाभों का 2% सामाजिक उत्तरदायित्व निर्वाह हेतु व्यय करना आवश्यक है। यह राशि सामुदायिक विकास, शिक्षा, चिकित्सा, पर्यावरण संरक्षण, पौधारोपण अभियान, महिला विकास, कुपोषण प्रभाव को कम करने, पशुधन तथा सरकार की विभिन्न योजनाओं में सहभागिता के रूप में उपयोग किया जाता है।

कम्पनी अधिनियम की धारा 135 के अनुसार औद्योगिक इकाईयों को सामाजिक उत्तरदायित्व पर किये गये व्यय को निर्धारित प्रारूप में प्रकट करना होता है। यह कदम औद्योगिक विकास के साथ सामाजिक विकास तथा जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिये महत्वपूर्ण है। टाटा मोटर्स लिमिटेड ऑटोमोबाइल उत्पादन के क्षेत्र में एक अग्रणी संस्था है। यह कार, उपयोगी वाहन, बस, ट्रक तथा रक्षा वाहनों का निर्माण करती है। कम्पनी नवोन्मेश प्रयासों द्वारा तकनीकी विकास कर ग्राहकों को उत्तम उत्पाद प्रदान करती है। यह कम्पनी अधिनियम 2013 (संशोधित) के अनुसार सामाजिक उत्तरदायित्व निर्वाह हेतु स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार तथा पर्यावरण संरक्षण में अपना योगदान देती है। कम्पनी कुल निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व में परियोजना लागत का 60 प्रतिशत स्वयं तथा 40 प्रतिशत में एन. जी. ओ., समुदाय, सरकार व अन्य स्रोतों की सहभागिता होती है।



टाटा मोटर्स का अंशदान ₹20.39 करोड़
साझेदारों का अंशदान ₹13.43 करोड़
कुल परियोजना लागत वर्ष 2018-19
₹33.82 करोड़

कम्पनी द्वारा सूखा क्षेत्र में आदिवासी बस्तियों के लिए सुरक्षित पेयजल व्यवस्था तथा 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के पोषण पर काम किया गया। इसमें लगभग 90 प्रतिशत कुपोषित बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार किया गया। परियोजना कोमल में स्वास्थ्य एवं स्वच्छता प्रशिक्षण, उत्तम भोजन बनाना, स्वच्छ पेयजल, जागरूकता बढ़ाने एवं सरकार की विभिन्न परियोजनाओं में सहभागिता निर्वाह करना सम्मिलित है। किचन गार्डन के अन्तर्गत आदिवासी परिवारों के कुपोषित बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार किया गया है। जमशेदपुर में कुष्ठ रोगियों के इलाज एवं पुर्नवास की समस्या समाप्त करने हेतु सार्थक कार्य किये गये हैं।

कम्पनी ने कुपोषण केन्द्र बनाने के लिये झारखण्ड सरकार से सहयोग तथा संयुक्त परामर्श सत्र UNICEF, NRHM, PKS के साथ रखा। WHO के मानदण्डों के अनुसार कुपोषितों का प्रवेश, इलाज, भोजन, स्वच्छता, कार्यप्रणाली, निकासी तथा निकासी के पश्चात् जाँच प्रणाली को अपनाया गया है। जमशेदपुर झारखण्ड राज्य का पहला कुपोषण उपचार केन्द्र है।

सुमन्त मूलगांवकर डवलपमेंट फाउन्डेशन के अन्तर्गत कम्पनी ग्रामीण एवं अर्द्ध शहरी क्षेत्रों के विकास के लिये कम्पनी सुरक्षित पेयजल व्यवस्था, कर्मचारियों द्वारा 20 रूपये प्रतिमाह कर्मचारी स्वैच्छिक अंशदान, कम्पनी द्वारा समान राशि का अंशदान, स्थानीय जनता द्वारा श्रमदान, भूमि एवं निर्माण कार्य में सहयोग किया जाता है। वर्ष 2018-19 में 73 परियोजनाएँ प्रारम्भ की गई हैं। वर्ष 2018-19 तक कुल 200000 निवासियों को 30 लीटर प्रतिदिन शुद्ध पेयजल प्रदान किया जाता है। हिमालय क्षेत्र में 5000 फीट की ऊँचाई वाले छोटे गाँव में SMDP-GRASSROOTS के साथ मिलकर सुरक्षित पेयजल की व्यवस्था का कार्य किया है। इन क्षेत्रों में सकरे कुएँ बनाकर पेयजल व्यवस्था की जाती है। इससे पेचिस व अन्य बीमारियों की रोकथाम हुई। महिलाएँ दूरस्थ स्थानों से पेयजल लाती थी। उनकी दूरी औसतन 4 KM प्रतिदिन से घटकर 200 मीटर प्रतिदिन हुई है। कम्पनी द्वारा इस वित्त वर्ष में कुल 381437 व्यक्ति लाभान्वित हुये हैं।

TABLE

Places	Addressing Malnutrition	Health awareness	Prevention & Curative Health	Total
Pantnagar	650	20654	4044	25348
Sanand	184	5397	2074	7655
Lucknow	144	9481	13982	23607
Mumbai	1253	10411	37208	48872
Pune	578	20308	23776	44662
Jamshedpur	277	5399	218091	223767
Dharwad	-	2956	4570	7526
Total				318437

शिक्षा के क्षेत्र में कम्पनी ने सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों का सैकण्डरी बोर्ड परीक्षा परिणाम पिछले 3 वर्षों में 25 प्रतिशत तक का सुधार किया है। विद्यार्थियों के अंग्रेजी, गणित, विज्ञान, विषयों में भी

पिछले 2 वर्षों में 5 प्रतिशत प्राप्तांको में सुधार हुआ है। कम्पनी के प्रयासों से कुल 146894 छात्र लाभान्वित हुये हैं।

TABLE

	No. of Students	SC/ST Percentage
Scholarship	1665	45%
Support Class	31975	19%
Co-Curricular Activities	81553	28%
Infrastructure Improvement	25059	26%
Other	6642	-
Total	146894	-

उच्च शिक्षा की दृष्टि से जवाहर नवोदय विद्यालय के माध्यम से 27 IIT, 38 NIT तथा 6 मेडिकल छात्र सफल हुये हैं। पाण्डीचेरी में एन.जी.ओ. के सहयोग से अवन्ती फैलो प्रोग्राम की भी शुरुआत की गई। यह

परियोजना उत्तम एवं नैतिक नौकरशाहो को तैयार करती है। इन्हे मुक्त निवास, पेशावर कोचिंग कक्षयें दी जाती है। कम्पनी खेलकूद एवं संगीत सुविधायें भी प्रदान करती है।

TABLE

Places	Scholarship & Grants	Special Coaching	Co-Curricular Activities	School Infrastructure & Village Education Development	Total
Pantnagar	280	578	6593	1650	9101
Sanand	315	-	7905	1590	9810
Lucknow	123	350	6100	100	6673
Mumbai	202	26390	27119	2739	56939
Jamshedpur	-	647	6895	7491	21186
Pune	545	1597	26566	11315	40023
Dharwad	200	2413	375	174	3162

कम्पनी द्वारा विशेष योग्यजन के लिए जमशेदपुर में आशा किरण स्कूल है। यह 1978 में बनाया गया। जिसमें विशेष योग्यजन बच्चों की शिक्षा, ड्राईंग, खेल एवं कला की शिक्षा दी जाती है। आशा किरण स्कूल की विद्यार्थी जाग्रति कुमारी ने आस्ट्रीया में विश्व स्तरीय खेलों में वर्ष 2017 में भारत का प्रतिनिधित्व किया है। कम्पनी द्वारा रोजगार के अवसरों को बढ़ाने की दृष्टि से नवयुवकों को तीन प्रकार से प्रशिक्षण दिया जाता है।

ऑटो ट्रेडर्स:- इसमें कम्पनी ऑटो स्िकल डवलपमेंट काउंसिल द्वारा प्रमाणित ऑटो सर्विस टैक्नीशियन कोर्स

करवाती है। 6600 डीलर्स तथा टाटा ऑथोराइड सर्विस स्टेशन यह काम कर रहे है।

नॉन ऑटो ट्रेडर्स:- इसमें बाजार माँग के अनुसार वोकेशनल ट्रेनिंग कोर्स करवाये जाते है।

कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाएँ :- जमशेदपुर, पुणे, पालगढ़ तथा थाने में प्लांट क्षेत्र की 50 किलामीटर परिधि में कृषि हेतु नई तकनीक, भरण-पोषण कार्यक्रम तथा पशुपालन-पोषण पर जोर दिया गया है। संस्थागत मजबूती के लिये टाटा मोटर्स अपने कर्मचारियों के लिये नियमित रूप से प्रशासनिक कोर्स आयोजित करती है।

TABLE

Places	Auto & Technical Trades	Non auto Training	Agriculture & Allied Training	Total
Pantnagar	515	548	225	1288
Sanand	500	259	745	1506
Lucknow	272	370	210	852
Mumbai	88534	1338	925	90797
Pune	8672	325	441	9438
Jamshedpur	387	393	1160	1940
Dharwad	115	102	NIL	217

पुणे जिले के अम्बे-हैथविस आदिवासी गाँव जहाँ सीमित भूमि एवं कम वर्षा होती है। वित्त वर्ष 2018 में प्रभात डेयरी के माध्यम से उनकी आय में वृद्धि की गई। पशुओं से प्राप्त खाद के उपयोग से जैविक कृषि

को बढ़ावा दिया गया है। इसके लिये कम्पनी समय-समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करती है।

पर्यावरण संरक्षण के लिये भारतीय किस्म के विभिन्न पौधों का पौधारोपण किया गया।

TABLE

Places	Tree Plantation
Pantnagar	4650
Sanand	10765
Lucknow	5220
Mumbai	42600
Jamshedpur	30951
Pune	23000
Dharwad (Lines Touched)	1203

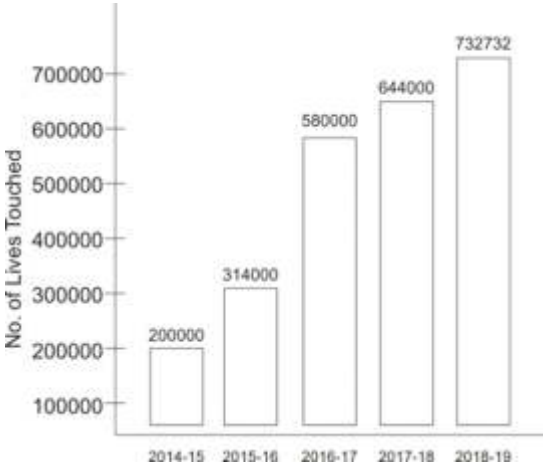
पर्यावरण एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से टाटा मोटर्स लिमिटेड ने परम्परागत चुल्हों के उपयोग के विकल्प के रूप में ट्वीसटेड टेप बनाया है। 9300 परिवारों से ज्यादा ने इसको अपनाया है। इससे लकड़ी की बचत व 439 पेड़ों की बचत, वायु प्रदूषण में कमी का लाभ हुआ है।

टाटा मोटर्स ने पथरड़ी ग्राम पंचायत जिसमें 6 छोटे गाँवों के 700 आदिवासी परिवारों का एकीकृत विकास किया है। इन क्षेत्रों में उच्च कुपोषण की स्थिति है। इनके लिये BAIF, TML, TSMG तथा महाराष्ट्र सरकार द्वारा संयुक्त प्रयास किये गये हैं। कम्पनी ने साक्षरता कार्यक्रम, KEM अस्पताल, सुप्रात महिला मण्डल

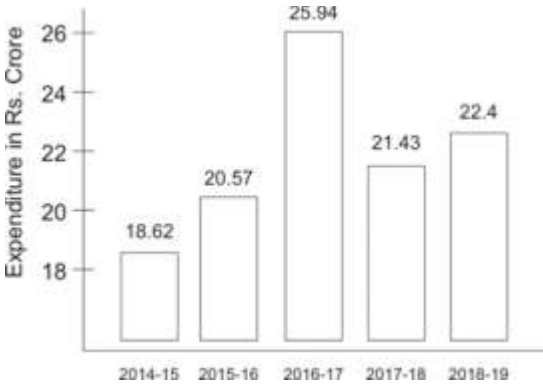
प्रगति अभियान आदि में सक्रिय सहभागिता है। इसमें वर्ष 2018 जनवरी तक सरकार का वास्तविक खर्च 220 लाख तथा कम्पनी का 70 लाख रहा है।

कम्पनी द्वारा निगमिय सामाजिक उत्तरदायित्व की उत्तम भूमिका के लिये वर्ष 2018-19 में गोल्डन पीकोक ग्लोबल सीएसआर अवार्ड, वर्ष 2018-19 में इकॉनोमिक टाइम्स में 4 स्टार रेटिंग अवार्ड तथा टाटा वोलून्टिरिंग प्रोग्राम के अन्तर्गत Highest Participation for Phase 9, Best Collaboration-Lucknow for Phase 10, SPOC Hero Phase-9 अवार्ड दिये गये हैं।

कम्पनी द्वारा गत वर्षों में सीएसआर गतिविधियों से लाभान्वित की संख्या निम्नलिखित है-



सीएसआर पर कम्पनी द्वारा गत वर्षों में किया गया व्यय राशि करोड़ रूपयों में इस प्रकार है।



कम्पनी द्वारा गत पाँच वर्षों में किए गये व्यय के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में भूमिका एक सराहनीय कार्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लेखांकन सिद्धांत एवं व्यवहार - जैन खण्डेलवाल पारीक
2. उच्चतर लेखांकन - एम. सी. खण्डेलवाल
3. कम्पनी एक्ट संशोधित 2013
4. वार्षिक रिपोर्ट - टाटा मोटर्स लिमिटेड 2018-19
5. वार्षिक रिपोर्ट - टाटा मोटर्स लिमिटेड 2017-18

राजस्थान का लोकनाट्य : रावलो की रम्मत



shodhshree@gmail.com

डॉ. प्रतिभा सांखला

सहायक आचार्य, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

शोध सारांश

राजस्थान की संस्कृति प्राचीन होने के साथ ही अत्यन्त जीवन्त है। गाँवों और राजस्थान के शहरों में प्रजा के मनोरंजन के साथ लोकनाट्य का भी महत्वपूर्ण स्थान है। लोकनाट्यों में ख्याल, रम्मत, नौटंकी, फड़, गवई, तमाशे आदि आते हैं। “रम्मत” राजस्थानी लोक नाट्यों का एक विशेष रूप है। रम्मत का अर्थ “खेल” है। “रावलों की रम्मत” राजस्थान के अलग-अलग भागों एक ही जाति रावल के द्वारा प्रस्तुत करी जाती है। इसमें एक ही कथा की जगह छोटी-छोटी कथा अलग-अलग वेश जाते हैं। जिन्हें स्वांग कहा जाता है। यह मूलतः एक आनुषंगिक लोकनाट्य है जिसे एक जाति रावल द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। और ये इसे अपने यजमान चारण जाति के सामने प्रस्तुत करते हैं। रावलों में आज भी यह मान्यता प्रचलित है। कि जब तक कम से कम एक चारण उपस्थित नहीं हो वे अपनी रम्मत नहीं मांडते हैं।

संकेताक्षर : राजस्थान, लोकनाट्य, रम्मत, रावल, चारण, मनोरंजन।

राजस्थान की संस्कृति प्राचीन होने के साथ-साथ जीवन्त भी है। राजस्थान में प्रदर्शन कलाओं व लोकनाट्यों की समृद्ध परम्परा रही है। रंगमंच की परम्परा भी लोकवार्ताओं और लोक गाथाओं की भांति प्राचीन है। गाँव-गाँव और राजस्थान के नगर-नगर में प्रजा के मनोरंजन के साथ-साथ लोकनाट्य, सामाजिक और सामुदायिक भावनाओं को अभिव्यक्ति के माध्यम भी बने प्रदर्शक कलाएँ जिसके अन्तर्गत भोपा, भांड, स्वांग, बहरूपिया, मदारी, नट, बाजीगर, आदि का प्रदर्शन आता है वे भी यहाँ के जन साधारण के मनोरंजन के साधन रहें हैं।¹ लोकनाट्यों के अन्तर्गत ख्याल, रम्मत, तमाशे, नौटंकी, लीला, भवाई, गवरी, फड़ इत्यादि आते हैं। राजस्थानी लोकनाट्यों के ये स्वरूप यहाँ बहुत प्रसिद्ध रहें हैं तथा मनोरंजन की दृष्टि से उत्पन्न होने वाले इन स्वरूपों ने यहाँ के जन-जीवन में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया है।² लोकनाट्यों के जितने विविध रूप हमें राजस्थान में देखने को मिलते हैं उतने संभवतः किसी भी प्रदेश में देखने को नहीं मिलेंगे³ गुण के आधार पर यदि लोक नाट्यों का विश्लेषण किया जाय तो हमें लगेगा कि सामान्य तथा लोकनाट्यों या तो नृत्य प्रधान या नाट्य प्रधान या फिर कौतुकप्रधान होते हैं। नाट्य प्रधान नाट्यों नाटकीय तत्वों की प्रमुखता रहती है ऐसे नाट्यों के साथ-साथ ख्याल शब्द जुड़ा रहता है, जैसे शेखावटी के ख्याल, रम्मते, लीलाएँ, नौटंकीया आदि।⁴ रम्मत एक सम्पूर्ण नाट्य रूप है यह नाट्य नृत्य, गायन एवं अभिनय का सुन्दर संयोजन है। रावलों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी कहना बहुत मुश्किल है। वैसे राजस्थान का यह लोक नाट्य रूप दूसरे लोकनाट्य रूपों से प्राचीन कहा जा सकता है। सबसे पहला प्रमाण तो स्वयं रावलों द्वारा अपनी उत्पत्ति के सन्दर्भ में बोलने वाले दोहे में ही छिपा हुआ है।

**बारै सौ ने बासठै बारस ने बुधवार
गुरु पलट रावल हुआ मावल सैर मंझार।⁵**

विक्रम संवत् 1262 का वर्ष स्वयं रावल लोग स्वीकार करते हैं। इससे पूर्व वे ब्राह्मण थे। फिर रावल हुए। लेकिन तब तक इनका कार्य देवी की पूजा आराधना एवं चारणों की यजमानी ही था उस समय तक रावल चारणों की बही बांचते थे। आज भी रावलों में दो शाखाएँ पाई जाती हैं। एक वे रावल हैं जो बही बांचते हैं और दूसरे रावल वे हैं जो रम्मत करते हैं।⁶

रावलों की रम्मत

रम्मत का अर्थ है खेल। रावलों की रम्मत का अर्थ है रावल जाति द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला लोक नाट्य रूप⁷ रावल चारणों के भांड है उनके वास्ते तरह-तरह के तमाशे और नकले करते हैं। इनके घर सोजत और जैतारण के परगने में ज्यादा हैं। दसहरें के पीछे घरों से निकलते हैं चारणों के गांवों में जाकर जाड़ों की बड़ी-बड़ी रातों में रम्मत यानि तमाशा करते हैं। कहते हैं - रात थोड़ी और सांग धणा।⁸

रावलों की रम्मत की प्रस्तुति के सम्बन्ध में है -

ताहरा नरबद जी चार्लिया। अर जैतारण री बाड़ी रौ ठीक कियो हुतौ सौ दिन बीस में तो जैतारण रौ गोर में बाड़ी छै जैथ आया। ताहरां जिको सुपियार दे रौ कागल ल्यायौ हुं तो तै साथै मरदानी पोसाख मेल्ली सुपियारदे नूं, ताहरां सुपियार दे वागो पैहर, पाछ बांध, हथियार बांध अर नीसरी। अर गांव माहै रावलिया रामंत रमता हुंता। सीघला रौ साथ रमत देखण नू गयो हुंतौ। अर तै वेला सुपियार दे नीसरी।⁹

अर सुपियार दे नीसरी सु रावलियां री रम्मत हुती तै त्रहं ताहरां रावलियाँ थाली फैरे हुंतौ। तांहरा सुपियार दे आधी हुय थाली मोहर धाती अर चालती हुई¹⁰

ख्यात में वर्णित घटना से न सिर्फ रम्मत की प्रस्तुति की ही ताईद होती बल्कि उसके साथ ही उस विद्या की लोकप्रियता भी इस घटना से प्रकट होती है। सभी लोग रम्मत देखने गये हैं। इसलिये इस बात को मानने में किसी सन्देह की गुजाइश ही नहीं रहती कि वि. संवत् 1400 तक रावलों की रम्मत एक लोक नाट्य रूप बन चुका था। इस लिहाज से रावलों की रम्मत की परम्परा लगभग 700 वर्ष पुरानी है।¹¹ महाराजा तखतसिंह के समय मे वि. 1913 की चैत्र सुदि 11 को कायलाना के महलों में दरवाजों के भीतर रावलियों का तमाशा होने का एक उल्लेख मिलता है, इस प्रदर्शन के पश्चात् रावलों को इनाम के 100 रुपये दिये गये थे। यह उल्लेख इस तथ्य के प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जा सकता है कि 19वीं शती के मध्य तक रावलों के स्वांग-प्रधान तमाशों की मारवाड़ में परम्परा रही है।¹² ये लोग चारणों के याचक रहे हैं। अपने यजमानों के यहाँ जब ये 'विरत' मांगने जाते हैं तो उनके मनोरंजनार्थ नाना प्रकार के स्वांग धारण करते हैं। ये ही स्वांग रावलों के खेल नाम से प्रसिद्ध है। कही-कही इसे रावलों की रामंत भी कहते हैं जो खेल का ही दूसरा नाम है। प्रारम्भ में ये लोग देवियों (माताओं) के सम्मुख ही अपने स्वांग धारण करते थे। धीरे-धीरे चारणों के प्रति इनकी श्रद्धा उत्पन्न हुई।

फलतः उनके सामने भी अपने स्वांग लाने लग गये¹³ एक तमाशे में कम से कम बारह आदमी होते हैं। ये गाते बजाते और नाचते भी हैं। बाजा इनका खबाब मजीरा पखावज होते हैं। पाँवों में घूंघरू भी बांधते हैं तरह-तरह के सांग लाते हैं। चारणों के सिवाय और किसी कौम के वास्ते तमाशा नहीं करते और जो करना ही पड़े तो चारण को लाकर, और जो न मिले तो डाब का पुतलाही उसके नाम का बनाकर रामत करते हैं।¹⁴ रम्मत करने को "माताजी के घुधरा बांधना" कहते हैं और रम्मत में भी पहिले माताजी को ही गाते हैं फिर दूसरा सांग लाते हैं इन के सांग मतलब से खाली नहीं होते¹⁵

रम्मत करने वाले दल के सदस्य रम्मत शुरु करने से पहले शाम को जहाँ उन्हें वेष (स्वांग) धारण करना होता है उस स्थान को बहुत महत्व देते हैं। आधुनिक नाट्य भाषा में हम उस स्थान को ग्रीन रूम या मेकअप रूप कह सकते हैं किन्तु रम्मत करने वाले रावल उस स्थान को 'अरवाड़ो मांडणै कहते हैं इसके लिए वे आदि शाक्ति हिंगलाज की प्रार्थना कर तलवार से वहाँ एक लकीर खींच देते हैं। लकीर खींचने के बाद उस स्थल के भीतर रम्मत करने वाले रावलों के अलावा कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता उसके बाद वे देवी के लिए 'जोत' करते हैं और नारियल चढ़ाते हैं।¹⁶ मेकअप रूप से प्रज्जवलित की गई 'जोत' रात भर चलती रहती है इस जोत को रात भर प्रज्जवलित रखने के लिए करीब एक किलो देशी घी की जरूरत पड़ती है। जिस स्थान पर रम्मत का आयोजन किया जाता है वह गांव का एक ऐसा स्थान होता है जो चारों ओर से खुला होता है रम्मत के लिये किसी मंच की जरूरत नहीं पड़ती बल्कि अक्सर यह देखा गया है कि अन्य लोक नाट्यों की प्रस्तुति से अलग इसे किसी ऊँचे स्थान की भी जरूरत नहीं पड़ती। वह तो समतल भूमि पर ही दरी बिछाकर उसे प्रस्तुति योग्य बना देते हैं। रावलों की रम्मत करवाने के पीछे मान्यता भी काम करती है कि जिस गाँव में रावलों की रम्मत होती है वहाँ उस वर्ष अकाल नहीं पड़ता एवं महामारी नहीं फैलती है। रावल आसोज के नवरात्रे में घूघरे बांटते हैं और माघ के गुप्त नवरात्रि में अथवा चैत्र के नवरात्रे में घूघरे खोलते हैं।¹⁸

रम्मत में भाग लेने वाले अभिनेता एक से अधिक चरित्र अक्सर निभाते रहते हैं किन्तु 'अधनारी' का वेष लाने वाला अभिनेता उस रात दूसरा कोई चरित्र नहीं निभाता वह पूरी रात उसी वेष को धारण किये रहता है रम्मत का पहला सांग "बीकाजी रौ सांग" होता है।

इस सांग के पश्चात् 'अखाड़े' के भीतर एक आदमी को छोड़ कर दल के शेष सभी सदस्य प्रस्तुति स्थल से सीधे उस गाँव में स्थापित माता जी के मठ जाते हैं वे सभी माताजी के मन्दिर जाकर वहाँ धोक देते हैं। तथा जोत करवाकर चिरजाएँ गाते हैं तथा नारियल चढ़ाते हैं। मन्दिर से लौट कर दल के सभी सदस्य 'अखाड़े' पहुँचते हैं वहाँ प्रज्ज्वलित जोत पर नारियल चढ़ाने के बाद प्रारम्भ में तलवार से खीची गई लकीर को हाथ से मिटा दिया जाता है¹⁹ एक बात यह भी मशहूर है कि रावलों की रामत जोगमाया को बहुत पसन्द है और जहाँ होती है वहाँ जोगमाया "छाने" देखने को आती है।²⁰

प्रायः रम्मत के स्वांगों में निम्न प्रकार से क्रम रहता है—

1. बौरे-बौरी रो सांग (बच्चे बौरे रो सांग)
2. अधनारी रौ सांग (अर्द्धनारीश्वर-स्वांग)
3. मीर्यें रौ सांग
4. बांणिये रौ सांग
5. दर्जी रौ सांग
6. मैणे रौ सांग
7. जोगी रौ सांग
8. सूरदास रौ सांग
9. कान्ह गूजरी रौ सांग
10. बीकोजी रौ सांग²¹

रावलों की रम्मत के बारे में उल्लेखनीय है कि ये लोग चारण जाति का स्वांग नहीं लाया करते हैं। रावलों की स्त्रियों के लिए रावलों की 'रम्मत' देखना वर्ज्य है।²² रम्मत के प्रदर्शन के दौरान रातभर में कम से कम तीस-पैंतीस चिरजाएँ गाई जाती हैं। ये चिरजाएँ चारण जाति में जन्म लेने वाली अलग-अलग देवियों से सम्बन्धित हैं।²³ रावलों की रम्मत में गाई जाने वाली चिरजाएँ लोक पूज्य देवियों की स्तुति होती हैं। ऐसा कहा जाता है कि पुराने राजपूताने की समस्त रियासतों को स्थापित करने में इन देवियों की विशेष कृपा रही है। इसीलिए लोक में इन देवियों के लिए यह दोहा प्रचलित है।

आवड़ तूँ भाटियां, गीगाई गौड़ां।

श्री बिरवड़ सिसोदियां, करणी राठौड़ां।²⁴

सामाजिक कुरीतियों पर चोट तथा ऐसे आदर्श चरित्रों की स्मृति से जुड़े होने के कारण रावलों की रम्मत राजस्थानी सांस्कृतिक धरोहर का अभिन्न बनी हुई है।²⁵ रम्मत की समाप्ति पर रावलों को विदा करते समय गाँव के प्रत्येक घर से उन्हें कम से कम एक वेष

(स्त्रियों के पहनने के लिए घाघरा, कुरती एवं कांचली तथा ओढ़ना) तथा नेग रूप में अपनी श्रद्धा अनुसार रुपये देने का रिवाज है। रावल आसोज के नवराते में घूघरे बांधते हैं और माघ के गुप्त नवरात्रे में अथवा चैत्र के नवराते में घूघरे खोलते हैं। अपनी रम्मत को वे 'माताजी रा घूघरा बांधिया' ही कहते हैं।²⁶

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सांस्कृतिक राजस्थान (खण्ड-4) सम्पादक- डॉ जगमोहन सिंह परिहार, राजस्थान के इतिहासकार श्री जगदीश सिंह गहलोत-स्मृतिग्रन्थ जहूर खाँ मेहर पृ. 12
2. वही, पृ. 12.
3. राजस्थान के लोकनाट्य (परम्परा-सम्पादक नारायण सिंह भाटी) महेन्द्र भानावत पृ. 01
4. राजस्थान के लोक नाट्य (परम्परा, सम्पादक: नारायण सिंह भाटी) महेन्द्र भानावत। पृ. (1-2)
5. राजस्थान की रम्मतें: रमेश बोरणा। पृ.सं. -20
6. वही, पृ. 20
7. राजस्थानी लोक नाट्य -डॉ अर्जुन देव चारण, रंगयोग-सृजन शताब्दी (लोक कला विशेषांक) पृ. - 145
8. रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़ 1891ई., पृ. 352
9. मुहता नैणसी री ख्यात 'भाग-3,पृ. - 145
10. वही, पृ. 146
11. राजस्थान की रम्मतें: रमेश बोरणा। पृ. 21
12. मारवाड़ की लोक नाट्य परम्परा-सम्पादक: नारायण सिंह भाटी, परम्परा पृ. 29
13. राजस्थान के लोक नाट्य: महेन्द्र भानावत। परम्परा, पृ. 20
14. रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़ 1891, पृ. 352
15. वही, पृ. 352
16. राजस्थान की रम्मतें: रमेश बोरणा। पृ- 24
17. वही, पृ. 25
18. राजस्थानी लोक नाट्य (रंगयोग, सृजन शताब्दी): डॉ अर्जुन देव चारण पृ. 110
19. राजस्थान की रम्मतें: रमेश बोरणा: पृ. 25
20. रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़ 1891 ई. पृ. 354
21. राजस्थानी लोक नाट्य: रमेश बोरणा पृ. 26
22. वही पृ. 27
23. राजस्थान की रम्मतें : रमेश बोरणा पृ. 26
24. वही, पृ. 27
25. वही, पृ. 29
26. राजस्थान की रम्मतें : रमेश बोरणा। पृ. 29

‘मम से ममेत्तर के कवि : अज्ञेय’ सारांश



shodhshree@gmail.com

डॉ. निक्की सैन
जोधपुर

शोध सारांश

‘मम से ममेत्तर’ के कवि अज्ञेय ने ‘प्रत्येक कला के मूल में एक जीवन दर्शन को स्वीकार किया है। जीवन दर्शन का एक तत्व ‘मम’ और ‘ममेत्तर’ का परस्पर सम्बन्ध, जीव और जीवेत्तर के सम्बन्ध के व्यापक क्षेत्र का एक अंश मात्र है। उनके दर्शन का जीवन तत्व ही ‘मम से ममेत्तर’ की विचारधारा है। उनकी दृष्टि में मैं (मम) को ममेत्तर से मिलना ही जीवन की सार्थकता है। ‘मम से ममेत्तर’ के सम्बन्ध को एक दार्शनिक दृष्टि देते हुए उन्होंने अपने कलात्मक बोध, व्यापक जीवनानुभूति, समृद्ध कल्पना शक्ति एवं सहज सांकेतिक अभिव्यंजना के द्वारा काव्य रचना संसार के माध्यम से हिन्दी जगत में सदा सदा के लिए अमर हो गए हैं।

संकेताक्षर : अज्ञेय, हिन्दी, दार्शनिक, कल्पना शक्ति, प्रयोगवाद।

हिं

दी कविता के इतिहास में अज्ञेय का नाम दुर्निवार हो गया है यह नाम इस प्रकार से साहित्य जगत में अपनी नींव रख चुका है कि इसे विस्मृत नहीं किया जा सकता है। 1936-37 के आस-पास हिन्दी की एक मान्य पत्रिका में यह आदेश दिया गया था कि ‘अज्ञेय की कहानी बिना देखे छापो, पर कविता अच्छी भी लगे तो नहीं’ और आज वही अज्ञेय नाम आज के नए कवियों और साहित्य जगत पर अमिट छाप रखता है।

सर्वतोन्मुखी प्रतिभा सम्पन्न अज्ञेय का व्यक्तित्व एक पुच्छल तारे के समान हिन्दी साहित्याकोष को प्रकाशमान कर रहा है। छायावादोत्तर नये काव्य के सर्वाधिक चर्चित कवि अज्ञेय ‘तारसप्तक’, ‘दूसरा सप्तक’ तथा ‘तीसरा सप्तक’ जैसे ऐतिहासिक महत्त्व वाले काव्य संकलनों एवं ‘प्रतीक’ जैसी विशिष्ट मासिक पत्रिका के वरिष्ठ सम्पादक रहे, जिनके माध्यम से नए तथा सशक्त कवियों की एकाधिक पीढ़ियाँ सामने आईं तथा भाव, विचार एवं कला शिल्प की भूमि पर काव्य रचना को अछूती दिशा व अछूते शिखर प्राप्त हुए हैं। अज्ञेय ने छायावादोत्तर नये काव्य की अनेक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियों को दिशानिर्देश दिया है और इस सन्दर्भ में उन्हें नये काव्य जगत के श्रेष्ठ टी.एस. ईलिएट के समान माना है। ‘अज्ञेय’ का काव्य कृतित्व उनके प्रबुद्धता का प्रमाण देता है। उनकी रचनाएँ (गद्य-पद्य) उनके संवेदनशील व्यक्तित्व के साथ उनके बौद्धिक चिन्तन को उत्कर्ष के साथ प्रस्तुत करती हैं।

‘मम से ममेत्तर’ के कवि अज्ञेय के चिन्तन में ‘मैं’ की क्या स्थिति है, यह वह अनेक प्रकार से बताते हैं और साथ स्वयं इन कोणों को पहचानने का प्रयत्न भी करते रहे हैं – अनुभूति के स्तर पर भी और चिन्तन के स्तर पर भी। एक स्थान पर उन्होंने यह स्वीकार किया है और वे लिखते हैं कि “अस्ति पहले है, भवति बाद में, और मैं अपने अस्तित्व के बारे निःसंशय नहीं हूँ... यानि यह आस्था मुझ में नहीं है कि ‘मैं’ हूँ और यह होना ही ‘मैं’ का होना है। ‘एक केन्द्र युक्त सत्ता होना’ जिसकी परिधि है और केन्द्र जिसका ‘मैं’ है तो मैं किसी बात के सम्बन्ध में भी असंदिग्ध नहीं हो सकता। तब मैं अनिवार्यतया चिन्ता का शिकार हूँ और रहूँगा, आध्यात्मिक चिन्ता का, नैतिक चिन्ता का, सांवेदनिक चिन्ता का, धार्मिक चिन्ता का मैं हूँ यह पहचान भी अभय है। उसके बाद यह ज्ञान कि एक दिन किसी एक क्षण यह सत्ता नहीं रहेगी, भय नहीं पैदा करता, साहस देता है। न होने से घिरा हुआ मैं हूँ, न ... होने को दे दिया जाऊँगा, अपनी अवस्थिति पहचान और स्वीकृति सत्ता को खोखला नहीं करती, दृष्टि के योग से

अपने होने को और भी आस्वाद बनाती है, उसके स्वाद को सघन तर करती है।¹

इस उद्धरण से अज्ञेय की आस्था, जीवन के प्रति स्वतन्त्र आत्म चेतना 'मैं' के समक्ष प्रस्तुत होने वाली विभिन्न चिंताओं का अर्थ एक साथ इंकृत हो उठता है। प्रत्येक संस्कृति के मूल में जीवन दर्शन होता है इसलिए अज्ञेय ने 'प्रत्येक कला के मूल में एक जीवन दर्शन को माना है। जीवन दर्शन का एक तत्व 'मम' और 'ममेत्तर' का परस्पर सम्बन्ध, जीव और जीवेत्तर के सम्बन्ध के व्यापक क्षेत्र का एक छोटा सा हिस्सा है। जीवन की प्रक्रिया का बढ़ता हुआ ज्ञान और जीवन यंत्र की तान्त्रिक गति का बढ़ता हुआ परिचय अपने आप में एक समस्या है। वे जीवन स्फटिक रचना को ही रचना व गति को ही गति मानते थे। उन्होंने प्रत्येक कला के मूल में जीवन-दर्शन की सत्ता को प्रमाण माना है। उनका 'मम' से 'ममेत्तर' का सम्बन्ध इसी जीवन दर्शन पर चलता है। उनकी प्रत्येक काव्य रना में यह 'मम' - 'ममेत्तर' सम्बन्ध दर्शित होता है।

अज्ञेय के 'मम- ममेत्तर' के सम्बन्ध को समझने के लिए उनकी रचना 'असाध्य वीणा' जो कि उनके काव्य संग्रह 'आँगन के पार द्वार' में संकलित है परन्तु 'असाध्य वीणा' अपना अलग अस्तित्व एवं महत्व रखती है। यह एक जापानी कथा का रूपान्तरण है। 'असाध्य वीणा' लययुक्त विचारोत्तम कविता है। 'असाध्य वीणा' को साध पाना कठिन है जिसे केशकम्बली प्रियंवद ने साधकर दिखाया तब उससे निकलने वाले स्वरों में सभी सभासद डूब गए और अन्त में केशकम्बली प्रियंवद का यह कथन कि असाध्य वीणा को साधने में मेरा कोई श्रेय नहीं क्योंकि मैं स्वयं किसी असीम सत्ता के समक्ष संज्ञा शून्य हो गया था -

“श्रेय नहीं कुछ मेरा :
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में -
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ सौंप दिया था-
सुना आप ने जो वह मेरा नहीं
न वीणा का था :
वह तो सब कुद की तथता थी-
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।”³

‘असाध्य वीणा’ कविता में यह ‘महाशून्य’ और ‘महामौन’ का वर्णन उस परम तत्व का संकेत करता है जिसे अज्ञेय ने ममेत्तर कह दिया है।

अज्ञेय का ‘आँगन के पार द्वार’ उनके व्यक्तित्व को चरमोत्कर्ष की ओर ले जाने वाली सफल रचना है। इस संग्रह का ‘चक्रान्त शिला’ में अज्ञेय जी ने आत्मा के उस रूप की अभिव्यक्ति की है जिसमें जगत के पदार्थों में उन्हें ‘मैं’ की अनुभूति होती है-

“मैं सोते के साथ बहता हूँ
पक्षी के साथ गाता हूँ
वृक्षों के कोपलों के साथ थरथरता हूँ
और उसी अदृश्य क्रम में, भीतर ही भीतर
झरे पत्तों के साथ गलता ओर जीर्ण होता रहता हूँ
नए प्राण पाता हूँ।”⁴

अज्ञेय की यह आत्मा अनुभूति अर्थात् ‘मैं’ की अनुभूति ही उसका परिणय महाशून्य (ममेत्तर) से कराती है-

“ओ आत्मा री
कन्या भोली क्वॉरी
महाशून्य के साथ भाँवरें
तेरी रची गई।

जा आत्मा, जा
कन्या - वधुका -
उस की अनुगा,
वह महाशून्य ही अब तेरा पथ,
लक्ष्य, अन्न-जल, पालक, पति,
आलोक, धर्म :
तुझ को वह एकमात्र सरसाएगा।”⁵

इसी प्रकार उनका संग्रह ‘कितनी नावों में कितनी बार’ में संकलित :ओ निःसंग ममेत्तर’ शीर्षक कविता इस संग्रह की सर्वाधिक सुदीर्घ कविता है। यह सम्पूर्ण कविता परम तत्व परमात्मा व प्रेम पर केन्द्रीत है। छायावादी कवियों की भाँति इस रचना में अज्ञेय की परमतत्व से मिलन की आकांशा प्रकट होती है-

“निःसंग ममेत्तर” पर अपना सब न्यौछावर कर
देने की है
“मेरे कोटि-कोटि हरोँ से मंजे एकमात्र मोती
ओ विश्व-प्रतिम
अब तू इस कृति सीप को अपने में समेट ले,
यह परिदृश्य सीख ले।
स्वाति बूंद। चातक को आत्मलीन तू कर ले।
ओ वरिष्ठ! ओ वर दे! ओ वर ले!”⁶

‘कितनी नावों में कितनी बार’ संग्रह में संकलित ‘सवरे उठ तो धूप खिली थी’ शीर्षक कविता में भी अज्ञेय इस अन्धकारमय संसार में स्वयं (मम) को इस सत्य से परिचित कराते हुए पाया गया है कि जो हमारे पास है वह उधार है। वास्तविकता में जो कुछ भी हमारे पास है वह ममेत्तर (परमात्मा) का है -

**“यह खोज यह द्वैत,
यह असहाय विरह व्यथा,
यह अन्धकार में जाग कर
सहसा पहचानना कि
जो मेरा है वही ममेत्तर है-
यह सब तुम्हारे पास है।
तो थोड़ा मुझे दे दो-धार-इस एक बार-
मुझे जो चरम आवश्यकता है।”⁷**

अज्ञेय का ‘मम से ममेत्तर’ का सम्बन्ध अधिकांश रचनाओं में समाहित है क्योंकि उनके दर्शन का जीवन तत्त्व ही ‘मम से ममेत्तर’ की विचारधारा है। अज्ञेय के काव्य में ममेत्तर को सहजता से ही पहचानना और समझा जा सकता है। ‘इत्यलम्’ संग्रह में कविता ‘हिय-हारिल’ में भी कवि अनन्य एवं अगोचर सत्ता की खोज में तत्पर न होकर स्वयं के भीतर व्याप्त शक्ति की खोज में उत्सुक जान पड़ता है। कवि वह शक्ति अपने भीतर व्याप्त परमात्मा (ममेत्तर) के अणु पुंज से परिचित होकर प्राप्त करता है-

**“एक असीम बूंद असीम समुद्र को अपने भीतर
प्रतिबिम्बित करती है,
एक असीम अणु उस असीम शक्ति को जो उसे
प्रेरित करती है
अपने भीतर समा लेना चाहता है
उसकी रहस्यता का परदा
उसमें मिल जाना चाहता है-”⁸**

अज्ञेय का एक और काव्य संग्रह ‘सागर मुद्रा’ में संकलित ‘जीवन मर्म’ रचना से-

**“झरना : झरता पत्ता
हरी डाल से
अटक गया।”⁹**

रचना की तीन पंक्तियां! केवल तीन पंक्तियों में अज्ञेय ने अपने काव्य कौशल से जीवन की क्षणभंगुरता और अनश्वर परमतत्व की वास्तविकता को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है। जिस प्रकार पत्ता भी झरता है और झरना भी झरता है और वन-झरने की धार भी झरती है और इन

सबका झरना ही एक अनन्त प्रक्रिया है। झरता पत्ता एक ओर तो अपने अन्त का संकेत देता है तो वही दूसरी तरफ हरी छाल पर अटक कर पुनः जीवन की ओर बढ़ने का प्रमाण देता है। यह प्रक्रिया ‘मम में बसे ममेत्तर’ की शक्ति का प्रमाण है। अज्ञेय का यह दर्शन ही उनके मम से ममेत्तर के जीवन तत्व को उनकी रचनाओं में दर्शित करता है।

अज्ञेय ने ‘मम-ममेत्तर’ को महत्व देते हुए लिखा है कि - “यह जो दुनिया है, मैं हूँ, तुम हो, सब कुछ एक दिन खत्म हो जाएगा और कुछ भी नहीं रहेगा लेकिन फिर भी यह दुनिया इसी प्रकार बनी रहेगी जैसी है। यही प्रकृति का नियम है। सब कुछ खत्म होकर भी सब कुछ पूर्ववत् बना रहता है और यह दुनिया निर्बाध गति से चलती रहती है।”¹⁰

अज्ञेय को ‘ओस की बूंद’ में भी नश्वरता का आभास होता है। बूंद के भार से घास की अनी नीचे झुक जाती है जिसके कारण ओस की बूंद धूप में चमकने लगती है और धूप के सम्पर्क में आते ही वह भाप बनकर उड़ने लगती है। भोर की पहली किरण के साथ हवा के सरसराने से, पत्तियों के हिलने से ओस की बूंदें एक दूसरे से टकराकर झर जाती हैं। मिलन के इस क्षण को अज्ञेय ने एक महान प्रक्रिया के साथ जोड़कर जीवन दर्शन का बोध कराते हुए, संसार की नश्वरता का ज्ञान कराया है। यही वजह है कि उनकी प्रत्येक विधा के संग्रहों एवं रचनाओं में उन्होंने नश्वरता को केन्द्र में रख अलौकिकता को श्रेष्ठ बताते हुए स्वयं को उसी के साथ जोड़ा है। उनका मम (मैं) से ममेत्तर (मेरे से इत्तर) का भाव इसी का परिचायक है। इनकी रचना ‘अरी ओ करुणा प्रभामय’ से -

**“मैंने देखा
एक बूंद सहसा
उछली सागर के झाग से-
रंगी गयी क्षण-भर
ढलते सूरज की आग से -
मुझ को दीख गया :
हर आलोक - छुआ अपनापन
है उन्मोचन
नश्वरता के दाग से”¹¹**

निष्कर्षतः ‘अज्ञेय’ को प्रयोगवाद का विहान कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है। उन्होंने अपने रचना धर्म से साहित्य को नवीन पथ दिखाया। ‘मम से ममेत्तर’ को अपने दर्शन का जीवन तत्व स्वीकार कर उन्होंने अपने

काव्य रचना संसार को नवीन तत्व दिया है। जिसके प्रयोग द्वारा काव्य संवेदना के नये आयामों, परिदृश्यों की ओर पाठक को आकर्षित किया।

‘मम से ममेत्तर’ के सम्बन्ध को एक दार्शनिक दृष्टि देते हुए महत्त्वपूर्ण माना है और इसी कारण वे जीवन को क्षणभंगुर मानते हैं। उन्होंने जीवन की सार्थकता मृत्यु से ही स्वीकारा है अर्थात् मैं (मम) को ममेत्तर से मिलना ही जीवन की सार्थकता है। उनकी दृष्टि में ‘मैं’ नश्वर होकर भी नश्वर नहीं है क्योंकि मम नश्वर होकर ममेत्तर अनश्वर को प्राप्त होता है।

अतः अज्ञेय अपने कलात्मक बोध, व्यापक जीवनानुभूति, समृद्ध कल्पनाशक्ति, सहज सांकेतिक अभिव्यंजना के द्वारा भावों के नूतन एवं अनछुए पहलुओं को उजागर करने और निजी अनुभूति को स्वनिर्मित जीवन तत्व के माध्यम से व्यापक रूप प्रदान कर हिन्दी जगत् के अमिट हस्ताक्षर के रूप में सदैव अमर हो गए हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अज्ञेय : परिचय एवं प्रतिनिधि कविताएँ विद्यानिवास मिश्र पृ.सं. 3
2. भवन्ती अज्ञेय पृ.सं. 139
3. अज्ञेय : परिचय एवं प्रतिनिधि कविताएँ विद्यानिवास मिश्र पृ.सं. 105 “असाध्य वीणा”

4. आँगन के पार द्वार ‘वन में एक झरना बहता है’ अज्ञेय पृ.सं. 36
5. आँगन के पार द्वार ‘अरी ओ आत्मा री’ अज्ञेय पृ.सं. 48-49
6. सदान्नीश, भाग द्वितीय सं. अज्ञेय पृ.सं. 139
7. अज्ञेय : परिचय एवं प्रतिनिधि कविताएँ विद्यानिवास मिश्र पृ.सं. 52 “सवेरे उठा तो धूप खिली थी”
8. सदान्नीश, 1 सं. अज्ञेय पृ.सं. 166
9. अज्ञेय : परिचय एवं प्रतिनिधि कविताएँ विद्यानिवास मिश्र पृ.सं. 54
10. शाश्वती अज्ञेय पृ.सं. 13-14
11. अज्ञेय : परिचय एवं प्रतिनिधि कविताएँ विद्यानिवास मिश्र पृ.सं. 47 “मैंने देखा : एक बूंद”

हिंदी दलित कहानी में चित्रित जीवन संघर्ष, चेतना और प्रतिरोध का स्वर

डॉ. कुलदीप सिंह मीना

असिस्टेंट प्रोफेसर, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

हिंदी की दलित कहानी भी सबसे सशक्त विधा के रूप में उभरकर आई है। दलित कहानी भी समय का भोगा सच बयां कर रही है। हिन्दी दलित कहानीकारों में ओम प्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, श्योराज सिंह बेचैन, प्रेम कपाड़िया, रूपनारायण सोनकर, रत्नकुमार सांभरिया, सुशीला टाकभौरे, रजत रानी आदि प्रमुख हैं। इन्होंने अपनी दलित कहानियों के माध्यम से भूख, पीड़ा, वेदना, तिरस्कार, अपमान, संघर्ष, उपेक्षित भाव, प्रतिरोध, आक्रोश व चेतना के स्वर प्रस्फुटित किये हैं। सदियों से दलित भेदभाव व उपेक्षित जीवन जीने को मजबूर हुए हैं। उच्च पूंजीपति वर्गों ने शोषण, अत्याचार, अन्याय व अमानवीय व्यवहार किया है। दलित भी अब शिक्षित होकर अपने अधिकारों को समझने लगे हैं। वे अपनी अस्मिता व अस्तित्व को पहचानने लगे हैं।

संकेताक्षर : दलित, भूख, पीड़ा, वेदना, सामाजिक विषमता, शोषण, उत्पीड़न, संघर्ष, पर्दाफाश, प्रतिरोध, अधिकार, अस्मिता, अस्तित्व, स्वाभिमान।

आधुनिक काल के आरम्भ से ही हिंदी कहानी को विस्तृत फलक मिलने लगा था। जो विभिन्न पढ़ावों को पार करती हुई आज साहित्य के केन्द्र में है। समकालीन कहानी के दौर में कहानी में दलित चेतना का उभार सामने आता है। हिंदी दलित कहानी की लंबी संघर्ष यात्रा है जो सातवें दशक से लेकर आज तक तमाम चुनौतियों को चीरते हुए अपने विस्फोटक तेवर को पहचानने में सफल रही है। आठवें दशक में दलित कहानी की उपस्थिति अधिक तीव्रता से साहित्य जगत में उभरी, लेकिन हिंदी के तथाकथित संपादकों और समीक्षकों के भेदभावपूर्ण व उपेक्षित व्यवहार के कारण दलित कहानियों पर चर्चा नहीं की जा रही थी। लेकिन दलित कहानीकारों के संघर्ष ने इस चक्रव्यूह को तोड़ा और मुख्यधारा की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर हिंदी के बड़े पाठक वर्ग तक पहुंचाने में सफल रही। आज दलित कहानी साहित्य के मुख्य केन्द्र में है।

सम्पूर्ण दलित साहित्य को प्रतिरोध के साहित्य के रूप में जाना जाता रहा है, लेकिन कहानी में यह प्रतिरोध ज्यादा मुखर और धारदार होता है। दलित कहानी दलित जीवन का सतही कोरा चित्रण ही नहीं करती बल्कि सदियों से होते आ रहे शोषण, उत्पीड़न, जाति दंश, अपने साथ हुए अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध जाग्रत कर जीवन के अंतर्विरोधों का साहस से सामना कर चेतना जागृत करने का काम करती है। रमेश कुमार ने लिखा है कि “आठवें दशक के समानान्तर आंदोलन के माध्यम से समाज के कमजोर वर्ग की समस्याओं को कहानी का केंद्र बनाया गया। स्वतंत्रता के पचास वर्ष बाद निम्न दलित वर्ग का जीवन बद से बदतर होता चला गया ऐसी स्थिति में दलित कथाकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से इस वर्ग के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। इन कहानियों में दलित मानव की वेदना, निरंतर संघर्ष करते रहने की अनिवार्यता सुविधाभोगी लोगों के प्रति उनकी विरोध मुद्रा, प्रतिकूल नारकीय स्थिति में भी जीने की विवशता और अपने मानवीय अधिकारों के प्रति आत्मसजगता जाग्रत हुई है।” दलित समाज की इस पीड़ा, दर्द, वेदना, सामाजिक विषमता, शोषण आदि को चित्रित करने की प्रवृत्ति दलित कहानी में परिवेश से उपजी हुई परिस्थितियों के कारण ही पनप रही थी। आक्रोश और प्रतिरोध के द्वारा परिवर्तन तमाम रचनाकारों का स्वर बन चुका था। इस यात्रा में ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, श्योराज सिंह बेचैन,

प्रेम कपाड़िया, रूपनारायण सोनकर, रत्नकुमार सांभरिया, सूरजपाल चौहान, दयानंद बटोही, सुशीला टाकभौरे, अनिता भारती, कुसुम मेघवाल, कुसुम वियोगी, रजत रानी प्रमुख हैं, जिन्होंने दलित आवाज को बुलंद किया।

समकालीन हिंदी कहानी में दलित चेतना जिस उभार के साथ प्रकट हुई उसका एक निश्चित उद्देश्य है कि सर्वण लोगों की मानसिकता के साथ-साथ संघर्ष और प्रतिरोध की भावना को मजबूती के साथ खड़ा करे। इन कहानियों ने दलितों के साथ हुई बर्बरता, शोषण, उत्पीड़न, जातीय दंश की अभिव्यक्ति के साथ-साथ उनके अंदर स्वाभिमान की भावना जागृत कर, चेतनाशील बनाकर संघर्ष के लिए खड़ा किया है। यून कहें कि दलित कहानियों में एक तरफ दलित समाज के शोषण का कड़वा सच है वहीं दूसरी तरफ शोषण के प्रति संघर्षरत समाज के प्रतिरोध का आह्वान भी है।

मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'अपना गांव' में वर्ण व्यवस्था के निम्न पायदान पर आने वाले दलित सिर्फ उपभोग की वस्तु है, उसका मान-सम्मान अर्थहीन है। जमींदारों द्वारा किस प्रकार से दलितों की बहिन-बेटियों, महिलाओं का शोषण किया जाता है, आम बात है। साथ ही दलितों की विवशता, शिकायत करने पर पुलिस द्वारा दलितों के साथ किये जाने वाले अमानवीय व्यवहार की यथार्थ अभिव्यक्ति इस कहानी में की गई है। गांव के अस्सी वर्ष के हरिया की बहु कबूतरी के द्वारा ठाकुरों की हवेली पर जाकर काम करने से मना करने पर पूरे गांव के सामने ठाकुरों के द्वारा नग्न घुमाया जाता है। जो उनके शोषण की पराकाष्ठा का परिचायक है। "आगे-आगे कबूतरी और पीछे-पीछे लटैत, लौंडे-लुघाड़े। नंगेपन का जुलूस उसकी तरफ ही आ रहा था। एक के शरीर को नंगा कर दिया गया था, शेष अपने मन से नंगे हो चुके थे। उसने सुना, एक लटैत कह रहा था," सालो डेढ़ चमारों! हमसे ही सीनाजोरी, हमें ही आंख दिखाते हो। "इस कबूतरी की तरह तुम सबकी औरतों को नंगा किया जाएगा, तभी तुम्हारे दिमाग ठिकाने आएंगे।"² दलित समाज ने वर्णव्यवस्था की पीड़ा को लंबे समय से सहा है। शिक्षा प्राप्त करने के बाद दलित समाज में चेतना जरूर आई है, लेकिन तथाकथित सभ्य कहे जाने वाले समाज अभी तक दलितों के प्रति अपनी मानसिकता में कोई बदलाव नहीं किया है, वे आज भी उन्हें हेय और उपेक्षित दृष्टि से देखते हैं।

जयप्रकाश कर्दम की 'नो बार' कहानी के माध्यम से सभ्य समाज के लोगों के दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया गया है। यहां ऐसे लोगों का पर्दाफाश किया है, जो दोहरी मानसिकता में जीते हैं। शादी के लिए जाति का कोई बंधन नहीं मानते पर जब बात दलित की समाज की आ जाती है तो उनके सारे जातीय बन्धन तन कर खड़े हो जाते हैं। "वह सब तो ठीक है कि हम जाति-पाति को नहीं मानते और हमने मैट्रिमोनियल में 'नो बार' छपवाया था, लेकिन फिर भी कुछ चीजें तो देखनी ही होती हैं। आखिर 'नो बार' का यह मतलब तो नहीं कि किसी चमार-चूहड़े के साथ।"³ इतना ही नहीं ये तथाकथित सर्वण लोग दलितों के साथ सदियों से अमानवीय व्यवहार करते आ रहे हैं। वर्ण व्यवस्था ने दलितों से अमानवीय और नारकीय जीवन जीने को विवश किया है। जिससे दलितों पर अपनी आजीविका का संकट रहा है। परिणामस्वरूप उन्हें घृणित कार्य करने पड़े हैं। 'बैल की खाल' कहानी इसका सशक्त उदाहरण है। कहानी के दो पात्र कालू और भूरे जो दलित हैं अपनी आजीविका के लिए मृत जानवरों की खाल उतारने का काम करते थे। गांव के सर्वण पंडित बिरजमोहन का बैल मरने पर उसको उठाने के लिए जब दोनों की तलाश की गई। काफी समय बाद जब वे मिलते हैं तो किस प्रकार से उनके साथ व्यवहार किया जाता है। जबकि इस कार्य के लिए उनको कोई मजदूरी भी नहीं दी जाती थी। "कहाँ मर गए थे साले..... तड़के से ढूँढ-ढूँढ के गोहड़े टूट गए और अब रहे हो महाराज के तरियो.....इस बैल को कौन उठावेगा तुम्हारा बाप.....।"⁴ इस तरह सामाजिक व्यवस्था के तहत दलितों को मानव को मानव की श्रेणी में माना ही नहीं गया है।

दलित समाज के लोग अपनी आजीविका के लिए अपने परम्परागत स्त्रोतों पर निर्भर रहे हैं। शिक्षित होकर वे अब अपने अधिकारों, हकों को समझने लगे हैं। अपने ढंग से शहरों में आकर दूसरे अन्य व्यवसाय करने की कोशिश करने लगे हैं किंतु सरकारी तंत्र में विद्यमान वर्ण व्यवस्था के पोषक तत्व दलित विरोधी मानसिकता लिए हुए हैं, जो इनके साथ भेदभावपूर्ण रवैया अपनाकर इन्हें प्रताड़ित करते रहते हैं। 'साजिश' कहानी में इसी षड्यंत्र का पर्दाफाश किया गया है जो दलितों के प्रति सर्वण मानसिकता को दर्शाता है। कहानी का पात्र नत्थू जो दलित है वह सुअर पालन को छोड़कर अब ट्रांसपोर्ट का काम करना चाहता है। बैंक

मैनेजर रामसहाय शर्मा उसे ट्रांसपोर्ट के बजाय सुअर पालन पर ही जोर देता है। “बस तुम लोगों में यह कमी है। दो चार किताबें क्या पढ़ गए कि समझने लगे अपने आपको बड़ा आदमी। कल्लन जाटव के लड़के श्यामा को देख, तेरी तरह बी.ए. पास है। उसने भी तो बैंक से कर्जा लेकर अपने चमड़े के व्यापार को आगे बढ़ाया है। यह नेक सलाह उसे मैंने ही दी थी। आज लाखों में खेल रहा है।”⁵ आज शिक्षित होकर दलित अपना व्यवसाय खुद बदलना चाहते हैं किंतु सरकारी तंत्र में बैठे सवर्ण लोग षड्यंत्रपूर्वक दलितों को नारकीय जीवन जीने को विवश करते हैं।

दलितों के शोषण का आधार ये सामाजिक ताना-बाना तो सदियों से रहा ही है, लेकिन आजादी के बाद जब दलितों के लिए शिक्षा के द्वारा खोलने की बात होने लगी थी। सदियों से अनवरत जारी इस सामाजिक व्यवस्था का प्रभाव इन शिक्षण संस्थानों पर भी था, जहां दलितों के साथ आजादी के बाद भी भेदभावपूर्ण रवैए में किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं हुई थी। ‘सुरंग’ कहानी ऐसे ही शिक्षण संस्थानों की सुरंग बनाती है जहां द्रोणाचार्य के वंशज आज भी एकलव्य का अंगूठा काटने का षड्यन्त्र रचा रहे हैं। इन तथाकथित लोगों को ये संदेह होने लगा कि ये दलित लोग शिक्षित होंगे तो इन्हें संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों, हकों का पता चलेगा और इनमें चेतना जागृत होगी। शिक्षण संस्थानों पर ये ही काबिल थे। ऐसे पवित्र स्थानों पर बैठकर भी ये तथाकथित लोग दलितों में चेतना जागृत करने के बजाय हीनता का भाव पैदा करते रहे हैं- “मुझे बराबर जाति-पाति के पचड़े के कारण टकराना पड़ा है। अच्छा भी है एक दूसरे को हम नहीं जानते तब तक खूब गोल-गोल बातें हैं, लेकिन ज्यों ही जाति की गंध लोगों को मिलती है, यदि उनका टाइटल नहीं है तो रंग पहनावा पर धावा गोला जाता है.....मेरे शरीर में जाति के ठेकेदारों द्वारा जाति पूछने पर जहर फैल जाता है। लिखते अच्छा हैं तो क्या हुआ आखिर हरिजन ही तो हैं.....मेरी नसों में दर्द के कीड़े कुलबुलाने लगे।”⁶ इसी तरह सशक्त दलित हस्ताक्षर ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कहानियों में दलितों के जीवन संघर्ष और उनकी बैचेनी के जीवन दस्तावेज को प्रस्तुत किया है। इस जीवन की व्यथा, छटपटाहट इनकी कहानियों में स्पष्ट तौर पर देखी जा सकती है। इन्हें दबे, कुचले, शोषित, पीड़ित जनसमूह को मुखरता देकर उनके इर्द गिर्द फैली

विसंगतियों पर करारी चोट की है। ‘सलाम’ कहानी समाज में व्याप्त अस्पृश्यता का अध्ययन है। कहानी का ताना बाना हरीश नामक दलित की शादी में आये सवर्ण युवक कमल उपाध्याय को लेकर बुना गया है। कमल जब सुबह चाय पीने के लिए ढाबे पर जाता है और ढाबे वाले को जब पता चलता है कि वह चूहड़ों की बारात में आया है तो वह उसको चाय देने के लिए मना कर देता है। कमल तीखेपन से उसको मना करने का कारण पूछता है। तब चाय वाला तनकर उसके सामने खड़ा होकर कहता है- “ये दो पैसे शहर में जाके दिखाना। दो पैसे हो गए जब में तो सारी दुनिया को सिर पर उठाये घूमों.....यह शहर नहीं गाँव है, यहाँ चूहड़े और चमारों को मेरी दुकान पर चाय नहीं मिलती. कहीं और जाकर पियो।”⁷ यह कहानी सवर्णों की दलितों के प्रति ओछी मानसिकता को उजागर करती है। इसके साथ-साथ दलित अब शिक्षित होने लगे हैं, जिससे इनके अंदर धीरे-धीरे अपने साथ हो रहे अन्याय के विरुद्ध खड़े होने की भावना प्रबल होती जा रही है। वे अब प्रतिरोध करने लगे हैं। सलाम कहानी का ही नायक हरीश सदियों से चली आ रही गुलाम मानसिकता की ‘द्योतक-सलाम’ रस्म का विरोध करता है। जिससे तथाकथित समाज के ठेकेदारों, सामन्तों के अहम को चोट पहुंचती है, उन्हें एहसास होने लगता है की अब दलितों में आक्रोश और प्रतिरोध की भावना के साथ स्वाभिमान जाग्रत हो रहा है। अपने ही समाज के तमाम लोगों के विरोध के बावजूद हरीश सलाम रस्म पर सवर्ण लोगों को घर-घर जाने से मना कर देता है। “आप चाहे जो समझें..... मैं इस रिवाज को आत्मविश्वास तोड़ने की साजिश मानता हूँ। यह सलाम की रस्म बन्द होनी चाहिए।”⁸ तमाम बाधाओं और चुनौतियों के बाद अब दलित समाज में शिक्षा का प्रभाव पड़ने लगा है। सदियों से चली आ रही अमानवीय साजिशों को तोड़ने लगे हैं।

दलित समाज के लोग अपने आपको पहचानने लगे हैं, उन्हें अपने अस्तित्व और अस्मिता का बोध होने लगा है। अपने आपको श्रेष्ठ मानने वाले तथाकथित लोगों के कुटिल षड्यंत्र को पहचानने लगे हैं और अपने साथ हो रहे अन्याय, शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद करने लगे हैं। ‘सपना’ कहानी में इसी आक्रोशित विरोधी स्वर को मजबूती के साथ अभिव्यक्त किया गया है। जो विरोधी लोगों के षड्यंत्र का पर्दाफाश करता है। सवर्णों द्वारा मन्दिर बनाने की योजना बनाई जाती है। जिसमें

हमेशा कि तरह अपने भोलेपन के साथ दलित अपना बराबर योगदान देते हैं। मंदिर का निर्माण कार्य पूरा होने के बाद अनुष्ठान कार्य के समय जाति आड़े आती है और दलितों का स्थान जूते चप्पलों के पास निर्धारित किया जाता है। ऋषि द्वारा इसका विरोध किया जाता है। “मिस्टर नटवर लाल यह ज्ञान आपको आज ही प्राप्त हुआ है कि गौतम एस.सी. है। तब आपने क्यों नहीं कहा कि एस.सी. है.....क्यों नहीं आपने ऐलान किया कि जो ईंट किसी एस.सी. ने बनाई है, पकाई है..वे ईंट इस मंदिर में नहीं लगेंगी।”⁹ इस ब्राह्मणवादी व्यवस्था में किस तरह से गौतम जैसे अछूतों के साथ व्यवहार करते हैं। यह बताकर रचनाकर ने सवर्णों की मानसिकता का कच्चा-चिट्ठा खोल दिया है। इसके साथ-साथ दलित स्त्री भी अब शिक्षित होकर अपने अधिकारों को समझने लगी है और गुलामी की बेड़ियों तथा जाति बंधन को तोड़कर आगे बढ़ने के लिये प्रतिबद्ध है। सिलिया कहानी में नायिका सिलिया अपने साथ हुए भेदभावपूर्ण व्यवहार से आहत होती है और पढ़-लिखकर अपमान की जंजीरों को तोड़ देना चाहती है-“मैं बहुत आगे तक पढ़ूंगी पढ़ती रहूंगी, उन सभी परम्पराओं का पता लगाऊँगी जिन्होंने हमें समाज में अछूत बना दिया है। मैं विद्या, बुद्धि और विवेक से अपने आपको ऊँचा साबित करके रहूंगी। किसी के सामने झुकूंगी नहीं। न ही अपमान सहूंगी।”¹⁰

इसी तरह दलित जीवन के संघर्ष के साथ विद्रोह, आक्रोश और स्वाभिमान की चेतना को रचनाकार रत्नकुमार सांभरिया ने ‘फुलवा’ कहानी के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। दलित समाज में अब शिक्षा के प्रति चेतना आई है, जिससे ये अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने लगे हैं। कहानी की दलित पात्र फुलवा जो विधवा है। जिसे सवर्णों के यहां काम करना उत्तराधिकार में मिला है। वह अपने बेटे के लालन पालन के लिए सवर्णों के यहां काम करते हुए कई बार सामंती प्रवृत्ति के रामेश्वर के हाथों अपमानित होती है। तमाम चुनौतियों का सामना करते हुए वह विधवा महिला शिक्षा का महत्त्व समझती है और अपने बेटे राधामोहन को पढ़ा लिखा कर अधिकारी बना देती है, कुछ समय बाद वही सामंती प्रवृत्ति का रामेश्वर फुलवा के पास बेटे की नौकरी के लिए पहुंचता है। पूरी तरह टूटने के बाद भी रामेश्वर का अहंकार नहीं टूटता है। शहर में आकर भी वह फुलवा के यहां पानी नहीं पीता है। गांव में टूटी झोंपड़ी में रहने वाली और खाने के

लिए दाने-दाने को मोहताज फुलवा अब आलीशान घर में रहती है। दूसरी ओर गांव के ही पंडित के मकान की हालत देखकर उसके अंदर के द्वेष और बढ़ने लगता है। “फुलवा की कोठी देखकर जहां रामेश्वर की आंखें कुत्सा और द्वेष से सिकुड़ी हुई थी। पंडित जी का मकान देखकर उसकी आंखें हसरत और विस्मय से फैल गई थी। यह विस्मय, खेद और खिदमत से सना था।”¹¹

वही ‘बकरी के दो बच्चे’ कहानी सामंती उत्पीड़न के शिकार दलितों को प्रतिरोध की राह बताते हुए उनमें चेतना का प्रवाह करती है साथ ही दलितों में स्वाभिमान और ताकत का एहसास कराती है। जो व्यक्ति दलितों को जानवर से भी बदतर मानता है। दलित उसके अन्याय के खिलाफ उठते हैं और उसे पुलिस द्वारा हथकड़ी लगवाई जाती है-“दानसिंह को हथकड़ी। उसके अंतस में आत्मग्लानि, आत्मभर्त्सना और शर्मिगदी का स्रोत फूट रहा था। बाप-दादाओं से विरासत में मिली यह शोहरत चूँ दफन हो जाएगी, उसने स्वपन में भी नहीं सोचा था।”¹² इसी तरह से खेत, आखेट व कई अन्य कहानियाँ हैं जो दलित समाज में चेतना और स्वाभिमान जगाने का प्रमाण देती हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दलित कहानीकारों ने दलित समाज के शोषण, पीड़ा, उनके साथ हुए अमानवीय व्यवहार को यथार्थ अभिव्यक्ति दी है। दलित लोगों में अपमान की परंपरा को नकारते हुए उनमें साहस, संबल और स्वाभिमान पैदा कर अपने अस्तित्व और अस्मिता का बोध होने लगा है। दलित अब उपेक्षित और हेय जीवन न जीकर अपने आपको मनुष्य मानकर जीवन जीने को तैयार खड़ा है। जिसके फलस्वरूप उनमें चेतना जाग्रत हुई है जिससे उनकी भाषा में थोड़ा तीखापन नजर आता है। अब उनमें आक्रोश व प्रतिरोध का स्वर प्रस्फुटित होने लगा है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. आधुनिक हिंदी कहानियों में दलित चेतना (आलेख) - डॉ. रमेश कुमार, दलित साहित्य के प्रतिमान-सं. डॉ. एन. सिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-2012, पृ. 30
2. अपना गांव (कहानी) -मोहनदास नैमिशराय, दलित कहानी संचयन-सं. रमणिका गुप्ता, साहित्य अकादमी, दिल्ली, वर्ष-2009, पृ. 30

3. नो बार (कहानी) -जयप्रकाश कर्दम, दलित कहानी संचयन-सं. रमणिका गुप्ता, साहित्य अकादमी, दिल्ली, वर्ष-2009, पृ. 60
4. बैल की खाल (कहानी) -ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम (कहानी संग्रह) -राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-2000, पृ. 33
5. साजिश (कहानी) -सूरजपाल चौहान, दलित कहानी संचयन-सं. रमणिका गुप्ता, साहित्य अकादमी, दिल्ली, वर्ष-2009, पृ. 67
6. सुरंग (कहानी) -दयानंद बटोही, दलित कहानी संचयन-सं. रमणिका गुप्ता, साहित्य अकादमी, दिल्ली, वर्ष-2009, पृ. 151
7. सलाम (कहानी) -ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम (कहानी संग्रह) -राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-2000, पृ. 12
8. वही, पृ. 17
9. सपना (कहानी) -ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम (कहानी संग्रह), -राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-2000, पृ. 33
10. सिलिया (कहानी) -सुशीला टाकभौरे, दलित कहानी संचयन-सं. रमणिका गुप्ता, साहित्य अकादमी, दिल्ली, वर्ष-2009, पृ. 64-65
11. फुलवा (कहानी) -रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानियां (कहानी संग्रह)-अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-2014, पृ. 25
12. वही, पृ. 39-40

पुस्तक समीक्षा कबीर के आलोचक

सुभाष चन्द्र

शोधार्थी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उत्तरप्रदेश)



shodhshree@gmail.com

कबीर पर लगभग पिछली एक शताब्दी में गढ़े गये मिथकों और प्रक्षिप्तों को आधुनिक युग में एक एक नया रूप दिया गया, लेकिन इन सभी मिथकों और प्रक्षिप्तों को महान आजीवक दलित चिन्तक डॉ. धर्मवीर की कबीर विषयक पुस्तकों और चिंतन ने तोड़ने का काम किया है तथा कबीर के चिंतन को मिथकों और प्रक्षिप्तों से निकाल कर एक नए सिरे से चिंतन को खड़ा किया है। उनका ये कबीर विषयक चिन्तक, आलोचना और कबीर के अध्ययन के क्षेत्र में एक मील का पत्थर साबित हुआ है। अपनी सम्पूर्ण आलोचनाओं में उन्होंने पहले पूर्व के तथ्यों को रखा है और फिर अपने प्रमाणों को देकर पुराने तथ्यों को खारिज किया भी किया। उन्होंने कबीर पर लिखी अपनी सम्पूर्ण आलोचनाओं में पूर्व में प्रसारित/प्रचलित तथ्यों को, मिथकों और प्रक्षिप्तों को प्रमाण देकर खारिज कर दिया और एक शुद्ध, गैर मिथक और गैर प्रक्षिप्तों वाले कबीर को उत्पन्न किया है जो की कबीर के अध्ययन और आलोचनाओं के क्षेत्रों को एक नई दिशा प्रदान करती है।

प्रस्तुत पुस्तक समीक्षा में मैंने “कबीर के आलोचक” पुस्तक की समीक्षा की। इस पुस्तक के पहले अध्याय में डॉ. धर्मवीर ने कबीरदास जी के जन्म और मृत्यु से सम्बंधित मिथक तिथियों को खारिज करके कबीरदास जी की लगभग वास्तविक जन्म मृत्यु की तिथियों को रखा है तथा दूसरे अध्याय से उन्होंने छः आलोचकों क्रमशः अयोध्या सिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’, डॉ. श्यामसुंदर दास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. हजारी प्रसाद दिवेदी, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी और डॉ. रामनिवास चंडक की कबीर विषयक आलोचनाओं का विस्तृत अध्ययन करके उनके मिथक तथ्यों को खारिज करके अपने प्रमाणों को दिया है।

डॉ. धर्मवीर के अनुसार, कबीर पर पहला आक्रमण अयोध्या सिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’ ने अपनी पुस्तक “कबीर वचनावली” में किया जो उन्होंने सन १९१६ में प्रकाशित करायी। इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने बताया कि कबीरदास जी हिन्दू थे वे अपना एक नया धर्म चलाना चाहते थे। ‘हरिऔध’ जी कबीर पंथियों को हिन्दू धर्म की उस चाल में फंसाना चाहते हैं। जिसकी वजह से आज तक हिन्दू धर्म की कोई परिभाषा नहीं बन पायी है। वे कबीर पंथ को मूल रूप से वैष्णव धर्म की एक शाखा मात्र मानना चाहते हैं। तथा बाद में उस पर मुसलमान धर्म का केवल थोड़ा प्रभाव मानना चाहते हैं। लेकिन ये तो उसी गणित के सवाल की तरह है जिसका उत्तर पहले ही जान लिया गया है। जब ‘हरिऔध’ जी को कहीं संतोष नहीं मिलता तो वे लिख देते हैं की मेरा विचार है कि कबीर साहब अंत में वेदान्त धर्मावलम्बी हो गये थे। ‘हरिऔध’ जी का उद्देश्य दोहरा है पहले वे कबीर को हिन्दू सिद्ध करना चाहते हैं, दूसरे यह भी कहना चाहते हैं कि कबीर का स्थान हिन्दू धर्म के चिंतकों के बीच प्रांसंगिक भी नहीं है। ‘हरिऔध’ जी ने कबीर की भाषा को लेकर जो टिपण्णी की है की उनकी भाषा शालीन नहीं है, वे ऊबड़ खाबड़ बोलते हैं और पता नहीं क्या क्या। इन सबके बावजूद ‘हरिऔध’ जी ये नहीं समझ पाए की कबीर न तो ब्राह्मणों से कुछ चाहते हैं, न मुस्ल्लों को कुछ समझाते हैं, वे तो अपना एक समाज चाहते हैं जिसे लक्ष्य कहा जा सकता है, जिसमें इस देश के शूद्र और अन्त्यज शुमार होते हैं। कबीर जी की भाषा पर अगर ध्यान दिया जाय तो यह ध्यान रहे कि ब्राह्मणों ने उन्हें अनपढ़ इसलिए कहा क्योंकि कबीर ने उनके वेदों की घोर निंदा की थी।

इस पुस्तक के दूसरे आलोचक हैं डॉ. श्यामसुंदर दास जी, उन्होंने कबीर को हिन्दू, वैष्णव और न जाने क्या क्या सिद्ध

कर दिया । डॉ. श्यामसुन्दर दास का एक मात्र उद्देश्य था की कबीर को हर तरह से विशुद्ध हिन्दू रक्त घोषित किया जाए। एक तरफ तो वे कबीर को हिन्दू रक्त घोषित करने पर तुले हैं वहीं दूसरी तरफ यह भी उन्होंने झूठ बोला है कि उनकी भक्ति कहीं कहीं सगुण रूप में दिखाई देती है। उन्हें यह पता होना चाहिए कि हिन्दू समाज में दलित जातियों में उत्पन्न कोई भी व्यक्ति सगुण भक्ति नहीं कर सकता।

डॉ. श्यामसुन्दर दास लिखते हैं कि हिन्दुओं का जन्म मरण संबंधी सिद्धांत कबीर मानते हैं। पुनर्जन्म के सिद्धांत में विश्वास करवाकर डॉ. श्यामसुन्दर दास ने कबीर के दर्शन को पूरा हलाल कर दिया है। उन्होंने कबीर की भाषा को लेकर भी सवाल उठाया है लेकिन हिंदी साहित्य के समीक्षकों ने यह जानने कि कोशिश नहीं की कबीर की भाषा में कौन-कौन से रस, छंद, अलंकार का प्रयोग हुआ है बल्कि उनकी भाषा को अटपटी बोलकर कबीर को एक साहित्यिक गाली दी है।

इस पुस्तक के तीसरे आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी हैं। उन्होंने तो कबीर और जायसी को आमने सामने खड़ा कर दिया। वे कबीर को जायसी से पिटाते हैं, जायसी को तुलसी से रूंदलवाते हैं। यह बात 'जायसी ग्रंथावली' के सम्पादन में देखी जा सकती है। शुक्ल जी ने कबीर को हिंदी साहित्य के इतिहास से देश निकाला दे कर उन्हें भुलाना चाहा है लेकिन देश निकाला देकर भी उनकी आँख नहीं लग पायी। वे यह चाहते थे कि कबीर को भी तुलसी की तरह हिन्दुओं की प्रशंसा करनी चाहिए थी, उन्होंने हिन्दुओं की कमियाँ क्यों मानी ?⁵

डॉ. धर्मवीर ने अपनी पुस्तक कबीर के आलोचक में लिखा है कि 'कबीर पर चौथा आक्रमण डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदीजी ने किया'। जब 'हरिऔध' जी, "डॉ. श्यामसुन्दर दास", 'शुक्ल' जी ने कबीर के चिंतन को एक विस्फोट की तरह बताया तो द्विवेदी जी ने कबीर के चिंतन से लड़ने का एक नया निराला रास्ता अपनाया। उन्होंने सीधे टकराहट के बजाय इसे भीतर से निस्तेज और निष्प्रभावी करना चाहा। उन्होंने कबीर के ऊपर पुराणों को जबरदस्ती मत्ये मढ़ दिया है। उन्होंने कहा कि जो यह समझता है कि बिना सगुणौपासना किये हम परमात्मा के निर्गुण स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेंगे वह उसी जिज्ञासु के समान है जो विश्व नियंता का तो

परिचय प्राप्त करना चाहता है लेकिन यह नहीं जानता कि विश्व क्या है ? वे तो कबीर को कमीनी जाति का बंदा तक कह गये हैं। कबीर को नीच और रामानंद को उच्च मानकर ही अपने निष्कर्षों पर पहुँचे हैं। कबीर की लड़ाई को डॉ. द्विवेदी जी ने एकदम उलट दिया है। उनकी इस बात का जवाब डॉ. धर्मवीर जी ने इसी पुस्तक में दिया है कि कबीर के गुरु मच्छर मक्खी हो सकते हैं, कुत्ता बिल्ली हो सकता है रामानंद नहीं क्योंकि कोई ब्राम्हण उस समय के दौर में किसी दलित को शिष्य नहीं बना सकता। डॉ. द्विवेदी ने कबीर को छः पालों की गेंद बना लिया है जिसमें एक इधर से ठेकर मारता है तो दूसरा उधर से। दिवेदी जी ने बहुत गलत ढंग से कबीर के चिंतन को नौचा है। उन्होंने कबीर के चिंतन को फोकट का माल बाई प्रोडक्ट तक कह दिया है। वे कबीर को केवल समाज सुधारक मानते हैं जो चिंतन की सतह पर चक्कर काटने के बराबर है। वे तो कहते हैं कि कबीर इस लड़ाई को बौद्धिक और तार्किक स्तर पर नहीं लड़ पाए। डॉ. दिवेदी कबीर को न्यारा सिद्ध करके मुसलमानों से अलग कर लेना चाहते हैं।

इस पुस्तक के पांचवे आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी हैं। वे कबीर के बारे में एक नए शब्द समन्यवाद की खोज के साथ करते हैं। वे कहते हैं कि कबीर समन्यवादी थे। वैसे तो हिन्दू विचारक किसी महापुरुष को समन्यवाद और विचार स्वातंत्र्य में भी आसानी से नहीं आने देते। द्विज हिन्दू जीते जी उस महापुरुष का विरोध करते रहते हैं। ये उसकर विचारों को दबाते हैं और उसके साहित्य को पुराने लोकायतियों के साहित्य के समान फूंक देते हैं लेकिन जब इनकी मजबूरी हो जाती है और विदेशी प्रभाव वाले युग के कारण या किसी अन्य कारण से उसके आन्दोलनों को दबा नहीं सकते तो उसे अपने नकारा विचार स्वातंत्र्य में ले आते हैं। आचार्य चतुर्वेदी जी ने कबीर के जिस समन्यवादी होने की बात कही है वह इनका अपना समन्यवाद है जिसमें वे सोच रहे हैं कि कबीर को किस प्रकार रूपांटे और नष्ट करें।

इस पुस्तक के छठे और अंतिम आलोचक डॉ. रामनिवास चंडक है जिन्होंने कबीर के समूचे विचारों, उनके चिंतन का, यहाँ तक की कबीर तक का दाह संस्कार कर दिया है। उन्होंने अपनी किताब "कबीर जीवन और दर्शन" में कबीर के दर्शन की ऊर्जा को मिटाने का कार्य किया है उन्होंने कबीर को पुनर्जन्म

सिद्धांत मानने वाला ही घोषित कर दिया है। वे कहते हैं कि जो लोग धनवान घरों में जन्म लेते हैं वे इसकी उपयोगिता अवश्य बतायेंगे। वास्तव में उन्हें जन्म के दिन से ही 'पंडित जी पां लागें' का सम्मान मिल जाता है। इस सिद्धांत के कारण वे निर्धनों के प्रति किसी प्रकार की सामाजिक जिम्मेदारी से बरी हो जाते हैं। डॉ. चंडक ने कबीर की तुलना बहुत ही गलत ढंग से की है कि वेद उपनिषद की जिस चिंतन धारा में शंकर

हैं उसी धारा में कबीर आते हैं। यह कोई व्याख्या नहीं बल्कि डॉ. चंडक का कबीर के सम्बन्ध में बोला गया सबसे बड़ा झूठ है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कबीर पर गढ़ी गयी मान्यताओं को डॉ. धर्मवीर ने खारिज करके ये साबित कर दिया है कि कबीर पर लिखने वाले विद्वानों ने इतने मिथक गढ़ दिए हैं कि उनमें असली कबीर को ढूढ़ पाना मुश्किल सा हो गया है।



पुस्तक - कबीर के आलोचक

लेखक - डॉ. धर्मवीर

प्रकाशक - वाणी प्रकाशक
4695, 21-ए
दरियागंज, नई दिल्ली

ISBN - 81-7055-546-9

संस्करण - 1997, 2009, 2015

पृष्ठ - 114

मूल्य - 250रु

Space and Confinement in the Reading of Beckett's *Waiting for Godot*

Deepika Tiwari

Research Scholar, Patna University, Patna (Bihar)



shodhshree@gmail.com

Abstract

*While the idea of 'confinement' comes with a sense of entrapment in a closed space and the ensuing anxiety. 'Exclusion' is socially and politically constructed impression, that is practiced through state apparatuses like religion, policing, government and imprisonment. Samuel Beckett's absurdist play *Waiting for Godot*, though considered as a flag bearer of existential movement by many commentators. The play has more to offer than the metaphysical anguish of the characters representative of the people of Post War World at large. My aim in this paper is to analyse the play from the perspective of forced confinement of the characters of Samuel Beckett's *Waiting for Godot* realised through fear and anticipation.*

Keywords: *Confinement, Space, Exclusion, Waiting for Godot, St Quentin's prison house.*

Can an open space, a tree, some leaves characterize confinement? Probably they can, if they are away from the social bindings, the social relationship or the institutional spaces. The term confinement literally means to border, to shut up or to enclose. In some sense it can be said that confinement comes with a sense of alienation from the open acceptable spaces. Usually the term is associated with suffocation and claustrophobia and occasionally with punishment. Looking at the setting of the absurd plays, can we analyse the characters of *Waiting for Godot* to be the sufferers or the survivors of some sort of confinement?

Peeping into the history of Confinement, one of the first instances was witnessed in the early sixteenth century in Paris. The idea was to stop beggary and thus a decree was passed in the parliament of Paris on March 23, 1532 to arrest all the beggars and unemployed workers and force them to work in the city sewers, chained in pairs. Two years later, an edict was passed for poor scholars and indigents to leave the city. When King Henry IV, secured his crown in 1594, around thirty percent of the Paris's population was under below poverty line. The act of 1606 "ordered the beggars of Paris to be whipped in the public square, branded on the shoulder, shorn, and then driven from the city; to keep them from returning (Foucault 44).

Hence, history has always remained political and unfair to poor, unemployed, diseased and to the insane. Placing them outside the social space allowed the rest to define themselves as fit and normal.

Samuel Beckett's play *Waiting for Godot* is one such example of social confinement and exclusion. The play projects the internal world of the self – struggling characters entrapped in a strange situation. Early commentators perceived the play in existential light to such an extent that it became almost synonyms to the existential movement. However, the play offers more to what we can term as 'metaphysical question'.

'Exclusion' and 'Confinement' occupies a real visible space and thus the mental and physical distress it brings along cannot be discounted. Vladimir's and Estragon's confinement is state crafted and thus is presented with fear and anticipation.

It is one of the unconventional plays in the history of drama though very relevant to the postmodern world. The play defied the traditional hierarchy of the elements of the stage; 'the Aristotelian heritage of drama' that stressed on the "concrete language of stage itself" (Issacharoff 211) Beckett's play written in two acts with the bare minimum setting – "A country road. A tree. Evening" (Pearson I) the play does not have any conventional plot, there is no beginning and no end. Characters are confused, diseased, they make senseless dialogue and are waiting for someone whom they don't know, and in this infinity of waiting no one comes in and no one goes out. Nothing happens.

Talking about his plays Samuel Beckett once quoted "one can banish from a play various elements, such as movement, or even dialogue, the element that remain constant and be retained in any text written for theatrical performance is, of course space. A play when enacted must take place somewhere. Its performance must occur in some real, visible space, on a stage or in an area fulfilling that purpose." (Issacharoff, 211)

In this paper, my attempt is to analyse the binaries of 'space' in Samuel Beckett's *Waiting for Godot* which is both exposed and open and occupy a real visible space of a stage and at the same time it becomes a space of exclusion and confinement.

When the play was staged for the first time in Paris on January 5th, 1953 as *En Attendant Godot*, it was received by audience with shock and angry boredom. C.W Heriot in his report to the lord Chamberlaine said that he had endured two hours of angry boredom, for a piece quiet without drama and with very little meaning.

Ironically the play which shocked and bored the sophisticated audience of Paris and Europe when selected after four years of its publication

to be staged among the fourteen hundred convicts of St Quentin Prison, California, was warmly received by the audience. The play was understood and was immensely praised by the convicts of the prison house. Martin Esslin, later commented that, the reception of *Waiting for Godot* at San Quentin and the wide acclaim given to the writings of other absurdist, "testify that these plays, which are so often superciliously dismissed as nonsense or mystification, have something to say and can be understood" (Esslin 21)

Anything is understood and may have an empathetic value, when it is in precinct of society and social space. Vladimir, Estragon, Lucky and Pozzo, the characters of the play do not occupy that space, they are the part of the society yet a lone outsider. The drift of this understanding and empathy was so wide apart for the elite audience because of this exclusion that they could not connect with the characters.

Vladimir and Estragon, the two tramps of the play seem to be confined to time, space and waiting. But is it self-imposed? Both, of them are waiting for Godot in some abandoned land, far away from the hustle-bustle of city life. As Pozzo mentions to both, "I am happy to have you met...yes, the road seems long when one journeys all alone for...yes, six hours, that's right, six hours on end, and never a soul in sight" (Pearson 16). What draws our attention is while both tramps are anticipating the arrival of Godot in an unknown isolated place, they are not acquainted with their guest, they can't recognize who Godot is or what is the purpose of their meeting? They can only hope that Mr Godot may take them out from the quagmire of their damned life. There is a constant fear that halos around them, whenever they assume that Godot or any man is approaching;

"They listen. ESTRAGON loses his balance, almost falls. He clutches the arms of VLADIMIR, who totters. They listen, huddled together."

Estragon: You gave me a fright

Vladimir: I thought it was he.

Estragon: Who?" (12).

Vladimir: Godot.

In Christianity, work is associated with the moral values. So, if one is an idle, he is a sinner and is liable for punishment or even imprisonment. In fact, the first moment of 'confinement' that led to the establishment of Hospital General in Paris in 1656 was to put an end to unemployment and begging. "From the beginning, the institution set itself the task of preventing "mendicancy and idleness as the source of all disorders" (Foucault 43)". Is it so, the tramps in *Waiting for Godot* are punished for? Is Estragon beaten every night for doing nothing? When Vladimir asks Estragon the reason for his beating he only says; "I don't know...I wasn't doing anything" (51) When Estragon begs from Pozzo, Vladimir reminds him that they are not beggars. Because that may bring even more suffering. The self-imposed confinement cannot be fearful.

The suffering for them is not just metaphysical but physical as well. Estragon has the stinking feet and Vladimir has the stinking breath. Former suffer from amnesia while the latter from urinary trouble. A desire to hang themselves circle both of them throughout the play. Estragon constantly asks "Why don't we hang ourselves?" (86) They find it difficult to think and act. They unanimously decide to move from the place but they can't move. Their actions are irrational. As John Broome mentions, "Rationality requires you not to have contradictory beliefs or intentions, not to intend something you believe you cannot do, to believe what obviously follows from something you believe, and so on" ()Hence, the world in which Estragon and Vladimir are lodging is no different from Alexander Barclay's ship of fools. Which has uncertainty of fate and where every-one is in the hands of their own destiny. Both Estragon and Vladimir becomes a prisoner in the midst of an open space, and the land to which they will eventually reach will be as unknown as the present one.

Pozzo and Lucky brings an equation of a colonizer and a colonized. But, it's not just the colonized but the colonizer is also bound. Pozzo is a hard task master in Act I who turns blind in Act II. Estragon compares Him with 'Humanity' crawling for help:

"Estragon: ...Abel! Abel!

Pozzo: Help!

... Estragon: Perhaps the other is called Cain. Cain! Cain!

Pozzo: Help!

Estragon: He's all humanity."

No doubt, in post-war era, the precept of humanity had suffered a massive shock as all the important pillars of faith; Religion, Science, Democracy had suffered a massive jolt. Absurdity and meaninglessness of life was all pervasive. T.S Eliot as rightly mentions, the condition of the modern man as 'Hollow Men', the condition of the spiritual death. The basic tenets of love, compassion, meaning or just being humane was lost. Just like Pozzo, who though turned blind whipped the man who served him selflessly for sixty years.

Lucky, is a bound slave to Pozzo. Hence, confined to slavery. He is a subject of utter humiliation and torture. He is leashed around his neck and carries the weight of Pozzo or Humanity at large. He is whipped when he dozes off. He sings, dance and thinks for Pozzo's entertainment. He has turned mute. He is a sufferer but can't speak. Through lucky it appears as if entire cosmos has turned mute to sense and meaning. And is only confined in its limited space of absurdity.

The bare tree, in Act I of the play gets four or five leaves in the next act. But does it show hope? Or the continuity of time? Time takes its pace but it brings no difference to their confined lives. Godot does not arrive. Vladimir and Estragon could not hang themselves like before. They decide but could not move.

It is no wonder, the play could not make an impact on its elite spectators. And made an immediate and profound impact on an audience of prisoners.

Penal history is not new, it dates back even to ancient Rome and Greece. The punishment used to be a public spectacle and was the part of public domain. Eighteenth century witnessed the establishment of prison houses not as a baby of law but as of norm. This new idea of surveillance was a part of a new economic power structure

like school, colleges or hospitals. Where the end was profit making. The prison created a private space for criminals that was not the part of the public domain. This confinement in prison veiled the real tortures and sufferings of the prisoners from the public eye. Hence, it may not be an overstatement to compare the private sufferings and tortures of the prisoners of St Quentin to allow them to understand the sufferings and angst of the characters of *Waiting for Godot*, they were successful in making that proximity of confinement which the sophisticated audience of Paris and Europe could not. A reporter from San Francisco Chronicle noted that the convicts of St Quentin did not find it difficult to understand the play. "One prisoner told him, 'Godot is society'. Said another: 'He's the outsider'. A teacher at the prison quoted as saying, 'They know what is meant by waiting...and they knew if Godot finally came, he would only be a disappointment.' (Esslin 20)"

Waiting for Godot is a play that makes an impact on heart and it would be unfair to compare this play with the standards of the other accepted form of drama. As Martin Esslin rightly says, "They can be judged only by the standards of the Theatre of the Artist" (Bloom 27). The play may not have an entertainment value but it has an emotive quotient. The play denotes an alternative reality, the new normal which was representative of the postmodern scenario. Vladimir and Estragon are the light bearers of the

community who are considered to be misfit to be the part of society. Their lives are utter disappointment but they do exist with the tide of times in anticipation of the arrival of their Godot. It's no wonder that the play was received with great applause at St Quentin's prison house because the proximity of confinement can be found at both the places.

References

1. Beckett, Samuel. *Waiting for Godot*. India: Pearson, 2004. Print.
2. Esslin, Martin. *The Theatre of the Absurd*. Indian edition: Methuen, 2001. Print.
3. Foucault, Michel. *Madness and Civilization*. Indian edition: Routledge Classics, 2016. Print.
4. Issacharoff, Michael. *Space and Reference in Drama*. *Poetics Today*, Vol 2, No 3, drama, Theatre, Performance: A semiotic perspective (spring 1981), pp 211 – 224. Duke University Press. URL: <https://www.jstor.org/stable/1772472>. Accessed: 18-04-2020.
5. Esslin, Martin (2008). *Introduction: The Absurdity of the Absurd; Bloom's Modern Critical Interpretations*. New Ed. Bloom's Literary criticism. New York. Print.
6. *Lord Chamberlain's Office*. *Lord Chamberlain's Plays: Beckett, Samuel Correspondence file for waiting for Godot (1954)*. British Library, 1954-55. Open Government Licence. URL: <https://www.bl.uk>. Accessed: 01-05-2020.

A Glimpse of *Paturs'* (Dancing Girls) Life- The Question of Their Identity: Recognized as a Dancer or as a Member of Royal Household of Jaipur State



shodhshree@gmail.com

Kavita Kumari

Research Scholar, IGNOU, New Delhi

Abstract

Patur was a prime and broad category of dancing girls of Rajasthan. In the Rajasthani household, there was a group of dancers and singers, who were generally called *patur/bhagtan/kanchanis*. *Paturs* connected music not only to general people but also to the royal household. *Paturs* appointed for the palace or royal household were called *Rajlok paturs*. They enjoyed the higher position among the *paturs* and were closest to the *darbar*. When any *patur*, received king's favour, they were upgraded in the hierarchy within the *Janani Dyodhi*. Thus, *Rajlok paturs* were often upgraded to *Khawas*, *Pardayat* and *Paswan*. In the Rajasthan State Archives, Bikaner, we are fortunate to get series of letters written by *Paturs* (*Khawas* and *Pardayat*) to their respective patron-king. In the present paper an attempt is being made to analyze the letters of *Sujan Rai Patur* and *Praveen Rai Khawas*. Letters of *Sujan Rai* and *Praveen Rai* highlight that they had intimate relations with the patron-king. However, there existed inner contradictions in their relationships. The present paper attempts to analyze and explore these inner contradiction and reasons behind them. The present paper is mainly based on *Janani Tahrir* (letters of *paturs*) belonged to the Jaipur State, preserved in the Rajasthan State Archives, Bikaner.

Keywords: *Paturs*, Hierarchy, Co-wives, Royal Household, Intimate Relation.

The broad category of dancers and singers of Rajasthan was known as *paturs*. To begin with at the entry level into Jaipur state, *paturs* appears to have entered as dancers. Our sources suggest three major categories of *paturs*. *Mardumshumari Rajmarwar* also discussed about these three categories of dancing girls as *paturs*, *bhagtan* and *kanchanis* in detail. Broad category of *paturs* belonged to the *Patur-Jagiri* community. The female dancers were categorized as *paturs* while male family members of *paturs* were generally addressed as '*jagiri*'. The community of *paturs* of Rajasthan was belonged to *Gehlot* clan of *Rajputs* of Chittor. A story was existing behind their origin as *paturs* community. When emperor of Delhi, Alauddin Khilji attacked on Chittor in 1303, the *Rajput* of *Gehlot* clan fled away from Chittor and some of them to save their life had taken the refuge at Ludarwa, the ancient capital of Jaisalmer. When they faced starvation, to earn their livelihood, they had no other option to earn their livelihood. As a result, a section of this clan had take up the profession of singing and dancing in public and the community of *paturs* was formed. The male members of this community used to be called as *Jagris* (beaters of small drums at dances and festivals) and female were *paturs* (dancing girls). They were Hindus and followers of *Shaktik* religion. The descendants of this community further migrated to other places in Rajasthan.

The profession of dance was exclusively followed by their daughters, who were generally called *paturs*.

The wives of *jagris* did not sing or dance. There, a ritualistic ceremony was performed before going to the profession of a *patur*. At a very young age, they were married to Lord Ganesha and became the '*Suhagan*'. According to *Murdumshumari Raj Marwar* (a census report of 19th century Marwar), after marrying with Lord Ganesha they were asked to live with a person who paid them handsomely. But this stay would be a short one and after making themselves free from that relation they got completely involved in the profession of *paturs*.

However, it is difficult to categorise groups comprising of within this broad category. Broadly, specially *Kanchanis* and *Bhagtan* were very much part of *paturs*. *Bhagtan*s were *Vaishnavites* and belonged to the *Sadh* community. While *Kanchanis* were Muslim. They were considered more professional and talented in their work.

The present paper discusses different aspects of *paturs*' life; were they lived only as dancers of Jaipur State or enjoyed special possessions within the patronage of king. This paper is mainly based on *Janani Tahrir* document; primarily letters of *paturs* written to their patron-king. These letters highlight the relation between *paturs* and patron king and help to understand their emotions. I also consult these primary sources: *Dastur Komvar* document, *Roznamcha Paturkhana* and *Murdumshumari Raj Marwar* (Census Report).

To begin with at the entry level into Jaipur state, *paturs* appears to have entered as dancers. During 1600-1800 centuries, the number of *paturs* in Jaipur state became so large that a separate department *Paturkhana* was built under the supervision of *Rajkothar*. A *daroga* was appointed for their supervision. All the expenses incurred on the *paturs* were entered into '*Paturkhana*' heads. The expenditure is recorded on monthly, yearly or daily basis along with the detail of the food stuffs given to them for their maintenance.

These *paturs* were given proper training of dancing, singing and music by the officially appointed musicians and dancers. Details of

these trainings were governed and entered into '*Gunjankhana*'. The record of all these activities of the *paturs*, *gayans* and other girls, including of their training and education, were also registered and maintained in the *Paturkhana* record itself. *Paturs* received a proper training of singing and dancing. They were also taught to read and write.

Paturs appointed for the palace or royal household were called *Rajlok paturs*, who enjoyed the higher position among the *paturs* and were closest to the *darbar*. When any *patur*, received king's favours, they were upgraded in the hierarchy within the *Janani Dyodhi*. Thus, *Rajlok paturs* were often upgraded to ***Khawas*** (who held lowest rank among the 'co-wives'), ***Pardayat*** (those were taken within the veil by the king) and ***Paswan*** ('close to' or 'intimate' with the ruler); who once got upgraded ceased to be associated with dancing and singing in the royal household. Those dancers and singers who still remained outside the 'veil' i.e. not received king's favor as co-wives continued to remain *patur* and formed lowest rank within the *Janani Dyodhi*.

Till now, Jaipur records do not throw ample light on the hierarchy of co-wives. Our sources highlight *Khawas* as lower within the hierarchy of co-wives. But who is higher within the hierarchy either *Paradayat* or *Paswan* is not clear. Neerat Rai belonged to the *Rajlok patur*, appears as a *Khawas patur* of Sawai Madho Singh. Patang Rai was also a *Rajlok patur*. She became the '*Khawas*' of Sawai Jai Singh. And again she appears as *Paswan* of Sawai Jai Singh. Analyzed sources do not present a hierarchical upgradation of co-wives within the *Janani Dyodhi*. Although, it is clear that *paturs* of Jaipur state enjoyed their status as *Khawas* or *Pardayat* or *Paswan*.

Hence, Priyanka Khanna in her study presents the hierarchical status of co-wives of royal household of *Marwar* as *Khawas* (lower in the rank of co-wives), *Pardayat* (who taken within the veil and next to the *Khawas*) and *Paswan* (who held higher rank among the co-wives). Ramya Sreenivasan has also exercised on co-

wives of *Rajput* household. She ranked them within the hierarchy of co-wives as *Khawas*, *Paswan* and *Pardayat*. She stated that *Pardayats* were permitted to wear the veil like their superiors; the *Rajput* queens. Hence, she placed them higher within the hierarchy of co-wives.

Khawas, *Pardayat* and *Paswan* were inducted into the royal household through a ritual into the status of 'co-wives'. They were not the wives for as per *Rajput* Tradition. A Raja could marry only from specific *Rajput* clans and then were also not exactly concubine for they at first were inducted into a particular status through a sort of 'marriage' ceremony (*chura* ceremony). So, they were inducted as 'symbolic' wives (i.e. 'co-wives') of the Raja. Thus, 'co-wives' were attached to the *Rajput* Raja in a lifelong relation. Thus, co-wives acquired ritualized status vis-à-vis the *Rajput* chief made their position a 'special' one. The ceremonial occasion where they were entrusted status of royal 'co-wives' became a royal tradition. It was marked as a festive occasion in which '*chura*' ceremony took place and the new 'co-wife' was provided with *chura* (ivory bangles). '*Chura*' was a symbol of '*suhag*' or married status of woman among *Rajputs*. *Rajlok patur*s, after receiving the rank of co-wives occupied a place of honor in the royal household. In any function of *Janani Dyodhi* they used to sit within their hierarchy among the ladies of royal household, which shows them very much part of royal household and indicated the special honor

Against this background, I want to study the letters of Praveen Rai and Sujan Rai. *Janani Tahrir* document contains the undated letters of *patur*s of Jaipur state. The language of letters is Rajasthani (Dungri). These letters are well preserved in Rajasthan State Archives, Bikaner. Letters are resources to identify the position of particular *patur* and to identify the relation with the king. It includes as much as 15 letters of Praveen Rai and 41 letters of Sujan Rai, written by them to their patron king. The huge collection of her letters is available in Basta No. 1, 2, 4/1 and 4/2.

We do not have much details about the early life of Sujan Rai expect that she was under the patron

of Jaipur's ruler Maharaja Bishan Singh.

Almost all letters of *Sujan Rai* start with the exhortation '*Siddhi Shri*', but a few have epithet '*Svasat Shri*'. To emphasize respect toward the king letters mostly addressing *Raja* with the title '*Shri Shri Shri Shri Shri Maharaja Ji*'. Letters often contains *doha*, *chaupai*, *rekhta*, *khyal*, *sortha* and *dhrupad* used as similies to express their feelings. All these were incorporated in the same manner as in the folktales. The love story of *Dhola Maru* is written in *dohas*'. *Sujan Rai* addressed king as '*Pranan ke Pyare*', '*Aankhin ke Taare*' and '*Mahboob*'. *Sujanrai* also addressed king as '*Chitchor*'. It seems that she wrote letters as one of the lover of king. In a letter she started letter with these words – '*Sidhi shree dori dori gal laave rijh rijh man hi bathave*'. Style of letter writing to addressing the king reflects the close attachment with king. *Sujan Rai* also suggestive of close affinity she probably share with the *Raja*, while she often addressed herself as slave (*bandi*) and worth of dust of king's feet (*payan ki raj*). Letters are often addressed as that of the beloved addressing her lover. Letters are full of longings to meet (*darshan*) the *Raja*.

She questioned in letter '*Bandi ki chook kaayi aap aavat hi mukh dhapi podhi raho kyo bolo na chalo kyo baat na kaho chook kayi aap furmaave Sahab chup to bhali nahi*'. Again she questioned to king '*Sahab sath kya ke vaste liya phire hai kyo baat kahe nahi hase nahi Janana mein pichli rat kabhu padhro to aankh meech mukh dhapi podhi rahyo kon chuk mote pari*'. It shows her special position and affectionate bonding with king. It appears that she was closest to the king and king used to meet her at women quarters (*Janani Dyodhi*).

These letters are undated. So, it is difficult to conclude her status when would she wrote letters to king. Letters of *Sujan Rai* reflect the intimate relationship between *Sujan Rai* and king. Possibly she would be co-wife of king.

Praveen Rai was inducted as *patur* during the reign of *Sawai Jai Singh*. Later, after receiving king's favor she was upgraded in the hierarchy as a *Khawas* (co-wife) of *Sawai Madho Singh*. Praveen Rai, in her letters to king, used many analogies. All letters of Praveen Rai start from

'Siddi Shri'. She addressed king as her beloved (*Pran Pyare*). She tried to express her feelings through *dohas, rekhtas and ragas*. In a letter she accepted that she did not know reading and writing. Her all letters are not in same handwriting. It means that she used to take help of others for letter writing.

In a letter she was apologized for a mistake in these words- "*mujh garbi ki chuk maf hoye ab piche aisi chuk bar digar kabhu nahi karogi*. And in another letter expresses her emotion about king that she was occupied only for king. She wrote "*mere to aap hi hai shree Maharaja ji Salamati main to aap ke palla se lagi hai*". In one of her letter, she described the tension and quarrel amongst women.

But inner contradiction is that the status of co-wives was not equal to queens of the kings (legally wedded wives). In the *Janani Dyodhi*, the system of hierarchy was followed among the ladies of royal household. Each lady of the household was granted expenditure and amenities exactly in tune with their hierarchy. *Patarani* was granted the *jagir* of around 1 lakh and 25 thousand. Other queens were granted the *jagir* of Rs. 25 thousand for each queen and of Rs. 7 thousand for *Paswan*. *Pardayat* and *Lalji* (epithet for children of co-wives) each were granted *jagir* of Rs. 5000.

Even when they could meet, it was not their decision. It was Raja's decision. Letters are full of longings to meet (*darshan*) the *Raja*. In this letter she requested to king '*Apni jaan mohi darsan debo keeje*. And wrote in *Chopai* '*Jeevan janam sufal kari liyo, apni jaan mohi darsan diyo*.' With the help of similes she tried to show her desire for the glimpse (*darshan*) of king. Tone of letter writing is not like a formal letter. It has contained personal feelings. *Sujanrai* was requesting to king to come to her. Indirectly she was complaining also that king did not come to her for a long period. She wrote '*Aap uha hi baithe rahe kabhu iha ko bhi aavan hoyego*. *Sujanrai* wrote many letters to king for many purposes. But here, a common purpose of *pateurs* to write letters was seeking the attention of king by saying '*oo din kaiso hoyego apka charan dekhogi*'.

Sujanrai was also waiting for the day, when king would come and she would get the glimpse of king.

Letters of Praveen Rai and Sujan Rai is a fascinating blend of their experiences in the polygamous *Rajput* household. The letters express their intimate bonding with king in the form of complaints, appeals and desires for a union with the partner (king).

To conclude, our data clearly attribute that though *pateurs* were inducted as a dancer, but some *pateurs* if they had talent and physical charm found ample opportunities to jump in the scale of their services. On getting king's favor some got the status of *khawas, pardayat* and *paswan* as co-wives. Though their status was not equal to the queens, but they achieved the intimate bonding with their patron-king and they were very much part of the *Janani Dyodhi*.

References

1. Singh, Hardayal. 1891. *Mardumshumari Rajmarwar*. Jodhpur: Prachaya Vidya Pratishthan. p.379-380.
2. Singh, Munshi Hardayal, *Castes of Marwar: Census Data of 1891, Book Treasure*, Jodhpur, 2009 (reprint). pp.139-140.
3. Singh, Hardayal. 1891. *Mardumshumari Rajmarwar*. Jodhpur: Prachaya Vidya Pratishthan. p.379-380.
4. *Ibid*.
5. Arora, Shashi. 1979. *Rajasthan Mein Naari Ki Sthiti (1600-1800 isvi)*. Jaipur: Rawat Publication. p.68.
6. *Ibid*. p.68.
7. *Ibid*. p.69.
8. Arora, Shashi. 2004. *Dancing Girls In The 18th Century Rajasthan, Proceedings Of Indian History Congress: 65th Sessio*. pp. 324-330.
9. Yadav, Santosh. 1987. *19vi aur 20vi Shatabdi mein Striyon ki Sthiti*. Jaipur: Privel Publishers. p.13 and 98.
10. Khanna Priyanka. 2017. *The Female Companion In A World Of Men: Friendship And Concubinage In Late Eighteenth-Century Marwar*. *Studies In History*, 33, No. 1. p.98-116.
11. *Ibid*.
12. *Ibid*.
13. *Rajlok patur, VS 1817/1760 CE*. p. 973.

14. *Dastur Komvar (Rajlok Patur)*. V.S. 1774/ C.E.1717, p.977.
15. *Dastur Komvar (Rajlok Khawas)*. V.S. 1781/C.E. 1724 C.E. p.745.
16. *Roznamcha Paturkhana, Basta No. 1*. VS 1784/1727, Miti Fagun Sudi 14 and 15. Tuesday, f.3b.
17. Khanna, Priyanka. 2017. *The Female Companion In A World Of Men: Friendship And Concubinage In Late Eighteenth-Century Marwar*. *Studies In History*, 33, No. 1. p.98-116.
18. Sreenivasan, Ramya. "Drudges, Dancing Girls, Concubines" in Chatterjee Indrani and Eaton, Richard M. (ed.) *Slavery and South Asian History*. 2006. Indiana: Indiana University Press. p.143&144.
19. Khanna, Priyanka. 2011. "Embodying Royal Concubinage: Some Aspects Of Concubinage In Royal Rajput Household Of Marwar, (Western Rajasthan) C. 16th - 18th Centuries." *Indian History Congress. 72nd Session*. p.337-345.
20. *Ibid*.
21. *Descriptive List of the Arzdashtas Addressed to the Rulers of Jaipur (Rajasthani)*. 1992. Second Edition, Rajasthan State Archives, Bikaner. p.48.
22. *Janani Tahrir. Basta No. 4/2*, pp. 265, 275 and 284.
23. *Doha means couplet, which contains two stanzas of a lyrical verse-format*.
24. *Chaupai is a quatrain verse which contains 15 'matras' in each stanza and cretic at the end*. (Lalas, Sitaram, *Rajasthani Shabd Kosh*, Vol.-3, *Chaupasani Shiksha Samiti*, Jodhpur, 2013, p. 1318).
25. *Rekhta means "scattered", but also "mixed". It is a mixed form of urdu. /Rakhta is a type of a creation of a poem or verse, prevalent by Khusro. It includes the combination of many things of the Persian and Indian 'Chhand Shastras' like 'taan' and 'laiy'*. (Lalas, Sitaram, Vol. 7, op. cit, p. 5330).
26. *Khyal is a traditional type of song form which contains a firm clause and 'antara'. Mostly it describes the 'Shringaar Ras'*. (Lalas, Sitaram, Vol. 2, op. cit, p. 890).
27. *Sortha is the metaphor of verses and it contains 11 'matras' in each first and third clause, and 13 'matras' in fourth clause*. (Lalas, Sitaram, Vol. 10, op. cit, p. 7173).
28. *Dhrupad is a mode of classical music, generally in praise of God or gods*. (Angeji Hindi Shabd Kosh, Vol.-1, Rajpal and Sons, Delhi, 2006, p. 895).
29. Rathore, Vikram Singh. 1995. *Rajasthan ki Sanskriti mein Naari: Marwar ke Vishesh Sandarbh mein*, Jodhpur: Rajasthani Granthagar.
30. *Janani Tahrir. Basta No. 4/1*. p. 162.
31. *Ibid*. p. 168.
32. *Ibid*.
33. *Dastur Komvar (Rajlok Patur)*. VS 1774/1717 CE. p. 980-982.
34. *Dastur Komvar (Rajlok Khawas)*. VS 1807/1750 CE. p.739.
35. *Janani Tahrir. Basta No. 2*. p. 394.
36. *Ibid*. p. 398.
37. *Ibid*. p. 394.
38. *Ibid*. p. 423.
39. *Ibid*. p. 411.
40. Parik, Nandkishore. 1984. *Rajdarbar Aur Ranivas*, Jaipur: Rotari Printers. p.107.
41. *Janani Tahrir. Basta No. 4/1*. p. 174.
42. *Ibid*. Basta No. 4/2. p. 282.

Reading of Spaces in the play *The Lover* by Harold Pinter

Puja Kumari

Research Scholar, Patna University, Patna (Bihar)



shodhshree@gmail.com

Abstract

*The term 'space' refers to the empty area between the two sides. It can be relegated to the enclosed area of two ideologies, both in an overt and covert manner. It seems to be both a site of intrusion as well as the invisible line of demarcation. Human beings tend to protect and try to claim authority over it. Space has a significant role to play in the plays of Harold Pinter. In his Television Play *The Lover* (1962), Pinter traces forth the several categories of mental and physical spaces. Yet there is a point where these two spaces merge together. My attempt in this paper is to read the spaces and their transgression in the play. Through the reading, it will further unfurl the urgency of creating the alternative space within the dominant space and the implications thereafter. *The Lover* shows the blend of the ritualistic routine of domestic life and the sexual yearning of a couple which leads to the creation of other roles. The play both questions the set institution of marriage as well as celebrates the space of love and lust created by the couple as their alternative space. This space is further lived, struggled, and consistently debated upon by the couple.*

Key words: *Space, Transgression, Urgency, Institution, Routine, Couple.*

Not so many years ago, the word 'space' had a strictly geometrical meaning: the idea it evoked was simply that of an empty area (Lefebvre 1). However space in due course of time, has shifted to several other dimensions. Ranging from geographical, personal, to psychological domain, space befits its position between two extremes. Besides as a product of violence and war, it is political; instituted by a state, it is institutional. (Lefebvre,285). It is this created space which assigns further the identity as well as the conformity to a set of instructions. The creation of the space takes into account the hard and continuous collectives for a unified structure.

Among the younger generation of playwrights who followed in the footsteps of the pioneers of the Theatre of the Absurd, Harold Pinter, twenty four years younger than Beckett, has achieved the status of a major force in the contemporary theatre. (Esslin,23). Pinter talks about space as a site of intrusion, a site which seems equally vulnerable as well as the breeding ground for the creation of another space. The understanding of space as a construct as well a site of multiple infinitives and uncertainties makes his play, *The Lover* an interesting read. The play not only plays on the several geographical spaces in and outside the room, rather it also makes a note of conscious cerebral exercise of the characters tossing between the physical and mental space.

The Lover is a 1962 one act play by Harold Pinter, originally written for television, but subsequently performed on stage (Billington ,Theatre review) talks about the bored monotonous routine life of a couple, who in order to break this monotony, fills their life with romantic interludes. Richard and Sarah, use domestic props for their erotic use. Being married for ten years they created this space of intersection where their desires could be fulfilled.

The play begins with the ritual of Richard leaving for work every day as a respectable businessman. He agrees not to return before six, in order to create space for Sarah, who can enjoy her lunch with her lover, named Max. On the other hand, Richard visits a prostitute during his office hour. The contract or the boundary which they have created for each other is followed ritualistically. The image of being lovers for each other in the afternoon encompasses the shift from a solicitous protector to a rapacious seducer. In other words, it can also be seen as the shift from being a wife to a whore of sexual pleasure. It is deliberately evident in the opening conversations between them.

Richard (amiably): Is your lover coming today?

Sarah : Mmm..

Richard : At What time?

Sarah : Three.

Richard: Will you be going out....or staying in?

Sarah: Oh I think we'll stay in.

Richard: I thought you wanted to go to that exhibition.

Sarah: I did, yes ...but I think I'd prefer to stay in with him today.

Richard : Mmm...hmmm..Well, I must be off... (161)

Thus, the very opening scene reflects the mutual consent which further gives birth to this alternative space. They are living with the self created space of extra marital affair in a routine way. It contrasts the bourgeois domesticity with the sexual yearning of the couple.

To affect similitude in a real life situation, Sarah in conformity with conventional mode of dressing of a respectable middle class background wears a crisp, demure dress and while leaving for the office Richard is seen wearing formal suit, formal shoes and carrying a brief case. However, in the afternoon for the 'sexcapades' Sarah wears a tight suit, high-heeled shoes whereas Richard as a lover wears a uniform of the middle management i.e. a black suit and a tie with white shirt. But the shift from a conventional image to an erotic one requires the

donning of a leather jacket by Richard and the tight black dress with four-inch heeled shoes by Sarah. Besides it is observed that there is a subtle shift also in language and actions according to the newly created space in the assumption of the new roles of both the characters. The conversation as a spouse has a formal beginning and closure; however the same couple lands up engaging in an erotic and at times nonsensical conversation when they play the role of the lovers. . Thus both the new attire and the conscious language reflect on the struggle to create this alternative space as well as the urge to authenticate the alternative space, which however seems a mockery on the prior prevalent space.

In the course of exploring further physical space, they move out of the house to the Park keeper's hut, an imagined geographical space where they again play the role of the lovers. Here, Max pretends to be the owner of the park-keeper's hut. This leads to the occupation of one imaginary space within another imaginary space. The assumption of this new role of a stranger within the role of Max is executed seamlessly as the stranger (who is morphed into the role of the park-keeper) tries to reassure Sarah of his protection when he ostensibly helps her to get rid of Max (who seemed to have made unwanted sexual advances towards her). The changing spaces define the identity at a given moment of time even as they in their turn are defined by new identities. The Derridean instability of movement from one form of space as a signifier to another reflects a chain of spaces of the imagination of the lovers yearning to relive and enjoy the space of a desire which finds expression in the following exchange.

Sarah: Do you think we should? I mean, what about the park - keeper?

Max: I am the park - keeper.

They sit on the chaise longue.

Sarah : I never imagined I could meet anyone so kind.

MAX: To treat, a lovely young, woman, like you like that, it's unpardonable.

Sarah: (gazing at him). You seem so mature, so ...appreciative.

Max: Of course.

Sarah : So gentle. So ...Perhaps it was all for the best.

Max: What do you mean?

Sarah : So that we could meet. So that we could meet. You and I.

Her fingers trace his thigh. He stares at them, lifts them off.

Max: I don't quite follow you.

Sarah: Don't you?

Her fingers trace his thigh. He stares at them, lifts them, off.(178)

This exploration of the space outside the house helps to understand the mental space of the couple which seems to ponder over the lack in their married life. Their conversations are reflective of the fact that they seem to move in and out of the different spaces moving to and fro between the two extremes represented by the conflict between the institution of marriage and the desire for illicit pleasure outside the marriage.

On the other hand, the different areas of sitting; be it the dining space and the velvet center table or the cupboard used are being exploited by the lovers to reflect their acquisition of several other spaces. It is evident through these lines...

Sarah: What are you doing?

Richard : Is that what you do?

She jerks away to behind the table,

He moves towards her, tapping.

Like that?

Pause

What fun.

He scratches the drum sharply and then places it on the chair.

Got a light?

Pause.

Got a light?

She retreats towards the table, eventually ending behind it.

Come on, don't be a spoilt sport . Your husband won't mind, if you give me a light. You look a little pale.

Why are you so pale? A lovely girl like you.

Sarah: Don't don't say that!

Richard : You are trapped. We are alone. I've locked up.

Richard: You are trapped. We're alone. I've locked up.

Sarah : You mustn't do this, you mustn't do it, you mustn't!

He won't mind. (194)

Through this subtle deviation to the prior identity, they seem to make a transgression and then again recoiling back. This creation of this alternative space within the bigger circle, is a conscious choice on their part to follow their routine ritualistically. It is through these explorations of the physical spaces, the couple seems to extend the manifestation of their expectations. Apart from these physical spaces, their bodies seem to be a site of space to which they want to assert their identity, as well as dominance. It is reflected through their vocabulary and sexual activities. However, on the part of Richard, it is observed that he seems to fail at maintaining any kind of emotional attachment with Sarah. On the other hand, Sarah seems to be assertive and vocal and most of the times confirms to the new space and happily tries her best to strike a balance. Richard however reveals his liability to his wife that whatever he has done, he needs to seek her approval. As a result, there seems a conflict going on between them, most of the times.

Pinter's play, *The Lover* is not only the site of exploration of the physical spaces rather it also maps out the mental space of the two characters. They seem to move through several binaries via this mechanism of creating an alternative space. The play seems to be a comment on casual sex v/s romantic life, which is beautifully carried forth again by the two distinct identities (of an enchantress and a coy victim) of the same lady. The play thus seems to be a critique of the predetermined notion of the binary of casual sex

v/s romantic life, which is represented by the different aspects of the two distinct identities of an enchantress and a coy victim as the lady's alter-egos. This absurdity can also be seen as the outcome of the need for changes (a pleasure in contrast to the monotonous life) as well as to prioritize instinct over institution. This position prompts the characters to transgress through other spaces of time periods (i.e. afternoon v/s evening). The crisis implied in the text is reflected through their conversation as they seem to participate in the role plays by keeping their marriage at the centre.

Richard: Did your lover come?

Sarah: Oh yes. He came.

Richard: In good shape?

Sarah: I have a headache actually.

Richard: Wasn't he in good shape?

pause

Sarah: We all have our off days.

Richard: He too? I thought the whole point of being a lover is that one didn't. I mean if I, for instance, were called upon to fulfill the function of a lover and felt disposed, shall we say to accept the job, well, I 'd soon give it up as be found incapable of executing its proper and consistent obligation.

Sarah: You do use long words. (186)

Thus the above conversations embrace the crisis of the role play as well as reflect on the implication of the transgression of the space. They seem to be equally aware and equally pretentious of the fact that they are married. The intentional avoidable queries of Richard seems to add absurdity to the practice (the role plays related to the alternative space) protect (the alternative space) and pamper (the cuddled life of being lovers for each others) the alternative space.

It is in the end, that these two spaces merge together. However this reconciliation instead of providing a satisfying closure leaves behind the vulnerable exposure of the personal space. The conscious attempt of celebrating the space within the Meta narrative of marriage, it however leads to the conflict between the

couple. The situation echoes with the idea of Henri Lefebvre who believes that "The true space of pleasure, which would be an appropriated space par excellence, does not yet exist. Even if a few instances in the past suggest that this goal is in principle attainable, the results to date fall far short of human desires". (Lefebvre 167)

Thus to conclude it can be said that, it is this heightened image of this pretense which led Richard to call it off and put an abrupt closure which is being resisted by Sarah. This creation of the alternative space within the dominant institution of marriage can be seen as both the revolt against the site of civilization as well as to manifest the idea that it is this desire of being loved more, leading forth to the creation of this new space. Thus a transgression is being observed. At the same time, the continuous efforts to protect it and lastly the late realization of coming out of this conflict between the two closure, and bringing a closure to the role plays, brings them back to idea of confirming to an institution. This exploration of several spaces has not only led to the revelation of several layers of their psyche rather have also exposed their vulnerabilities. Mapping out the psychological domains of the couple to the explorations of the physical spaces has led to the complete understanding of their aspirations and a constant struggle to make a balance in their lives. However, Pinter's concluding point is the triumph of female sanity over male guilt. Pinter's Sarah stoops to conquer and recues Richard from his middle class angst and nervous crisis; by the end, a perfect accommodation has been reached in which the fantasy life of the afternoons invades the respectable bourgeoisie existence of the evenings. (Billington, 145)

References

1. Billington, Michael (30 January 2008). "Theatre review: *The Lover/The Collection / Comedy Theatre, London*".
2. Esslin, Martin. *The Theatre of the Absurd*. Indian edition: Methuen, 2001. Print.
3. Billington, Michael, *Harold Pinter*, Faber and Faber Limited (1996)
4. Lefebvre, Henri. *The Production of Space*, P (1974)
5. Pinter, Harold, *Plays Two*, Methun London (1977)

An Analysis of National Pension Scheme 2004 – A Study of Some Selected Enterprises in Rajasthan with special reference to Kota District

Dr. Ankur Jain

Kota



shodhshree@gmail.com

Abstract

Government has introduced a new pension scheme called National Pension Scheme w.e.f 01.01.2004. All employees who are recruited on or after 01.01.2004 into Central or State Government services will be under this scheme. With respect to Rajasthan, State Government has also implemented NPS for its employees who are recruited on or after 01.01.2004 by issuing a memorandum on 28.01.2004 and abolished Rajasthan Civil Services Pension Rules, 1996. The motive of this research is to understand that how this change would benefit Employer and Employee? What are their reactions towards New Pension Scheme rules and policies? Government statutory decisions are successful or a complete failure? The objective of this paper is to explore implementation and adoption of NPS 2004 in some selected Enterprises of Rajasthan especially in and around the Kota district. This research paper highlights how effectively NPS is introduced into these organisations. The paper also compare NPS 2004 with other Pension Schemes available in the market.

Keywords: *National Pension Scheme, Rajasthan Government, PFRDA, Employees, Permanent Retirement Account Number.*

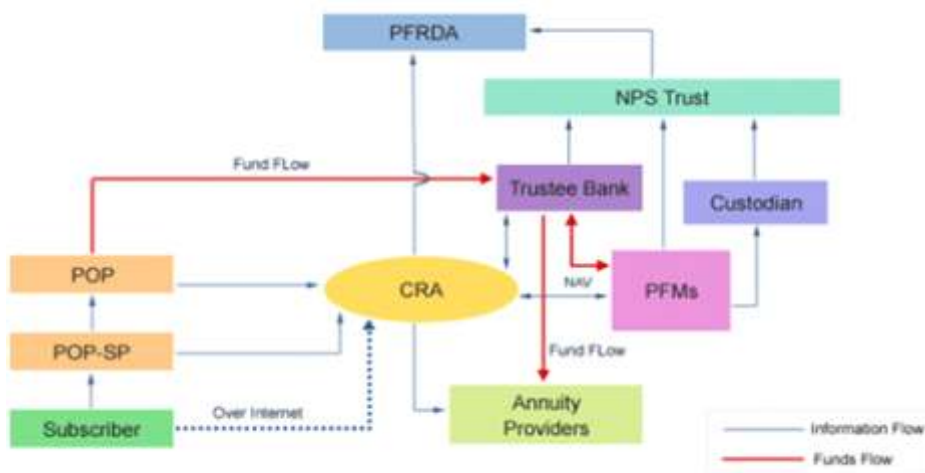
National Pension System (NPS) was introduced by the Government of India on 1st January 2004 through a notification dated 22nd December 2003, for new recruitments in Government service, except to Armed Forces. The Indian Government had constituted an interim regulator, the Pension Fund Regulatory and Development Authority (PFRDA) through a Government Resolution in October 2003 as a precursor to a statutory regulator. NPS has also been extended to new segments (State Government, Autonomous Bodies and Un-Organized sector). NPS has been adopted emphatically by the State Governments. As on 1st May 2009, PFRDA rolled out NPS architecture for all citizens of India on a voluntary basis. After received approval from Indian Government, NPS is extended to all citizens of the country including unorganized sector workers. The information about NPS is available on the PFRDA's website, <http://www.pfrda.org.in>. In order to expand the reach of NPS countrywide, PFRDA invited Department of Posts to join NPS as a Point of Presence (POP). The National Securities Depository Limited (NSDL) has been nominated as the Central Recordkeeping and Accounting Agency (CRA) by PFRDA and has been into operation since.

New Pension Scheme have been made in applicable on Rajasthan State Government servants appointed in civil services of the state on or after 1.1.2004. This system is mandatory for new recruits to the State Government service except the armed forces. Government of Rajasthan has also introduced NPS for Panchayat Samities/ Zila Parishad/ State autonomous bodies. The monthly contribution is 10 percent of the Basic Pay plus DA which is to be paid by employee and 14 percent (sum of employee salary) contribution by the State Government. (as per amendment in 2019)

Unique & Non-Changeable Permanent Retirement Account Number (PRAN) is issued to all Rajasthan Government servants on whom NPS is applicable. New Pension System is consisted of two type of accounts; Tier-I non-withdrawable pension account and Tier-II withdrawable savings account.

Currently, Tier-I non-withdrawable pension account has been made statutory for government subscribers and Tier-II is optional to choose.

Fig. 1: NPS - Corporate Sector Model



Subscribers can normally exit at age of 60 years (or after attaining age of 70 years, as per amendment in 2019) from the pension system. At the time of retirement the total amount deposited in subscribers NPS account is called Corpus. At exit, individual is required to invest 40 per cent of corpus to purchase annuity. Investment in annuity provides pension for lifetime to the subscriber. The individual would receive 60 per cent of corpus, which subscriber is free to utilize in any manner. Individuals have flexibility to leave the pension system prior to age 60.

Objectives of Research Paper

The prime objective of the present research has been to record the perception of employees towards NPS. Their apprehension and view towards adoption of NPS by Indian Government. How successfully the New Pension Scheme has been implemented in Government Organizations. NPSs comparison with other

pension plans available in market. And lastly, suggestions for improvement into NPS.

Through extensive research and findings through personal discussion with subscribers gave an insight of the impact that the NPS had on the employees. Overall analysis shows that NPS is successfully implemented in Central and State government owned enterprises but that the implementation of new pension scheme has adversely affect the morale and motivation of the employees of Government enterprises who were recruited in or after 2004. And after personal discussion with the employees of various organizations, the respondents were not 100 per cent assure about their future security in NPS and neither ready to accept promises made under it. Most of the respondents think that investment in equities is risky; and they have given less rating to NPS as comparison with old pension scheme. The respondents are neither fully satisfied with policies nor with its options

after retirement. The researcher and respondents feel that minimum amount of pension must be guaranteed by the government. They were encouraged to join government service and committed to the national change; but the fact is that majority of the respondents did not favour deduction of amount from their monthly salary towards nps contribution. They feel that contribution from their monthly salaries should not be done and withdrawal terms should also be made liberal. The variable interest rates seems dissatisfaction among employees.

Suggestions

For NPS Subscribers

NPS subscribers have to improve their financial literacy especially Share market schemes and about their different asset class of investment for reducing their investment risk. The subscribers should keep a regular update on the performance of their pension fund managers by analysing the detailed statement on monthly basis and their accumulated value upto and decisions taken by PFMs.

For Central/ State Government

Interest received on total corpus in NPS is taxable. As per norms 60 per cent of total corpus is handed over to subscriber without imposing tax and rest 40 per cent amount is re-invested in annuities. Pension received out of investment in annuities is treated as income and is taxed appropriately. The study suggests it should not be taxable, as it will lead to increase the pension amount. Appropriate government, employer(s) may put in seminar/conferences for their employees regarding investment pattern in National Pension System on periodically basis to increase their financial literacy.

For Regulating Bodies / Policy Makers

Pension benefits to nominees after death of subscriber like in old pension scheme may be introduced in NPS. Pre-mature Withdrawal facility without any boundations in Tier I account of NPS may be given. In the current

scenario, fixed monthly pension into NPS after age of 60 depends on the interest received on re-investment of 40 per cent of final corpus in equities. The regulating bodies of NPS should fix some monthly pension amount after retirement. It is suggested to decide fixed monthly pension amount slab, by fixing some percentage on basis of total accumulated final corpus at the time of exit.

The NPS regulating bodies should fix a monthly pension amount to employee on the basis of last Grade pay from which he or she is retiring. The better the grade pay; the more will be fixed monthly pension and vice-versa.

The inferences of last two points discussed may be summarized and read as; the final pension amount which a subscriber would receive after retirement would be Sum of monthly return received i.e. interest on forty per cent corpus reinvested in equities, plus fixed monthly amount on the basis of some percentage of total corpus accumulated, plus fixed monthly amount on the basis of last grade pay.

Further it is suggested to regulating bodies by researcher is that annual interest should be paid into NPS for the last financial year. The practice is currently been exercised into EPFO. This will benefit subscribers as it would be added to their accumulated corpus and hence increase their annual corpus amount. This would be long term pecuniary benefit for subscribers.

A sincere application of these suggestions would help to enhance the chances of more liking of NPS by people. Investment habit of subscribers would improve. They will concentrate more on accumulation and long term deposits rather than on small term savings. This would refrain them from withdrawal of amount for not so much immediate needs. The emergency needs are exceptional.

Conclusion

After a prolonged tenure of service, employees get retire. After their retirement, they have to face many challenges to continue their

livelihood. This depends on several factors. And one of the supreme factor is Social Security. The social security is mainly measured on the economic scale. The employee needs to have regular income source to fulfil their end to end domestic requirements, not only for themselves but also for their family members.

The constitution of India has recognized the pension system as one of the significant social security measure for the retired employees and it has been given the fundamental right to employee. The findings and suggestions of this research have significant bearing for both employees and employers of Central Level Enterprises and State Level Enterprises.

The present study provides a good explanation of variation in engagement of employees on basis of their age, position, grade in organization, educational qualification and their length of service. The study depicts that majority of the respondents opine that 100 per cent social security is not promised under NPS. There are several weak points in the NPS scheme. To cite an example, investment in stock market has a huge carriage and has created apprehension among the employees.

Most of the respondents think that investment in equities is risky. Their whole life accumulated money may drown. Their must be minimum amount of pension guaranteed by the government. Although, the present research depicts that the employees are aware of the fundamental aspects of NPS but are very low in awareness about its implementation before joining. Respondents stated that they have joined NPS because it is statutory and they are not satisfied with it. Almost all of the respondents' choice is not NPS and are willing to

join in the old pension scheme. Therefore, more awareness has to be spread among the new joiners relating to NPS.

In comparison of NPS with old pension scheme; Uncertainty about the total amount that will receive as monthly pension after retirement in NPS whereas a fixed formula is defined within old pension scheme. This factor contributes most, in feeling of insecurity among employees while joining the NPS. Across the data, it is revealed that not a single respondent has given his esteem in favour of NPS over Old pension scheme.

NPS architecture and its implementation is new to the system and government employees are not adept with it. Therefore no significant examples of retired employees were found under NPS.

References

1. *Ranade, G. (2001) Indian Pension System: Problem and Prognosis. Indian Institute of Management, Bangluru.*
2. *Surendra, D. (2006) Indian Pension Reform: A case study in complex Institutional Change. CMIE, Bombay.*
3. *Kothari, C.R (2010). Research Methodology Methods and techniques, New Age International Publishers.*
4. *Eronimus, A. (2015). A Study on National Pension Scheme (NPS) in India with Special Reference to Pension Subscribers in Tamil Nadu.*
5. *Pahwa, A. (2015). A study of Fund Management in 5 Non-Government Organizations (NGOs) and 5 Self Help Groups (SHGs) & their Role in the Up-Liftment of Down Troddens (In Reference to Indore District)*
6. *Sayeed, S. (2016). An Analysis of Post-Merger Effect on Employee Engagement in Select Banks in India: A Casualty Analysis*



Dr. Saroj Harit

Associate Professor, Government Lohia College, Churu

Abstract

A Part From Social Context Unethical Society And Social Set Up Leads To Anarchic Or Undemocratic From Of Polity Also. Of We See In Indian Context Ethics Was The Basis Of Indian Political System. The Long And Splendidly. Struggle For Independence Was Based On Moral And Ethical Value. Mahatma Gandhi The Father Of Our Nation Had Devoted His White Life To Arm The Politics With The Ethical Tools Of Nonviolence, Selflessness, Honesty, Truth, And Integrity. But This Gandhi Model Of Politics Is Nowhere Seen In Political Context. The Polluted Politics, Ideology Crisis, Hatred Alstead Of Harmony On The Name Of Most Sacred Word God And Religion Corruption, Terrorism Are The Burning Issues Which Have Their Solution In The Ethical And Spiritual Concept Of Polity. We Ought To Think In Terms Of Drawing On Our Priceless Spiritual And Cultural Heritage To Prevent Further Decay, Otherwise. Our Political And Social Set-Up Will Continue To Be A Drift In The Sea Of Amorism.

Keyword : *Ethics, Society, Morality, Values, Peace, Harmony, Spiritual.*

The Modern Age Is An Age Of Transition And Astonishing Contracts. Man Today Has Reached Heights Of Civilization And Culture That He Never Reached Before In The History Of Human Civilization. But Modern Conditions Of Life Also Warrant That The Study Of Ethics As Most Important Subject. Scientific Progress, Almost Unlimited Power To Control The Nature, Excessive Materialistic Way Of Living Has Deprived Man Of His Spiritual And Ethical Development. Love, Affection, Peace, Harmony, Compassion Are The Ultimate And Eternal Goals Of Social Life, Which Could Only Be Attained Through Morality And Ethical Values In The Society.

Objects of Research

- To know the meaning and definition of ethics.
- To know the relation between ethics and social science.
- To know the ill effects of unethical.

Ethics As a Word Is Defined By The Concise Oxford Dictionary As "The Science Of Morals In Human Conduct. Moral Philosophy, Moral Principles, Rules Of Conduct", The Utility Of Ethics Rests On The Fact That It Requires One To Reason, To Analysis, And To Search For Morally Correct Position While Taking A Decision. Chester Bernard Has Described Moral Behavior As "Governed By Beliefs On Feelings Of What Is Right Or Wrong Regardless Of Self Interest Or Immediate Consequences Of A Decision To Do Or Not To Do Specific Things Under Particular Conditions".

Ethics In Its Literal Sense Means What Is Merely Correct. 'Good', Moral, Right, Virtuous. All Synonyms Of 'Ethics'. Logic, Ethics, And Aesthetics, With Their Ideals Of Truth, Goodness, And Beauty Of 'Satyam, Shivam And Sundram' Are Like Prerogative Of Man And Mark Him Off From The Lower Animals - Who

Are Ignorant Of These Ideas. Thus, The Superiority Of Man Over Animal Lies In Living On A Higher Plane, Where He Apprehends Truth, Realizes Truth And Creates Beauty Or Harmony.

Mahatma Gandhi In Indian Context Called It Dharma. Thus Ethics In Public Life Is Important To Understand Or Place In Society And Duties We Owe To Society By Virtue Of What Society Gives Us. Thus We Can Say Various Scholars Have Defined Essentials Of The Ethics In Different Ways.

In The Sanskrit Scriptures Also Word Dharma Was Used For Moral Values. This Word Dharma Was Derived From 'Driyan' Dhatu. It Was Said "धारणाद् धर्ममित्याह धर्मो धारयति प्रजाः"

Henry Sidgwick In His Book Gave The Definition Of Word Ethics As "The Science Or Study Of What Ought To Be, So Far As This Depends Upon The Voluntary Action Of Individuals. It Imparts Or Seeks The Most Perfect Knowledge Possible Of The Rightness Or Goodness Of Voluntary Actions".

This Definition Gives Stress On Two Aspects Of The Ethics I.E (1) Practical Morality Or The Development Of Specific Moral Codes. (2) Theoretical Ethics This Is The Analysis And Interpretation Of Basic Concepts. Taking Into Consideration The Overt Or The Indian View Of Philosophy It Could Be Said That 'Ethics Is The Study Of Human Behavior, Which Propounds The Supreme Good Or The 'Sumnum Bonum' Of Human Life And Which Formulates The Judgments Of Right Wrong Good And Vice.'

Both Western And Oriental Philosophers Have Talked About Nature And Scope Of Ethics In A General Way, But Ethics As A Separate Subject Is The Product Of Western Philosophy. It Had Its Origin In Ancient Greece. Ethics Has A Deep-Rooted Relation With Philosophy Like All Other Sciences, Ethics Has A Limited Field Of Study, Its Subject Matter Is Human Behavior And Its Property. It Takes Into Consideration The Entire Social Behavior Of Man, Raises Questions About It And Tells Us What Type Of Behavior Or

Conduct Can Be Regarded As Moral And What Type Of Conduct Is Immoral. Thus, It Discriminates Between The Right And Wrong And The Good And The Evil And Points Out What Is The Supreme Good Towards Which All Our Life Is To Be Directed. It Is Evident From The Definition Given By Various Scholars. Mackenzie Point Out That "Ethics Is A General Study Of The Ideal Involved In Human Life".

Rashdall Said That "Ethics Is The Theory Of Good And Evil Which Has Human Well Being As Its Goal.

Deewey Says That "The Subject Matter Of Ethics Is To Point Out What Is Right And Good In Conduct" And Moore Considers Supreme Good As The Subject Matter Of Ethics.

All These Definitions Suggest That Ethics Is Concurrent With Norms Of Human Social Behavior.

According To Philosophers, The Ultimate Aim Of All Ethics Is Practical, For We Desire Moral Knowledge, To Act On It.

The Relationship Between Man And Society Is Elaborated By Three Cardinal Ethical Theories Of Philosophy, Which Are: (1) Altruism (2) Universalism (3) Egoism. Dr. Annie Besant In Her Work "Problems Of Ethics" Pointed Out The Three Basic Schools Of Ethics Based An Authority, Institution, And Utility.

Explanation Of Words Ethics, Morals, Right

Word Ethics Has Derived From The Greek Word Ethos Which Also Means Character.

The Word Moral Philosophy Which Is Also A Synonym Of Ethics Is Based On The Latin Word Mores Which Means Habits Or Customs.

Thus From The Point Of Lexicography Ethics Propounds Principles Which Makes Our Conduct Moral.

Right

The Word Right Is Derived From The Latin Word Rectus Which Literally Means "Straight" Or 'According To Rules'. Thus When We Define Ethics As The Science Of The Rightness Of The

Conduct, It Means That It Is Concerned With Those Principles Or Rules, Which Make Our Conduct Right Or Straight.

Good

The Word Good Originated From The German Word 'Gut' Which Means Useful Or Serviceable For Some End Or Purpose.

G.E. Moore Remarkd That Good Is Indefinable And That 'Good Is Good And Nothing Else'. For Good Is An Elementary Entity, An Ultimate Mode, Beyond Which And Larger Than Which There Is No Genus.

Values

The Word Value Denotes The Character Of A Materialistic Commodity Or Mental Condition By Which Desires And Needs Of A Human Being Are Fulfilled.

Historical Perspective Of Ethics

In India Ethics Are Always Regarded As Part Of Philosophy And Religion, Each And Every System Of Indian Philosophy Is Replete With Ethical Attitudes And Regards The Highest Moral Life As The Only Way To Attain Spiritual Perfection, Which Has Always Been Regarded As The 'Summum Bonum' Or Supreme Good Of Life. According To Hindu Shastras, God Can Be Attained Through Good Deeds Or Subha Karma.

According To Wpnishads The Ultimate Source Of Hindu Darshana Our Each Deed "Karma" Is Destined To Bear A Fruit "Karmaphala". A Good Or Meritorious Deed Beings Pleasure As Its Effects And An Evil Deed "Ashubha Karma Beings Pain. We Are The Builders Of Our Own Future And We Should Avoid Evil Deeds Prohibited By Shastras And Do The Right Or Good Ones To Attain 'Moksha' Or 'Liberation' The Whole Hindu Darshan Revolves Around Aacharan (Conduct), Sadguna (Good Values), Niti (Moral), etc.

In Jaina Ethics, Which Is Known To Be The Practical Application Of Non- Violence As The Highest Virtue, It Has Been Stated That 'Knowledge Must Precede Compassion. But It Should Be Remembered That, Of Course, All The

Theories Of Western Philosophy, With The Possible Exception Of Pragmatism Have Not Been Preached And Practiced In The Manner In Which The Followers Of The Indian Schools Like Jainism, Buddhism, Samkhya, Yoga, And Vedanta Have Preached And Practiced Their Philosophies. The Intuitive Experience In The Direction Had Led The Indian Philosophers To The Conclusion That Ultimately The State Of Existence Which Is Attained By The Aspirant After The Spiritual Discipline Is The State Of Co-Existence And Merger Of These Three Ideals In A Harmonious Manner. This Is The State Called Jivanmukti, Or Liberation, Which Is Not Eschatological, But Of This Earth Earthy. Jivanmukti Undoubtedly Is The Stepping Stone To VidehaMukti, Or Final Liberation, Which Is The State Of Ananta Jnana, Infinite Knowledge, Ananta Virya, Infinite Knowledge, Ananta Virya, Infinite Power And Ananta Sukha, Infinite Bliss.

Jainism And Buddhism Also Declare The Purity Of Conduct As A Sacred Mantra Of Attaining Moksha Or Nirvana. In Ancient Texts And Dharmashastra, Several Hymes And Poetries Are Dedicated To The Morals And Ethics For Common Man In Society "Samajdharma", Politics (Rajdharma), Ethics In Behaviour (Vyavhar Dharma), Etc.

SukraNiti, Kautilya's Arthashastra, NaradaSmriti All Talk About The Ethics Which A King Or The Government Should Follow. Ashoka The Greatest King Of His Times While Elaborating His 'Dhamma' Or Universal Religion Asks "What Is Dhamma"- कियं च धम्म) And Then Answers "Daya, Dane, Sate, Shochaya, (Pitty, Generosity, Truth, Purity) Are The Essentials Of Dharma. A Well-Known Sanskrit Poet Referring To The Qualities Of A Politician Said " न्यायत पंथाः पद्भन ना प्रवचलन्ति दृढा", Courageous Persons Do Not Budge An Inch From The Path Of Righteousness

The Conflict Between Right And The Wrong, Often Personified As The Sura (God) And Asura (Demon) And Is Depicted In Several Hindu Mythological Stories. The Outward Fight Of Man Often Originates From Its Inner Conflicts. Thus

The Battle Of Kurukshetra, The Stage Setting Of The Most Popular Hindu Scripture, Gita Is Taken Figuratively As The Inner Battle, That Is Constantly Raging In One's Own Mind. Gita Is The Essence Of All The Vedic Text And Upanishads And In Its Ethical Utility In Practical Day Today, Life Is Unquestionable.

In Jainism And Buddhism The Concept Of Triratna, And Four Arya Satyas Denotes The Ethical Aspect Of Religion. Ashtangik Marg Purity Of Conduct Can Only Liberate One From Pain And Sorrow.

Western Perspective

The Western Ethical Philosophy Traces Its Origin In Greek Thoughts. The Sophist School Of Greek Philosophers First Started Questioning Virtues, And Relationships Between Character And Human Acharan. They Believe That Good, Bad, Right, Wrong Can Be Understood In The Context Of Human Desires Only. After Sophist Socrates Was The Main Source Of Greek Ethical Philosophy. Socrates Emphasized On The Universal Nature Of Some Basic Ethical Values In The Society. He Believes That Knowledge Of Virtues, Morals, And Values Inspires A Person To Perform Good Deeds

In His Life, Socrates Considered Virtue A Kind Of Knowledge. What He Appears To Have Meant Was That Knowledge Consisted In The Practical Applicability Of Virtue Because No One Could Be Virtuous If Here Were Ignorant Of The Nature Of Virtue. Serena, Seneca And Aristotle Also Contributed A Lot In His Regard. Aristotle Pointed Out That 'Virtue Is A Kind Of Habit'. It Is A Habit Of Right Choice. In Other Words, Virtue Is A Synthesis Of Knowledge And Habit, Consciousness And Activity, Thought As Well As Will.

Society And Ethics

The Problem Of Ethics Is Concerned With The Relations Which Exist Between Man And Man, Between Nation And Nation And Between Man And Non-Human World. Ethics Has Been Called The Science Of Conduct, Harmonious Relations

Between An Individual And His Fellow Human And Therefore The Science Of Relations And it aims To Regularize And Render Non-Human. Any Consideration, However Of What The Good Life Or Right Conduct For The Individual May Involve, The Social Setting Of Such Behavior. So The Network Of Social Relations In Which Each Individual Lives Provide Both The Opportunities For, And The Obstruction To The Fulfillment Of His Desires. The Distinctive Problems Of Social Ethics Arise Are Required To Adjudicate The Conflict Between An Individual And Society And For The Moral Sanctions For The Framework Of Our Basic Social From The Fact, Which The Interaction Of The Individual With His Fellow Men Brings With It On Matters For Moral Evaluation Or Decision.

Social Ethics Institutions - Legal, Economic, Educational, And Especially Political.

Prof. Brand Blanshard In His Essay On "Justice And The Good" And J.W. Mill In His Work On The Connection Between Justice And Utility" Tried To Analyse The Interrelationship Between Justice, Ethics, And Society.

Man And Society Have A Very Deep Rooted Relationship. A Society Is Essential For Development Of A Man. Aristotle Has Categorized Man As A Social Animal Society Is The Base Of All The Ethical Values Of The World. The Moral Values And Norms According To Which The Man Behaves Are Imbibed From The Society Only. The Society In Which A Person Lives Are The Basis Of All The Ethical Values And As Such Absence Of Society Would Render Them Useless. The Goodness Or Badness Of A Particular Deed Is Decided In Context Of The Society Only.

Variable Morality

Moral Codes Are Not Same For All People Or For Same People At Different Times Of History. Kissing In Public Between Men And Woman Is Considered Ethically Wrong By The People Of East Whereas The In West Its A Common Practice. Thus Ethical Considerations, Though

Universal, Have Not Been Addressed In The Same Uniform Way At Different Places And Times.

Truthfulness - Forgiveness, Respect For Lifeless Self Control Are Considered Virtues In Every Society And All Human Endeavour; Conscious Or Not In Toward Reaching The Spiritual Goal Of Self Realization And Ethical Goals Are only Subservient To This Broader End.

Relation Of Ethics With Other Discipline Of Social Sciences

The Layman Is Undoubtedly Familiar With The Words 'Morals' An 'Ethics' But He Seldom Conjectures Whether There Can Be Any Relation Between Ethics And Other Disciplines Like Psychology, Economic, Political Sciences etc.

Ethics And Psychology

The Relation Of Ethics To Psychology Is Most Intimate. The Subject Matter Of Ethics As Well As Psychology Is Human Behavior. Logic, Aesthetics And Ethics Are The Three Values Of Science And Their Origin Is Associated With Psychology. The Physiological Study Of Desire, Wish, Will, Motive Intention Etc. Is So Important For Ethics That Some Thinkers Have Included The Study Of Those Phenomena As An Integral Part Of Ethics. Thus We Can Say That Ethics Depends On Psychology To A Great Extent For Solving Its Problems.

Ethics And Sociology

Ethics Are Very Deeply Related To Sociology. The Purpose Of Sociology Is To Study Groups Of People Or Communities. The Customs, Manners, And The Traditional Rules Of Society Are The Oldest Standards Of Conduct. No Theory Of Ethics Can Be Regarded As Final As Long As A Detailed Study Of Social Institutions Is Not Carried Out With The Help Of Sociology. Ethics Primarily Deal With The Individual Morality But This Ultimately Leads To Social Morality. The Ethical Imperative Meant For The Individual Is Undoubtedly Inspired By Social Well Being.

Ethics And Economics

Economics Is A Study Of Human Activity With Regard To Wealth. Thus We Can Say That Economics Is Concerned With The General Wants Or The Ends Of Human Being. The Economists must Know The Moral Ideals Of The Society Or The Nation For Whom Economic Standards Are Being Propounded. But The Relationship Of Ethics With Economics Is Often Over Looked In This Commercialized Civilization. Here Satisfaction Of Sensual Desires Cannot Make A Man Happy. This Ideology Can Become Popular Any When Economics Is Based On Ethics, And When Wealth Is Regarded Only As Means And As An End In Itself. An Indian Economist Dr. Mehta Has Pointed Out That "The Aim Of Economics Is Not To Increase The Wants Of The Society But Rather To Reduce Them' This Ideal Is The Expression Of The Time Honoured Virtues Of Self Sacrifice And Non-Possession. Thus An Economic Philosophy Based On Ethics Is Capable Of Biting About A Compromise Between Communism On The One Hand And Capitalism On The Other.

Ethics And Political Science

In Ancient Times Political Science Was Considered The Science Of Society. Political Science As A Subject Came Into Prominence Before The Time Of Socrates And Plato. Aristotle Laid A Great Emphasis On Ethics As A Part Of Political Science. In Modern Times Also The Chief Propounders Of Modern Political Theory Locke, Rousseau, And Karl Marx Emphasized On Equality, Liberty And Fraternity To Maintain The Social Organization, This Emphasis Was Inspired By Moral Ideals.

According To Indian Point Of View, Politics Implies The Path Of righteousness. There Are Numerous Examples In History Which Show That A Politics Based On Truth Is Ultimately Victorious. Ashoka The Great And Mahatma Gandhi Are The Greatest Examples In This Regard.

Dissociation With The Ethics And Its Repercussion

Society In Its Every Sphere Is Perceiving A Great Amount Of Change. The Formation Of Society, Interrelationship Between The Individual, Basis Of Fundamental Institution, Social Problems, International Relations, And Global Society All Are Facing The Threat Of Ethical Destruction.

The Desire And The Lust To Have More And More Is Destroying The Basic Pyramid Of Need Which Was Given By Andrew Maslow. In The Western Model Of Development, Money And Consumption Has Become The Criteria Of Development And Good Life Style And Social Values, Norms And Ethics Have Gone Into The Background This Is Causing A Severe Destruction In Social Formation And Social Harmony. We Are Developed In Terms Of Quantity But Quantitatively We Are Moving Towards.

If We See In The Context Of Society, New Unethical Trends Are Emerging In The Very Basic Social Institutions, There Are Ultimately Leading Us To Social Disorders. Family And Familial Values Which Is A Social Cell And Central Unit Around Which The Whole Society Revolves Is Very Important In This Regard. Primary And Fundamental Attitudes And Emotions Of A Child Are Developed Here. Today We Can Say There Is A Lack Of These Family Values In An Average Family. In Indian Context The Large Joint Units Of Members Attached Makes The Family. It Was Individualistic In Acquisition But Socialistic In Distribution. Love, Compassion, Empathy, Sacrifice, Devotion, Harmony All Ethical And Spiritual Aspects Of Life Were There In That But Now A Days This Type Of Family Is Disappearing And Instead A New Self Centered Or Selfish Way Of Living Is Gelling Popular. Now Family Is Just To Live Together Morals And Values Have Taken A Back Seat. Parents Are Becoming So Overzealous In Attaining Perfection In Their Careers And Financial Status That They Are Ignoring The Whole Spirit Behind The Family Life Even The Most Rudimentary Function And Basis Of The

Family I.E. Race Preservation. Dink (Double Income No Kids) Concept Of Living Is Getting Very Popular Not Only In The West But In India Also. Marriage Is Also An Issue Which Is Related To Family Values The Change In This Beautiful Institution Of Social Life Is Also Very Evident. In Western Culture Marriage Is Merely A Contract Between The Two Individuals But In Indian Cultural Its A Sacrament, A Fellowship Between A Man And A Woman Who Seek To Live Creatively In Partnership For The Pursuit Of The Four Great Objects Of Life Dharma, Artha, Kama, Moksha. But This Spiritual Base Of Marriage Is Disappearing Of Very Rapidly From Our Social Set Up. Live In Together Relationship Is One Of The Example Where Couples Don't Care To Indulge Into The Institution Like Marriage, Sexual Satisfaction Is The Sole Base Of Their Relationship. This Unhealthy Attitude Is Creating Massive Problems In Society. The Increasing Rate Of Divorce, Egoistic And Selfish Approach Of Spouses Often Has Horrible Repercussions On The Child's Development. This Is Spoiling The Tender Moral Health Of Our Next Generation. Social Order, That Expects Integrated Development Of The Personality Of Every Member In Society Is Disturbed By These Practices.

To Conclude We Can Say The Ethics Is The Essence Of Our Social Setup Western Model Of Development Lays More Emphasis On Material Progress. It Has Brought About A Disparity Between The Theory And The Practice Of Philosophy And Has Kept Science Apart From Religion And Metaphysics From Ethics. This Dualistic Attitude Of West Is Responsible For The Social Crisis And Political Conflict, That Have Disrupted The Normal Social Harmony. Despite Man's Mastery Over Nature And In spite Of The Fact, That His Dreams Of Interplanetary Travels Are About To Come True, The Common Man Of The World Is Not At Peace. Doubt, Despondency, And Fear Are Rife In The World Today. We Are Sitting On The Ked Of Nuclear Armaments. We Are In The Greatest Danger Of Meeting Doom If War Breaks Out. In The Face Of These

Circumstances, The Need Of The Hour Is The Spiritual Regeneration Of Human Society. The Indian Model Of Development Could Be An Ultimate Alternative Model For The Rest Of The World. The Ethical Ideals Laid Down By Indian Sages Thousand Of Years Ago Are Universal Standards And Are A Lasting Cure For The Evils Which Have Crept Into Modern Society. By Adopting Them Not Merely As The Theories Of Morality, But As Modes Of Spiritual Life, Both Individual And Society Would Develop In A Better Harmonious Manner.

References

1. *"Theories Of Ethics: - A Study In Moral Obligation* By W.H. Werkmeister, Johnson Publishing Co., Lincoln, Nebraska, 1961.
2. *"Essentials Of Social Ethics" - Concepts, Issues, And Challenges, Edited By Shiva Prakashan, Rajat Publications, New Delhi 110002, 2001.*
3. *"A History Of Ethics", Editor - John H. Piet And Ayodhya Prasad, Cosmo Publications, 2000.*
4. *"Morality And Ethics In Public Life", By -Ravindra Kumar, Mittal Publications, 1999, New Delhi - 110059.*
5. *"A Modern Introduction To Ethics" - Readings From Classical And Contemporary Sources. Glencoe, Illinois, 1966.*
6. *"Human Society In Ethics And Politics" - By- Bertrand Russell, London, George Allen And Unwin Ltd., Ruskin House Museum Street.*
7. *"Ethics" - The Principles Of Wise Choice, By- Charles A. Baylis, Duke University, Henry Holt And Co., New York.*
8. *"Ethics And The Moral Life, By- Bernard Mayo, Macmillan, And Co. Ltd, New York, 1958.*
9. *"Comparative Religious Ethics" Editor:-John H. Piet And Ayodhya Prasad, Cosmo Publication, 2000.*
10. *"The Ethics Of The Hindus" Second Edition, By- Susil Kumar Majtra, University Of Calcutta, 1956.*
11. *"Principia Ethica", By- George Edward Moore, Cambridge At The University Press; 1956.*

Lesbianism as an Outcome of Resistance for Heterosexuality in, "Compulsory Heterosexuality and Lesbian Existence" Written by Adrienne Rich

Nisha Sharma

Research Scholar, University of Rajasthan, Jaipur



shodhshree@gmail.com

Abstract

This paper is an attempt to explore the term 'compulsory Heterosexuality' which is introduced by Adrienne Rich in her 1980 essay 'Compulsory Heterosexuality and Lesbian Resistance'. In this essay Rich addresses a very unconventional theme of compulsion of Heterosexuality which is, according to her, is responsible for or cause or emergence of Lesbianism in society. Here lesbianism comes out as an empowered way or strength to combat constructs like racism, sexism and women oppression in male dominant society. Here rich minutely and openly highlights, the roles and duties of a woman imposed by heterosexuality.

Keywords: *Compulsory Heterosexuality, Lesbianism, Lesbianism Continuum, Patriarchy, Radical Feminism.*

Adrienne Rich wrote this essay to fill the blank or gap that was developing between women in the last years. It was written as an attempt to reinforce the personal and political bonds between women. In the words of writer,

"It was written in part to challenge the erasure of Lesbian existence from so much of scholarly feminist literature, an erasure which I felt (and feel) to be not just anti lesbian, but anti-feminist in its consequences, and to distort the experience of hetero sexual women as well. It was not written to widen divisions but to encourage heterosexual feminists to examine heterosexuality as a political institution which disempowers women- and to change it." (Rich,23)

Title of this essay begins with a phrase "Compulsory Heterosexuality" where compulsory means required or obligatory or we can say the compulsion to follow without any option. Heterosexuality here refers to sexual activity between members of opposite sexes. This phrase here refers to the assumption by male- dominated society that the only normal sexual relationship is between a man and a woman. This compulsion is enforced by society. In other words heterosexuality is neither inborn nor chosen by the individual, but rather is a product of culture and this is forced. This theory of heterosexuality, suggests, that biological sex is determined, and gender is how one behaves and sexuality is preference.

Adrienne Rich exemplifies eight characteristics in which male power has demonstrated oppression of female sexuality, which are originally developed by Kathleen Gaugh (She is both social anthropologist and feminist). According to Gaugh these 8 way of suppression are, "Men's ability to deny women sexuality or to force It upon them ;to command or exploit their labor; to control their production ; to control or rob them of their children; to confine them physically and prevent their movement; to use them as objects in male transactions to cramp their creativeness; or to withhold from them large areas of the society's knowledge and cultural attainments."(Rich 36)

These all above characteristics show that society has forgotten that it is necessary (in order to function)

to include women in both public and private spheres. These are the ways which show how the denial of sexuality for women is a means to control and suppress any transition, creativeness and economic advancement of women. All of the characteristics are forces that inhibit men to further took women as historically, culturally and currently important. This type of ignorance of a female's choice in sexuality has caused her position in society to be thought of as less, and more importantly secondary to that of a man. Above mentioned quote maintains supremacy of male power over female, which also enforce compulsory heterosexuality. Rich observes that conservative political parties have continuously brought idea to women that they are sexual and emotional property of men. These ideas were also supported by major institutions in society like motherhood, patriarchy, economic exploitation, nuclear family, idealization of heterosexual romance and marriage. These all institutions control women physically and psychological.

Rich is a prominent feminist poet and writer who came out as a lesbian in 1976. In this essay she argued from a particular lesbian feminist point of view that heterosexuality is not innate in human beings. According to her view women can benefit more from relationship with other woman than from relationships with men. Heterosexuality is imposed by society, religion and state. Rich claims that women may not have a preference towards heterosexuality. In Rich's words, "We are the emotional and sexual property of men, and that the autonomy and equality of women have traditionally been controlled- patriarchal motherhood, economic exploitation, the nuclear family, compulsory heterosexuality are being strengthened by legislation, religious fiat, media imagery and efforts at censorship". (Rich 204)

Rich claims that today's popular culture (T. V. , films, advertising) also plays an important role to reinforce heterosexuality as a service, which emerged from the subjection of women to men

and this practice is protected by norms of "proper" feminine behaviour. According to her, women may not have a preference toward heterosexuality, but may find it imposed, managed, organized , propandized and maintained by society. She argues that all myths regarding universality of heterosexuality have been accepted by women silently because of the historical lack of exposure that lesbians have received, being either stigmatized as diseased or ignored as non-existent . Rich here repeatedly points out that the destruction of lesbian experiences in history by misplacement of documents, or destroying them in general has led to a society in which having a lesbian experience, or being a lesbian all together is seen as "the other" and unacceptable to most men and women.

Rich argues that men have a single innate orientation that is sexual one while women are sexually oriented towards men and reproductive towards their children. Rich also criticized feminist literature for omitting lesbian existence and presuming that heterosexuality is the sexual preference of most women; even in circumstances where an author states that mothers are the primary internal object to the girl, she laments that the author still states that most women are the earliest sources of emotional caring and physical nurture for both female and male children, then it would be logical that the search for love and tenderness in both sexes should originally lead to women rather than to men. She also discusses function and role of pornography, which represent women as a-"objects of sexual appetite devoid of emotional context, without individual meaning or personality -essentially -as a sexual commodity to be consumed by males".(Rich 39-40)

Women are here only a natural sexual prey to men, where sex and violence are counterpart of pornography. This heterosexuality is called normal or socially accepted relationship which enforces submission on women. Here

pornography is used as an example to show how it creates a climate in which sex and violence are interchangeable. Rich also discusses sex discrimination which is faced by women at their workplace also. There women are segregated by gender and got a structurally inferior position and payments in the workplace. As in the words of a critic, "It is impossible for a women to accumulate symbolic capital . He claims that this is the case , because competition for official power can be set only between men- while women can only compete for a power which is by definition condemned to remain unofficial or even clandestine and occult."(Bourdieu 41)

Here women learn to behave in a heterosexual manner and perceive themselves as sexual prey, if they don't then it would endanger their access to resources that are important to their daily survival. They are overwhelmed with the thinking that heterosexual relationship gives them social and economic security. Being in a relationship with a man, who is socially dominated, offers much more protection than remaining single or pursuing a relationship with a woman. This relationship may not be a preference for some, but rather a step towards a woman's future safety. Men have a primal fear that women could be indifferent to men altogether. They need to control women because they can have emotional, sexual and economic access to women only on a woman's term. To get rid of that fear men want women to believe that pursuing a relationship with a woman is not the path to safety because this would be a lesbian relationship means neither woman has any social power.

The patriarchy associates lesbian relationship as women simply wanting to recreate mother-daughter emotions and connections. They basically invalidate the relationship by desexualising it. So rich describes lesbianism in a new way that lesbianism is a stigmatized term. Lesbianism is not only limited to sexuality, while it is also an emotional and psychological identification with other women. / This is what

she was to me and this, is how I can love myself-
As only a woman can love me / (Rich 76)

It is a bonding that has occurred all throughout history, no matter what a woman's personal sexual orientation is. Rich here coined two new term one is lesbian existence and another is lesbian continuum. Lesbian existence is a type of relationship which rejects compulsory way of life, that is heterosexuality. It is an attack on male right to access to women, while the lesbian continuum is a way to broaden lesbianism to include female friendship. She explains that with this view all women would be placed on this lesbian continuum. It is a radical feminist model of sexual orientation, claiming that all women have a lesbian potential and that women's bonding, defined as lesbianism but not necessarily based on genital. Sexuality is the only successful way to overthrow patriarchy. Radical feminism here is a practice with in feminism that is used for a radical reordering of society in which male supremacy is eliminated in all social and economic contexts. The aim of this perspective revolution is not only just the elimination of male privilege but also elimination of sex distinction. In Rich's words lesbianism and lesbian continuum are explained as I have chosen to use the term lesbian existence and lesbian continuum because the word lesbianism has a clinical and limiting ring. Lesbian existence suggests both the fact of the historical presence of lesbians and our continuing creation of the meaning of that existence. I mean the term lesbian continuum to include a range through each woman's life and throughout history of woman- identified experience not simply the fact that a woman has had or consciously desired genital sexual experience with another woman. (Rich51)

Rich was an American poet, essayist and feminist. She was one of the most widely read and influential poets of the second half of the 20th century. She was credited with bringing the oppression of women and lesbianism to the forefront of poetic discourse. She was for

decades among the most influential writers of the feminist movement. Rich has been acknowledged her lesbianism which was political as well as personal issue. There was no writer of comparable influence and achievement in so many areas of the contemporary women's movement as the poet and theorist Rich had been. She wrote two dozen volumes of poetry and more than a half dozen of prose. *Dream of a common language* (1978), marked the first direct treatment of lesbian desire and sexuality in her writing themes which run throughout her work afterwards, especially in *A wild patience has taken me this far* (1981) and some of her late poems in *The facts of a doorframe* (2001). In this category this present essay is a prose work which was also written about lesbianism and heterosexuality. It is as an attempt to reinforce the personal and political bonds between women. Her goal was to get women- both straight and lesbian to reorient their lives around other women in way that were available to some lesbian communities but not necessarily to other women. Here what this work did is to strip away a lot of the misconceptions and pre conceptions of what lesbianism was. It is not something like you had to hate men, or you have sex with woman. While it is to expand the definition of lesbianism to simply a woman who loved woman.

*And I discern a woman
I loved, drowning in secrets, fear wound
round her throat
and chocking her like hair and this is she
with whom I tried to speak, whose hurt,
expressive head
turning aside from pain is dragged down
deeper
where it cannot hear me,
And soon I shall know I was talking to my
own soul*

References

1. Bourdieu, P. *Outline of A Theory of Practice* Cambridge; Cambridge University Press.P-41
2. Kathleen, Gough. "The Origin of the Family", in *Towards an Anthropology of Women*, Quoted by A.Rich in 'Compulsory Heterosexuality and Lesbian Existence' .ed. Rayna (Rapp) Reiter, New York; Monthly Review Press, 1975.P-36
3. Rich, Adrienne. "Compulsory Heterosexuality and Lesbian Existence" (1980). W.W. Norton & Company, New York London. *Blood Bread And Poetry, Selected Prose 1979-1985*.P-23
4. *Compulsory Heterosexuality and Lesbian Existence* (1980). W.W. Norton & Company, New York London. *Adrienne Rich's Poetry and Prose, Selected and Edited by Barbara Charlesworth Gelpi, Albert Gelpi*.P-204
5. "Transcendental Etude", W.W.Norton & Company New York London .*The Dream of A Common Language*.P-76
6. "Twenty One Love Poems ". W.W.Norton & Company New York London .*The Dream of A Common Language* P-35

Works Cited

1. Bourdieu, P. *Outline of A Theory of Practice* Cambridge; Cambridge University Press.
2. Kathleen, Gough ."The Origin of the Family", in *Towards an Anthropology of Women*, ed. Rayna (Rapp) Reiter, New York ; Monthly Review Press, 1975
3. Rich, Adrienne. "Compulsory Heterosexuality and Lesbian Existence" (1980). W.W. Norton & Company, New York London. *Blood Bread And Poetry, Selected Prose 1979-1985*
4. *Compulsory Heterosexuality and Lesbian Existence* (1980).W.W. Norton & Company, New York London. *Adrienne Rich's Poetry and Prose, Selected and Edited by Barbara Charles worth Gelpi, Albert Gelpi*.
5. "Transcendental Etude", W.W.Norton & Company New York London. *The Dream of A Common Language*
6. "Twenty One Love Poems ". W.W.Norton & Company New York London. *The Dream of A Common Language*

A Study on Pedagogy of Accounting Education in Government Colleges of Rajasthan During Pandemic Era



shodhshree@gmail.com

Priya Meena

Junior Research Scholar, Mohanlal Sukhadia University, Udaipur

Abstract

In last few year drastic changes are seen in accounting education; technical accounting education has become essential due to technological changes at global level. In India initiatives are taken up to meet the challenging situation. The present study analyses the teaching techniques and methods for teaching of accountancy in Government Colleges of Rajasthan. The 60% teachers of Government colleges in Rajasthan think that in accounting education computer-based teaching techniques and methods are highly required. Null hypothesis is rejected by using Z Test and chi-square value. Computer based teaching methods will increase the interest and learning capacity. Vocational training, computer teaching, Virtual learning along with brainstorming, Interactive multimedia, learning through ICT, PPT, Creative teaching in accounting have been suggested by learned respondent lecturers of Government colleges of Rajasthan.

Keywords: *Modern Teaching Techniques and Methods, Accounting Education, Government Colleges of Rajasthan, Traditional Teaching Methods.*

Accounting is very important area and gain more important over time not only for practitioners but also other factors in economic system, because in future accounting will be most of important area after telecommunication. At present scenario financial world is changing so fast that is become very important for accounting education to cope with the changing dynamism. Uses of accounting as part of our general life therefore accounting education is under pressure to change its current teaching methods.

At present, techniques and methods which we used to teach students is not suitable according to present requirement. We live in 21st century and our generation have tone of thinking capacity with brilliant efficiency to connect words, phrases, images and numbers. In India accounting is consider only as a department of accountancy but now we should consider it as an economic system, therefore teachers required to use some specific techniques methods to teach students in colleges and university. Such techniques and methods are podcast in classrooms, blogging, social bookmarking, personal learning environment, learning beyond classrooms, webinars, and use computers software programmes tools. If we use these techniques properly than futures of accountancy and students will be bright and growing according to present need. In India for increasing the knowledge of account's teachers they should be provide them continue teaching training for improving their teaching capacity.

In accounting education e-learning and virtual learning methods are used to developed a scientific principal to create different aspects of teachers and student's willingness. In last few year drastic

changes are seen in accounting education like; online accounting education and software-based education has become essential due to technological changes at global level. In Rajasthan initiatives are taken up to meet the challenging situation Government should start initiatives in education because education is the primary step of growing up. The purpose of this study is to analyse the teaching techniques and methods for teaching accountancy in Government Colleges of Rajasthan. In present scenario, we required to change our teaching techniques and methods to develop interest, and the skills in students to how to use the theoretical knowledge to solve the practical problems, rather than traditional methods and techniques using in accounting education. Present study take survey on accounting teachers for Government Colleges of Rajasthan and take their perception regarding changes in teaching techniques and methods for teach accounting and their willingness to change.

Statement of Problems

There are few studies which are related with modern teaching techniques and methods for accounting education and its requirement, uses or acceptancy in Government colleges of Rajasthan. As no major research work has been conducted on the basis of maximum variables like Software program, Flipped classroom, Convenient learning, Brainstorming, Creative teaching in accounting, Information communication technology, virtual learning environment, Interactive multimedia, Podcast, Fieldwork - Accounting internships. In further government colleges of Rajasthan are facing various problems to teach accounting education through modern teaching techniques and methods but not mention in earlier research work, such problems are: -

- Government College's teachers do not have any interest and motivation to teach with modern teaching methods.
- The requirements define curriculum and resources in the teaching, the large number of students in classes, and high-volume theoretical principles.

- Do not take a problem-based classes, practically classes and student concentrate teaching techniques and methods.

- Government Colleges are used traditional teaching methods is main problem of large number of graduated students specially bachelor holders who don't feel ready enough to work in their related field.

Review of Literature

The traditional (or conventional) teaching methods are teacher-centred and include the use of lectures and discussions while the problem solving element is presented by and/or discussed with the instructor; the syllabus, the teaching materials and the student assessments are determined by the tutor and transmitted to students in various lectures (Cottel & Millis, 1993). However, recent developments in accounting, such as the role of accountants in companies and organizations, the increased use of technology and the implementation of complex accounting practices have allowed a number of important changes in teaching (Williams, 1993). More recently studied student views regarding student interaction with the aforementioned tool called, Blackboard. The results showed that the former tool influenced students' mental effort and participation to the course (Basioudis and DeLange 2009). The traditional teaching methods setting is based on axioms that are outdated and mismatched to current research undertaken in the field of accounting education that supports and provides evidences how a child improves learning capacity through the modern teaching techniques and methods. (Ambika Gulati). In traditional teaching methods focus only on the classroom's teacher but at present scenario students get interest in modern teaching methods in accountancy. However, owing to the present structure of the majority of accounting programmes, graduates in accounting are often not prepared to assume a role in strategic decision making. Given this deficiency, constructive changes are being made to the accounting curricula (Mark E. Steadman & Ronald f. Green, 1995).

Teaching Methods of Accounting Course Contents: -

Traditional Teaching Methods- Following methods have been used up to 20th century:

- Blackboard
- Pause Method
- Homework
- Collaborative Teaching vs. Lecture
- Quiz Team vs. Control Group
- Case Studies

Modern Teaching Methods- Following methods going to be used in 21st century for teaching which may drastically changes in accounting education:

- Software program
- Flipped classroom
- Convenient learning
- Brainstorming
- Creative teaching in accounting
- Information communication technology
- Teaching through the virtual learning environment
- Interactive multimedia
- Podcast
- Fieldwork - Accounting Internships

Hybrid Teaching Methods

Following are the hybrid teaching methods and techniques:

- Skill development
- Exploring the teaching potential
- Cooperative learning
- Creating financial model

Research Methodology

The aim of this paper is to identify the need of changes in traditional teaching techniques and methods and importance of modern teaching techniques and methods. For this purpose, structured questionnaires are distributed to Government Colleges teachers through mail. The data is to be collected from primary sources. For the primary source Government college's accounting teachers are taken because

Government college is a place where new ideas generate; roots strike and grow tall and study. It is a unique space, which covers the entire universe of knowledge. It is a place where creative minds converge, interact with each other and construct visions of new realities. Require of modern teaching and techniques in Government Colleges in Rajasthan to change established mentality about accounting education. Our sample size covers 40 Government Colleges of State of Rajasthan. For secondary data we use the websites, research papers, articles and magazines. We used Z test and Chi-Square value to analysis and check the level of significance as statistical tool, and we found that null hypothesis is rejected.

Objective

1. To find out the need of change in traditional teaching techniques and methods (Blackboard techniques with lecture) for teach accountancy in Government colleges of Rajasthan.
2. To analyse the importance of new techniques and teaching methods the accounting education in Government college of Rajasthan.
3. To identify possible accounting teaching the techniques and methods which are suggested by teachers to teach for accountancy through opinion survey of Government College teacher community.
4. To analyse existing practise of modern techniques of accounting in Government Colleges of Rajasthan.

Hypotheses

H₁: New modern education techniques of accountancy have no significant impact on teaching in Government Colleges of Rajasthan.

H₂: There is no significant uses of new teaching techniques and methods in accounting education in Government Colleges of Rajasthan.

Observations and Interpretations

The tremendous growth of technology and computer applications or current pandemic affected almost every aspect of everyday life, worldwide. This is also the case in the field of education; the latter has changed dramatically by endorsing applications that help students

improve their written and verbal abilities as well as help them develop new skills that broaden their potentials. The techniques of creative accounting change over time. At the same time, other, well intentioned, changes in accounting world open up new opportunities for teaching accounting and in the use of fair value is a good example of this.

In Government Colleges Computer-based Teaching Techniques and Methods in Accounting Education are Required

In our survey, result shows in graph 1 that the 60% teachers in Government colleges of Rajasthan think that in accounting education computer-based teaching techniques and methods are highly required. Computer based teaching methods will increase the interest and learning capacity of students. According to questionnaire's response no one has response that these computer techniques and methods are not usable for teaching that means highly percentage of responses want to use computer teaching and methods in accounting education in Government College of Rajasthan. There are various motivations for Government Colleges in Rajasthan to adopt computers and use modern methods of teaching and use computer assisted learning technologies.

The observed value of Z test value at 5% level of significant is 1.98 which falls in the rejection region because the calculated value is higher than the critical value of Z test, thus H_0 is rejected. Here we used Z test for the opinion of teachers and found that the null hypotheses rejected, so we can say that as per opinion of teachers modern teaching techniques will have significant impact on traditional teaching.

Teacher's Interested for Teaching with New Techniques and Methods in Your College

When we asked that whether your colleagues want to use new techniques or not for this question. In Government colleges of Rajasthan teachers and their colleagues are highly interested to teach accounting with new techniques and methods in classrooms. The responses are as shown in below graph 2 and conclude that in Government college of

Rajasthan mostly teachers are interested, 50% of their colleges are at moderate level interested for using new techniques and methods for teach accounting education. According to responses 5% teachers are not interested means they don't want to change the teaching methods used in Government college.

For interpretation we apply Z test and found that null hypotheses rejected. The observed value of Z test is 2.54 which is out of acceptance region i.e. H_0 is rejected So, we can say that maximum teachers of Government colleges are significantly want to change the scenario of traditional teaching to new modern techniques.

Are Computers Available in Govt. College for Teaching

In Government colleges of Rajasthan computers availability is very less i.e. mostly Government College are not having a computer lab for teaching students of accounting education. Accounting is mostly partial subject if in accounting education increase computer-based teaching in accounting and solve practical questions through the computer classes it will increase the learning efficiency in students.

As per graph 3 shows Only 30% Government colleges are computer labs to teach students and 70% Government colleges of Rajasthan not have compute labs. But nowadays there are RUSA, UGC grants provided to many colleges and responses received that computer lab are going to be established in colleges in near future.

Available Computers are Used by Teachers in a Week

Mostly Government Colleges of Rajasthan not available of computers and few colleges are used computer-based teachings techniques and methods to teach accounting's students to improve practical knowledge for accounting subject. According to the questionnaire's responses in Government Colleges teachers are mostly used these computer labs for teaching accounting education 1 or 2 days in a week. It is shown that in Rajasthan Colleges highly need to computer labs. RUSA, UGC Grants provided to many colleges for the purpose to developed

college facilities. 70% colleges which don't have computer labs and they do not use computers for teaching for accounting education. In computers-based teaching is mostly used new techniques and methods like software program, information communication technology, tally programs etc. At present time Government has provide fund to Government colleges for providing facilities to increasing efficiency in students. If the use of cost-effective computer technologies in Government Colleges of Rajasthan is a dynamic dramatically changes in college's students.

Acceptance Such Techniques and Methods in Government Colleges for Teaching Accounting

Acceptance of new teaching techniques and method in Government Colleges for teaching accounting subjects according to responses all responses desired to welcome such new teaching techniques thereby to create interest in student and increasing learning capacity.

Graph 4 show that 70% Government colleges teachers are completely welcome new teaching techniques and methods to teach accountancy and 20% teachers are only accepted these techniques and another 10% teachers are moderate it means they do not want to teach students with new techniques and methods.

The observed value of Z test at 5% level of significant is 2.41 which falls in the rejection region of null hypothesis. The calculated value is higher than the critical value of Z test, thus H_0 is rejected. Here we used Z test for the opinion of teachers and found that the null hypotheses rejected, so we can say that as per opinion of teachers that significant acceptancy of new techniques and methods by the Government Colleges of Rajasthan.

Using of Morden Techniques and Methods in Accounting Education in Government Colleges

Software programmes are highly using by Govt. college teachers of Rajasthan for accounting education while some Government colleges exploitive creativeness in teaching of accountancy it is generate high level curiosity

among students for our subject and is make easy to solve any practical questions. It should be developed interest to learn accountancy and after that mostly recommending create virtual learning environment in classrooms which have online concept of accounting educations and enhance learning of accounting outside the classroom. According to the responses brainstorming, flipped classrooms, and interactive multimedia are those new teaching techniques and methods which are less used in Government Colleges.

As show the graph 5 result in Government Colleges teachers are mostly used software programmes for teaching accounting. For further Chi-Square has been use for examine the relevance value of adoption of modern teaching methods and techniques at 5% level of significance and calculate chi-square value 19.4 is higher than critical value 16.92 thus, significant acceptancy of new teaching techniques and methods in accounting education in Government Colleges of Rajasthan. In addition, this study found software programmes and ICT are used in those Government College which are having 30% computer availability. 58.80% respondent gives opinion that software program may be used for teaching while next highest opinion is regarding use of creative and virtual classes. The other used new techniques are teaching through the virtual learning, podcast, convenient learning and flipped classroom, brainstorming, fieldwork-accounting internships, interactive multimedia. The application of software program technologies has implications of Government College student it increases performance efficiency and effectiveness of accounting education.

Most Popular Old Teaching Techniques and Methods in Government College at Present

Traditional teaching methods are mostly used by Government colleges teachers. According to graph 6 at present most popular old teaching techniques and methods are lectures with use of blackboard. Here are some popular teaching techniques and methods are case studies,

homework, simple computer programs, pause methods, collaborative teaching method.

When we asked Government college teachers that which most popular teaching techniques and methods, they have used during the classroom teaching, we find that 94.80% teachers are used lecture with use of chalk board which is most popular old teaching technique. Regular use of traditional teaching methods in classrooms it creates lack interest and down learning capacity among students while very few Government colleges are used simple software programs in accounting education.

Suggestions

At last we questioned the respondent for suggest a technique which should be used in accounting education their suggestions are as follows: -

- Vocational training
- Teaching Through computers
- Virtual learning along with brainstorming
- Interactive multimedia
- Learning through ICT
- PPT
- Creative teaching in accounting
- Case studies along with practical examples
- Used mixed techniques
- Conceptual case studies, PPT version of commerce study material should be prepared and explained before students by projectors
- Student teacher mentoring
- Depth teaching of subject, not merely by short notes

The accounting related software should be purchases by the Government Colleges so that the student can be used, for example this software is tally accounting, financial accounting software. All the software related to accounting should be spread over among the Government Colleges so that

teachers teach the students by using this software. There was no proper infrastructure, infrastructure means Wi-Fi system, computer labs, internet speed should be enhanced. Now in rural area's Govt. College are not internet facility available because there were no electricity connections, so basic infrastructure should be built up. Government should strength the basic infrastructure system so that a professor who is teaching in the Delhi can deliver the lecture in ruler's Govt. College. Accounting teacher should be trained because such teaching techniques can't be implemented in Govt. Colleges of Rajasthan.

Conclusion and Remark

According the economic environment, Government Colleges of Rajasthan should be change accounting curriculum. At present scenario the teachers of accounting education should not be bounded with the traditional accounting teaching methods (blackboard, lecturer etc.) rather it should be including subject curriculum which have to use to teach students as modern accounting techniques and method (e-commerce and software-based accounting curriculum). These accounting and technical accounting knowledge and skills can make the students as well as teachers of Government college of Rajasthan are more professional in their career and should be develop their fundamental concepts of accountancy. Modern teaching techniques and methods are helpful to gain accounting concepts or terminology and fundamental of accounting and it is also supported to use theoretical knowledge in particle life. Accounting teachers of Government colleges should familiar with new modern techniques and methods like software programme, convenient learning, brainstorming, virtual classes, podcast or flipped classes it will be helpful to reduce students stress and understand practically accounting problems or solve them. The findings suggest that Government should to conduct training to Government college teachers for using modern

teaching methods and techniques to teach accounting education. In further despite the availability of formal teaching practices, students mainly prefer Student – centred methods and they also recommended the practices as traditional method replace with modern teaching techniques and methods.

References

1. Broek, G.S., (2012). *Innovative Research-Based Approaches to Learning and Teaching*. OECD publication (7 9) . doi:<http://dx.doi.org/10.1787/5k97f6x1kn0w-en>
2. Dimitrios, P. C. et.al, (2009). *Traditional teaching methods VS. teaching through the application of information and communication technology in the accounting field: quo vadis?* *European Scientific Journal* October 2013 edition vol.9, No.28 ISSN: 1857 – 7881 (Print) e - ISSN 1857-7431.739(28).
3. Ramen. M, Moazzam, & Jugurnath. B. (2016). *Accounting teaching techniques with the advent of technology: Empirical evidence from Mauritius*
4. Khairnar, C. M. (2015). *Advance Pedagogy: Innovative Methods of Teaching and Learning International Journal of Information and Education Technology*, 5.
5. Sharma, D. R. C. (2018). *A Comparative Study of some Traditional and Modern Methods of Teaching Learning Process International Journal on Arts, Management and Humanities*
- Akinola, J. A. (1989). *The use, influence and consequences of new technologies for teaching and learning in Nigerian university. Higher Education and New Technologies*, 473–476. doi: 10.1016/b978-0-08-037261-7.50068-0
- Steadman, Mark E. & Green, Ronald f. (1995). *Implementing accounting education change, Managerial Auditing Journal*, ISSN: 0268-6902.
- Karen V. Pincus, D. E. S., James E. Sorensen, & Kevin D. Stocks, Raef A. Lawson. (2017). *Forces for changes in higher education and implications for the accounting academy. journal of accounting education*.

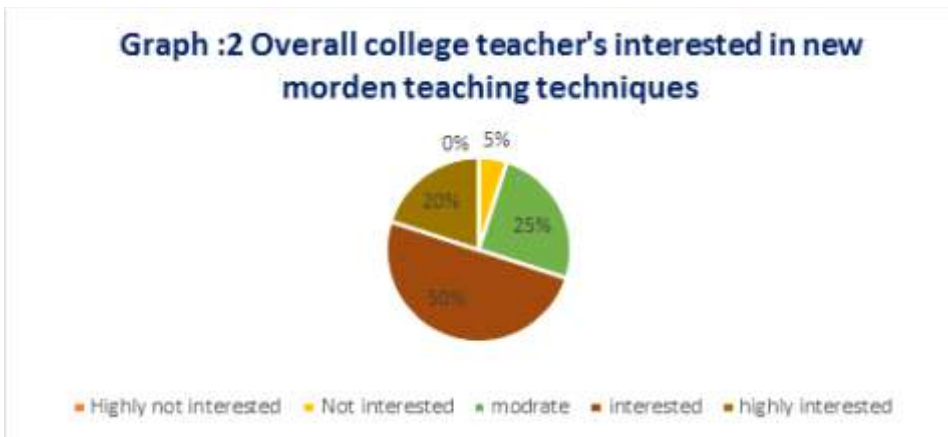
Appendix:

1. In Government Colleges Computer-Based Teaching Techniques and Methods in Accounting Education are Required:



Source: Survey 2020

2. Teacher's Interested for Teaching with New Techniques and Methods in Your College:



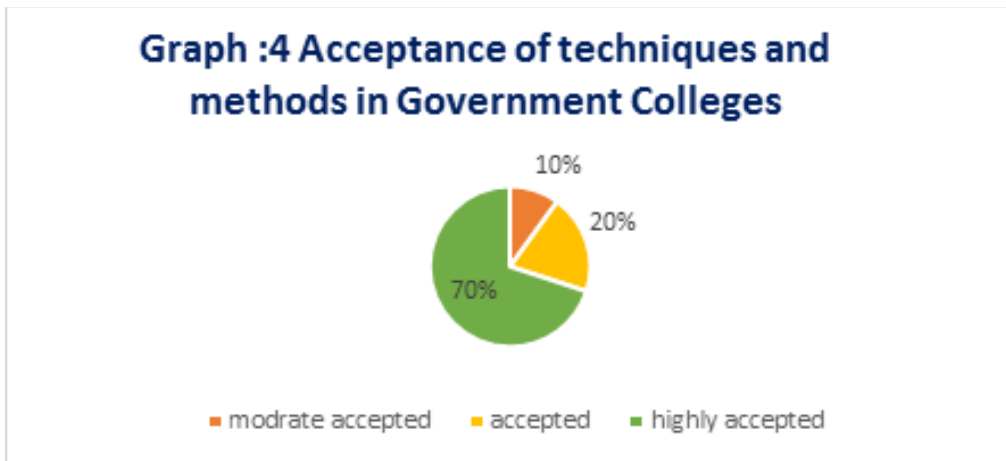
Source: Survey 2020

3. Are Computers Available in Govt. College for Teaching:



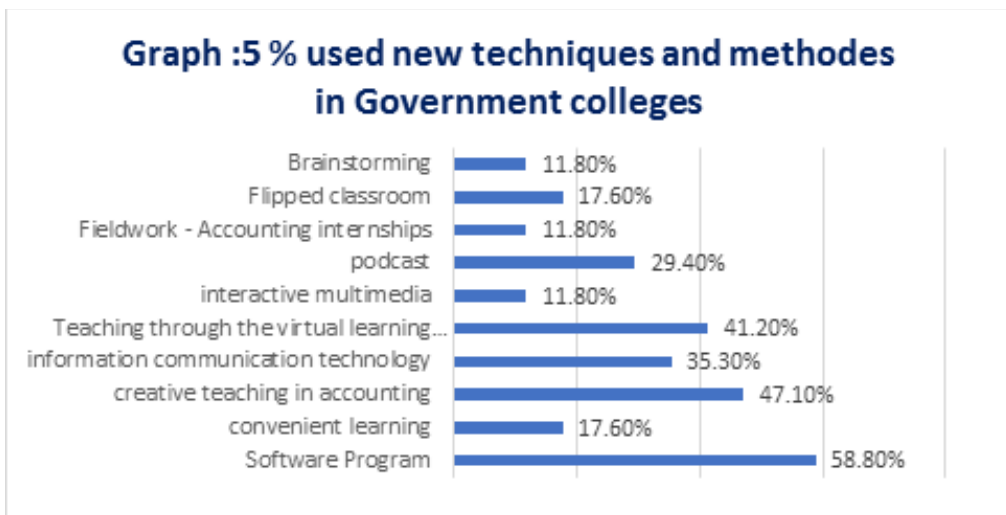
Source: Survey 2020

4. Acceptance Such Techniques and Methods in Government Colleges for Teaching Accounting:



Source: Survey 2020

5. Using of Morden Techniques and Methods in Accounting Education in Government Colleges:



Source: Survey 2020



Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Individual Subscription Form

Name

Designation

Name of Organization

Address

District

State

Pin

Tel. No. (R)

Mobile

e-mail

Date

(Signature)

Frequency : Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly)
i.e. January, April , July & October.

Mode of Payment : Subscription fee can be deposit through online Banking.

Bank Details : Virendra Sharma, OBC Bank, Adarsh Nagar, jaipur
SB A/C No. 06722151002965, IFSC Code ORBC 0100672,
MICR Code 302022005
Subscription Fees - 1800 Rs.

Membership No.

Date

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....
hereby declared that the paper entitled'.....
.....'is unpublished original paper which is not sent any where
for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....
.....which is
exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the
Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the
address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other
journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature

Name

Designation

Official Address

Residential Address

Phone No. Pin No.

e-mail Address



Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir

I want to become a member of this Journal for -

1 year

(Rs. 1000/-)

2 years

(Rs. 1800/-)

3 years

(Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No.

E-mail ID

Date:

Signature

For Office Use Only

Membership No. _____

Date _____

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly)
i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : **Cheque /DD must be in Favor of Virendra Sharma** ,OBC Bank,
Adarsh Nagar, Jaipur

SB A/C NO.06722151002965

IFSC Code ORBC0100672, MICR Code 302022005

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.
2. All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.
3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.
4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.
5. Maximum word limit of research paper up to 2500 words.
6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.
7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.
8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.
9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

**Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134**

To,

प्रिन्टेड मैटर

If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)

54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54-ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर-302018 मो. 9460124401